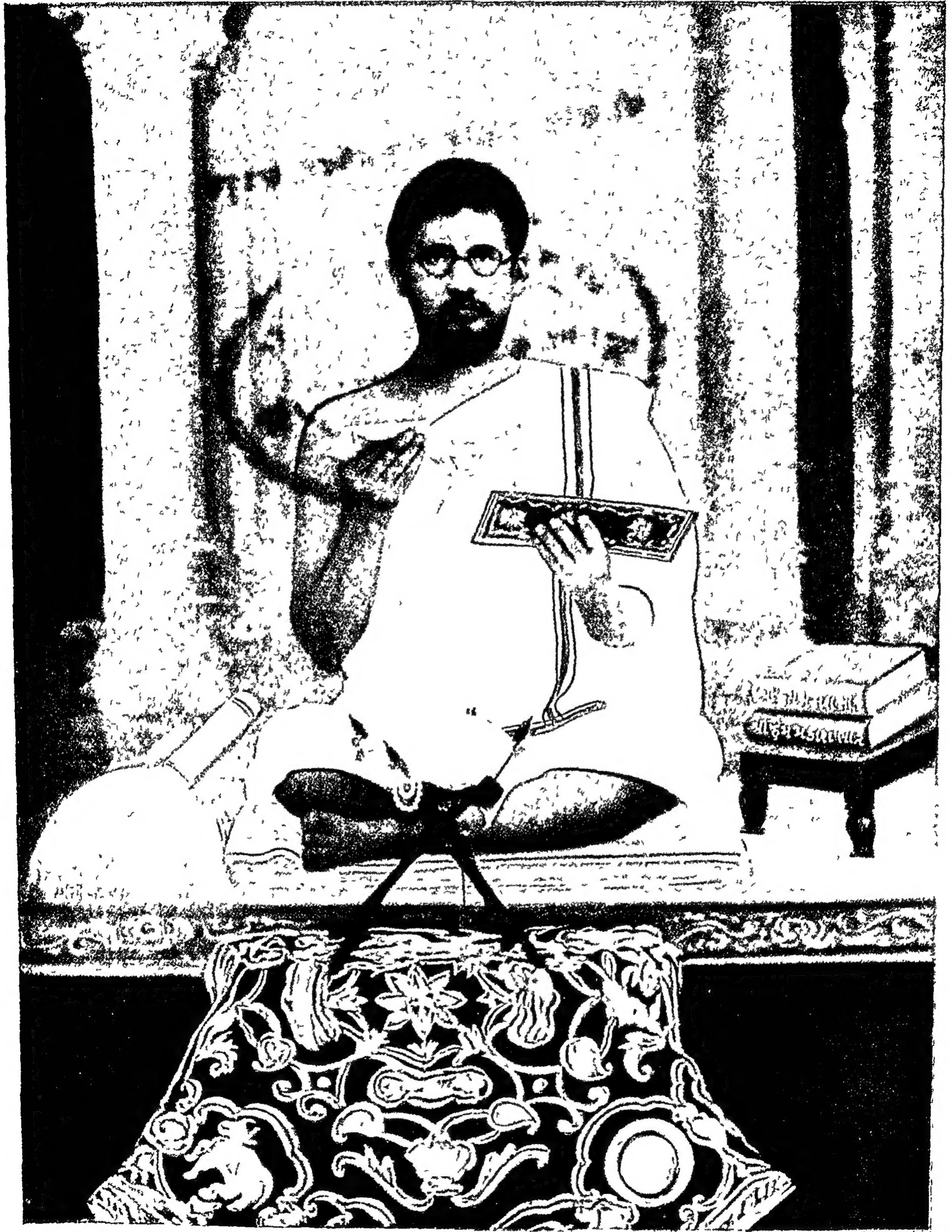
પ્રખર વક્તા પૂજ્યપાદ શ્રી ૧૦૦૮ મુની મહારાજ શ્રી અમીવિજયજી મહારાજના શિષ્યરત્ન

પરમ પૂજ્ય પન્યાસજી મહારાજ શ્રીમત્ ક્ષમાવિજયજી ગણીવર.



જન્મ વિ. સં	દીક્ષા વિ. સં.	ગણીપદ વિ. સં.	પન્યાસપદ વિ. સં.
૧૯૫૮	૧૯૭૩	૧૯૯૦	૧૯૯૦
જંબુ, (પંજાબ)	(બીકાનેર. મારવાડ)	રાજનગર. (અમદાવાદ)	રાજનગર, (અમદાવાદ)



श्रीस्तम्भनपार्श्वनाथाय नमः

श्रीजैनज्योतिर्ग्रन्थसंग्रहः ।

संपादक

पूज्यपादगुरुवर्यश्रीअमीविजयशिष्याणुः

ज्योतिर्विद्याभिलाषी

उपाध्याय क्षमाविजय गणी

प्रकाशक

शाह मूलचंद बुलाखीदास

मुळजी जेठा मार्कीट, द्वारकेश गल्ली, मुंबई

मुम्बय्यां

निर्णयसागरमुद्रणयन्त्रालये मुद्रापयित्वा प्रकाशितः ।

शके १८५९, सन १९३८.

प्रिंटरः—रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णयसागर प्रेस,
२६-२८, कोलभाट स्ट्रीट, मुंबई

पब्लिशर.—शाह मूलचंद बुलाखीदास, मुळजी जेठा
मार्कीट, द्वारकेश गली, मुंबई



शाह मूलचंद बुलाखीदास.

। जैनज्योतिर्ग्रन्थसंग्रहः ।

। ज्योतिर्विदाभरणपूज्यपादाचार्यश्रीविजयदानसूरीशेभ्यो नमः ।

। सुविहितशिरोमणिआचार्यवर्यश्रीहरिभद्रसूरिसूत्रिता ।

। लग्नशुद्धिः ।

अवितहसव्वाएसं नमिउं चोवीसमं जिणवरेसं । वुच्छामि समासेणं लग्गं सुगुरूवएसेणं ॥ १ ॥ कज्जं कुणंतयाणं सुहावहो जोइसम्मि जो भणिओ । कालविसेसो लग्गं कज्जं पुण बहुविहं जइ वि ॥ २ ॥ तह वि हु इह लोगुत्तरदिक्खोवट्ठावणापइट्ठाओ । अहिगिच्च लग्गसुद्धिं भणिज्जमाणं निसामेह ॥ ३ ॥ सा पुण इह विन्नेया गोअरसुद्धीइ दिवससुद्धीए । तस्समयउदयपत्तस्स तह वि लग्गस्स सुद्धीए ॥ ४ ॥ गुरुससिरविणो बलिणो दिक्खोवट्ठावणासु सीसस्स । जइ तो गोअरसुद्धी गुरुणो वि हु ससिबले संते ॥ ५ ॥ बिंबपइट्ठाइ पुणो कारावयसावयस्स बलिएसु । गुरुससिसूरेसु भवे गोअरसुद्धित्ति बिंति बुहा ॥ ६ ॥ दोपंचसत्तनवसिक्कारसमो जम्मरासिणो जीवो । पढमतिछसत्तदसमेक्कारसमो ससहरो बलवं ॥ ७ ॥ दोपंचनवमगो विहु सियपक्खेसो रवी उ तिछदसमो । इक्कारसमो अ बली सेसठाणेसु ते अबला ॥ ८ ॥ सियपक्खे चंदबलं असिए ताराबलं पि गहियव्वं । तं पुण तिपंचसत्तमत्ताराओ मुत्तु सेसा उ ॥ ९ ॥ पढमा जम्मणि रिक्खे तत्तो दसमम्मि इगुणवीसे अ । बीआ तप्परएसुं तिसु एवं जाव नव तारा ॥ १० ॥ जम्मं संपइ विप्पइ खेमा पच्चरय साहणा निहणा । मित्ता अइमित्ता वा तारा नेआ असिअपक्खे ॥ ११ ॥ जइ नो नज्जइ जम्मणरासी तो गणह नामरासीओ । अवकहडाचक्काओ सा नज्जइ तं पुण पसिद्धं ॥ १२ ॥ सुहमासवारतिहिरिक्खजोगकरणे दिणम्मि सगुणंमि । निद्दोसे तह निद्दोससगुणरिक्खंमि दिणसुद्धी ॥ १३ ॥ मिग्गसिराई मासट्ठ चित्तपोसाहिए वि मुत्तु सुहा ।

जइ न गुरू सुक्को वा वालो वुड्ढो य अत्थमिओ ॥ १४ ॥ दसं तिन्नि[3] दिणे वालो पणदिणे पक्खेस च भिगुसुओ वुड्ढो । पच्छिमपुव्वासु कमा गुरु वि जहसभव एव ॥ १५ ॥ आइच्चवुहविहप्फइसणिवारा सुदरा वयग्गहणे । विंवपइट्ठाइ पुणो विहप्फइसोमवुहसुक्का ॥ १६ ॥ सुत्तु चउदसि पनरसि नवमट्ठमि छट्ठि वारसि चउत्थी । सेसा उ वयगहणे गुणावहा दुसु वि पक्खेसु ॥ १७ ॥ सियपक्खे पडिवय वीअ पचमी दसमि तेरसी पुन्ना । कसिणे पडिवय वीआ पचमी सुहया पइट्ठाए ॥ १८ ॥ सव्वे वि वारतिहिओ सुहया सइ सिद्धिजोगसब्भावे । चदमि उवचयमि न उण नट्ठम्मि झीण्णे वा ॥ १९ ॥ सियपडिवयाउ दस दिण चदो मज्झिमवलो मुणेयव्वो । तत्तो अ उत्तमवलो अप्पवलो तइय दसमम्मि ॥ २० ॥ उत्तररोहिणिहत्थाणुराहसयभिसयपुव्वभद्दवया । पुस्स पुणव्वसु रेवइ मूलस्सिणि सवण साइ वए ॥ २१ ॥ मह मियसिर हत्थुत्तर अणुराहा रेवई सवण मूल । पुस्स पुणव्वसु रोहिणि साइ धणिट्ठा पइट्ठाए ॥ २२ ॥ कारावयस्स जम्मणरिक्खा दस सोलस तहऽट्ठार । तेवीस पचवीस विंवपइट्ठाइ वज्जिज्जा ॥ २३ ॥ पढमो छट्ठो नवमो दसमो तह तेरसो अ पन्नरसो । सत्तरसेगुणवीसो सत्तावीसो असुहजोगो ॥ २४ ॥ छट्ठो छँ दसमो पणँ पढमो नवमो अ पचेघडिआओ । तीस[30] सत्तावीसो नवं तेरसमो अ पन्नरसो ॥ २५ ॥ सव्व[60] सत्तरसेगुणवीसो वज्जो अवस्समन्ने उ । जोगा सव्वे वि सुहा नायव्वा सव्वकज्जेसु ॥ २६ ॥ विट्ठिं विवज्जिऊण पाएण सुहाइ सव्वकरणाइ । आणदयर च दिण सगुण तह सिद्धिजोगजुअं ॥ २७ ॥ सिअंबुहंकुजंसणिगुरुणो पचसु पढमासु छट्ठि कुजसुक्का । सत्तमि वुहे अट्ठमि सूरमगला नवमि सणिससिणो ॥ २८ ॥ दसमि गुरुं इक्कारसि गुरुसुक्का वारसी वुहो अ सुहो[12] । तेरसि मगलसुक्का[13] चोदसि सणि[14] पचदसि जीवो[15] ॥ २९ ॥ हत्थुत्तरमूलाइ रविणो सिद्धाइ पच रिक्खाइ । रोहिणिमिअसिरपुस्साऽणुराहसवणाइ सोमेण ॥ ३० ॥ उत्तरभद्दवयस्सिणिरेवइरिक्खाइं तिन्नि भोमेण । कत्तियं रोहिणिं मिअसिरं पुस्सं अणु-

राहा उ पंच बुहे ॥ ३१ ॥ अस्सिणि पुस्से पुणव्वसु अणुराहा रेवई अ गुरुवारे । सत्तम पढमिक्कारस रेवई अणुराह सवण सिए ॥ ३२ ॥ रोहिणि सवणं साई सणिणा इय रिक्खवारसुहजोगा । अन्ने वि एवमाइ वित्थरगंथेसु जाणिज्जा ॥ ३३ ॥ अस्सिणि रोहिणि मूलं हत्थं-पुणव्वसुविसाहमहसवणा । भद्दवया वि अ पुव्वा मंगलसिअबुहससीवारा ॥ ३४ ॥ दसमीछट्ठिक्कारसिपडिवयपंचमीतिहीणमन्नयरा । एसो कुमारजोगो रिक्खतिहीवारजोगम्मि ॥ ३५ ॥ घरवेसमित्तयाधम्मसिप्पविज्जाइया सुहा भावा । कायव्वा एएणं विरुद्धजोगं विवज्जित्ता ॥ ३६ ॥ रयच्छन्नयाइं संकंतिगहणदड्ढाइआ य दिणदोसा । तह दिवसवारनक्खत्तअसुहजोगद्धपहराई ॥ ३७ ॥ रयच्छन्नंमब्भच्छन्नं पयंडपवणं तहा समुग्घायं । सुरधणुपरिवेसदिसादाहाइजुअं दिणं दुट्ठं ॥ ३८ ॥ संकंतीए पुव्वं संकंतिदिणं तयग्गिमं च दिणं । वज्जिज्जा तह संकंतिदड्ढतिहिओ अ एआओ ॥ ३९ ॥ धणुमीणगए वीआ विसे अ कुंभे अ तह चउत्थीए । कक्कडमेसे छट्ठी अट्ठमि मिहुणो अ कन्ने अ ॥ ४० ॥ विच्छियसीहे दसमी तुले अ मयरे अ बारसी भणिया । एआ दड्ढतिहीओ वज्जेअव्वा पयत्तेणं ॥ ४१ ॥ ससिसूराणं गहणं जंमि दिणंमि तमाइओ काउं । सत्तदिणाइं वज्जह ताइं जओ गहणदड्ढाइं ॥ ४२ ॥ सूरे बारसि सोमे इगारसी दसमि मंगले वज्जा । नवमि बुहे गुरु अट्ठमि सत्तमि सुक्कम्मि सणि छट्ठी ॥ ४३ ॥ ससिसूरदिणे सत्तमि तइआ सुक्कम्मि छट्ठि गुरुवारे । पडिवय तइया य बुहे विवज्जियाओ सुहे कज्जे ॥ ४४ ॥ जिट्ठा महा विसाहा अणुराहा रविदिणम्मि वज्जिज्जा । आसाढाओ दुन्नि य तह य विसाहा उ सोमम्मि ॥ ४५ ॥ सयभिसअद्दधणिट्ठा मंगलवारम्मि पुव्वभद्दवया । मूलऽस्सिणिभरणीरेवईओ वज्जिज्ज बुहवारे ॥ ४६ ॥ रोहिणिमिअसिरअद्दासयभिसयाओ विहप्फइदिणम्मि । रोहिणिमहअसिलेसापुस्साइं सुहाइं नो सुक्के ॥ ४७ ॥ उत्तरफग्गुणि हत्थो चित्ताऽऽसाढा दुगं च एयाइं । पंच वि नक्खत्ताइं सणिवारे वज्जिअव्वाइं ॥ ४८ ॥ वज्जिज्ज भरणि चित्ता उत्तरसाढा तहेव य

धणिट्ठा । उत्तरफग्गुणि पुस्स रेवई सूराइसु कमेणं ॥ ४९ ॥ अद्धप्पहरो कुलिओ उवकुलिओ असुहकालहोरा य । एए वि हु दिणदोसा वज्जेअव्वा सुहे कज्जे ॥ ५० ॥ कुजससिअरविबुहसणिससि-गुरुवारेसु विवज्जणिज्जो य । अद्धप्पहरो बि-ति-चउ-पंचे-छ सत्त-ट्ठमो कमसो ॥ ५१ ॥ दिणवाराओ जइमा सणिगुरुणो तइयमद्धपहरेसु । कुलिओ तह उवकुलिओ जहसंखेण मुणेयव्वो ॥ ५२ ॥ आ-सु-बु-सो-स-गु म त वलय जाणाहि कालहोरत्ति । अड्ढाइज्जा घडिया दिणवाराओ गणसु पढम ॥ ५३ ॥ संज्झागय धूमियमालिंगियदड्ढविद्धसोवग्गहं । लत्तापाएक्कग्गलेदूसिअ इअ दुट्ठरिक्खाइ ॥ ५४ ॥ सज्झागय रविगय विड्डेर सग्गह विलंबं च । राहुहय गहभिन्न विवज्जए सत्त नक्खत्ते ॥५५॥ संज्झागयम्मि कलहो आइच्चगए न होइ निव्वाणी । विड्डेरे परविजओ सग्गहम्मि अ विग्गहो होइ ॥ ५६ ॥ दोसो असगयत्तं होइ कुभुत्त विलं-बिनक्खत्ते । राहुहयम्मि अ मरण गहभिन्ने सोणिअग्गालो ॥ ५७ ॥ अत्थमणे सज्झागयं रविगय जहिअ ठिओ उ आइच्चो । विड्डेरमवदारियं सग्गह कूरग्गहठिअ तु ॥ ५८ ॥ रविरिक्खपिट्ठओ ज विलंबि राहुहय जहिं गहण । मज्झेण जस्स गहो वच्चइ त होइ गहभिन्न ॥ ५९ ॥ सणिमंगलाण पुरो धूमियमालिंगिय च तज्जुत्त । आलिंगियस्स पच्छा जं रिक्खं त भवे वद्ध ॥ ६० ॥ तिरिय सत्तसलाया उड्ढाओ सत्त ताण मज्झेण । उवरिमपढमसलागाण कत्तिया तयणु सेसाणि ॥ ६१ ॥ दाउ नक्खत्ताइ दिज्ज गहे तद्दिणमि जो जत्थ । तो जोइज्जा वेह गण-यवरो य चंदरिक्खस्स ॥ ६२ ॥ जइ एगसलागाए एक्कदिसिं हुज्ज चदनक्खत्त । बीअदिसाए हुज्जा को वि गहो तो भवे वेहो ॥ ६३ ॥ उत्तरसाढापाए चउत्थए सवणपढमघडिआसु । चउसु य अभिई तत्थ ठिए गहे रोहिणी वेहो ॥ ६४ ॥ पचट्ठचउदसट्ठारइगुणवीसदुवीस-तेवीसे । चउवीसमे अ रिक्खे उवग्गहो सूररिक्खाओ ॥ ६५ ॥ रवि-मगल-गुरु-सणिणो दुवालस तइछट्ठअट्ठमय । निअरिक्खाओ कमेण रिक्खं लत्तति अग्गिमय ॥ ६६ ॥ बुह-सुक्क-राहु-पुन्निमससिणो पिट्ठेण

निययरिक्खस्स । सत्तमं[७] पंचमं[५] नवमं[९] वावीसइमं[२१] च लत्तंति ॥ ६७॥ अस्सेस महा चित्ता अणुराहा सवण रेवई होइ । जइमा रविरिक्खाओ पाओ अस्सिणीइ तइमंमि ॥ ६८ ॥ आइच्चो जत्थ ठिओ तत्तो अणुराह जइमिया होइ । तत्तो छट्ठे छट्ठे दस वीए पंचमे पाओ ॥ ६९ ॥ पढमो छट्ठो नवमो दसमो तह तेरसो अ पन्नरसो । सत्तरसे-गुणवीसो सत्तावीसो अ एयाणं ॥ ७० ॥ जो जोगो तस्संखं रिक्खं जइमं हविज्ज रविरिक्खा । तइमे ससिरिक्खे अस्सिणीइऊ इक्कग्गलो होइ ॥ ७१ ॥ तिरियं तेरस रेहा एक्का तम्मज्झगामिणी उड्ढं । काऊणं चक्कमिणं सिर-रिक्खं दिज्ज तस्स सिरे ॥ ७२ ॥ विसमे जोगे इक्कं अट्ठावीसं समंमि दिज्जाहि । अद्धीकयंमि तंमि उ जं तं इह मुणसु सिररिक्खं ॥ ७३ ॥ अस्सिणि अणुराहा वि य मियसिर मूलो पुणव्वसू पुस्सो । असलेस महा चित्ता विक्खंभाईसु सिररिक्खा ॥ ७४ ॥ सिररिक्खाउ कमेणं सत्तावीसं पि दिज्ज रिक्खाइं । रेहासु तासु कमसो रिक्खेसु अ ठवसु ससिसूरे ॥ ७५ ॥ एकाए रेहाए जइ दुन्नि वि हुंति चंद आइच्चा । एकग्गलो हु एवं जायइ नक्खत्तदोस त्ति ॥ ७६ ॥ सगुणं पुण विन्नेयं रिक्खं रविजोगसंजुअं तं च । रविरिक्खाओ चउत्थं[४] छ[६]-न्नवं-दसं[१०] तेरसं[१३] वीसं[२०] ॥ ७७ ॥ इत्तो वि लग्गसुद्धी सा पुण छवग्गसुद्धिओ होई । उदयत्थसुद्धिओ तह जहुत्तगहवलगुणेणं च[३] ॥ ७८ ॥ गिहं[१] होरा[२] दिक्काणा[३] नवं[४] वारसं[५] तीसं[६] अंसया य जहिं । सोमग्गहाण तणपा छवग्गसुद्धी तहिं लग्गे ॥ ७९ ॥ जइ पुण छवग्गसुद्धी संभवइ न चेव कह वि लग्गम्मि । तो पंचवग्गसुद्धी विसुद्धिहेऊ वि लग्गस्स ॥ ८० ॥ एसा य वारसण्हं लग्गाणं जंमि तीसइ विभागे । संभवइ तयं वुच्छं लग्गप-माणं कहेऊणं ॥ ८१ ॥ दोइगुणवीस[२१९] दोएगावन्न[२५१] सय तिन्नि तिजुअ-तेआला[३४३] । सगयाल[३४७] सत्ततीसा[३३७] मेसाइ पला कमुक्कमओ ॥ ८२ ॥ विसं[१४] मयराणं[१४] चउदसे अट्ठमए मीण-कर्क-कन्नाणं[८] । भायम्मि वारसे विच्छियस्स[१२] कुंभस्स छव्वीसे[२६] ॥ ८३ ॥ चउवीसमे तुलाए[२४] मेसस्सिगवीसमंमि भागम्मि[२१] । सीहस्स द्वारसमे[१८] धणमिहुणाणं च सत्तरसे[१७] ॥ ८४ ॥ इय

तीसइभागेसु छव्वग्गो हुति पचवग्गो वा । सोमग्गहाण तणओ हियं-इच्छियकज्जसिद्धिकरो ॥ ८५ ॥ अन्ने नवसगं चिय एगं घित्तूण सोम-गहतणय । पभणति लग्गसुद्धिं विणा वि छव्वग्गसुद्धीए ॥ ८६ ॥ गिह-होराई लग्गे गहस्स ज जस्स सतिअ होइ । त सपइ पयडत्थं वुच्छ अवुहाण वोहत्थ ॥ ८७ ॥ कुजसुक्कवुहिंदुरविवुहसियकुजगुरुसणीसणी-गुरूण । मेसाईआ उ वारस लग्गाण घराइ जहसख ॥ ८८ ॥ लग्ग-स्सद्धं होरा सा पढमा दिणयरस्स विसममि । वीआ य तहिं ससिणो विवज्जएण समे लग्गे ॥ ८९ ॥ दिक्काणो अ तिभागो सो पढमो नियय-रासिअहिवइणो । वीओ पचमपहुणो तइओ पुण नवमगिहवइणो ॥९०॥ मेसे मेसाईआ विसमि मयराइया नवसाओ । मिहुणम्मि तुलाईया कक्के कक्काइया हुति ॥ ९१ ॥ पुण मेसमयरतुलकक्कडाइया चउसु सीहमाईसु । एव धनुहाईसु वि नवसया हुति नायव्वा ॥ ९२ ॥ बारसभागो पयडो सो पढमो निअरासिणो होइ । बीओ बीयस्स उ जाव बार बारसस्स भवे ॥ ९३ ॥ कुजसणिगुरुवुहसुक्का पणं पणं अट्ठ सत्त पचं असाण । विसमे तीसस पहू विवज्जएण समे लग्गे ॥ ९४ ॥ ससहरगुरुवुहसुक्का सोमा सामन्नओ मुणेयव्वा । सेसा य हुति कूरा तज्जुअवुहखीणस-सिणो अ ॥ ९५ ॥ उदयत्थसुद्धिमिन्हि भणामि उदओ नवसगो इत्थ । तम्मिय लग्गविइन्ने सनाहदिट्ठे उदयसुद्धी ॥ ९६ ॥ लग्गे नवसगो जो तस्सत्तमठाण अहिवई पिच्छे । लग्गा सत्तमठाण जइ तो इह अत्थ-सुद्धि त्ति ॥ ९७ ॥ वयगहणपइट्ठासु उदयत्थविसुद्धिवज्जिअ पि सुह । मन्नति केइ लग्ग त च भय वहुमय नेह ॥ ९८ ॥ इह उदयत्थविसुद्धी गहदिट्ठीए विणा न सभवइ । एएण पसगेण गहदिट्ठी सपवक्खामि ॥९९॥ सट्ठाणाओ दसम ठाण तइय च पायदिट्ठीए । पिच्छति गहा नवम सपचम अद्धदिट्ठीए ॥ १०० ॥ पउणाए दिट्ठीए चउत्थय अट्ठम च पिच्छति । सव्वाए सत्तमय सुहासुहफल च दिट्ठिसम ॥ १०१ ॥ लग्गस्स गहा वलिणो हवति ते जत्थ सठिया ठाणे । त वुच्छ दिक्पाए पढम पच्छा पइट्ठाए ॥ १०२ ॥ दिक्खा लग्गे दो पच छट्ठ इक्कारसो रवि सुहओ ।

चंदो वीओ तइओ छट्ठो इक्कारसो तह य ॥ १०३ ॥ तइओ छट्ठो दसमो इक्कारसमो कुजो वुहो अ सुहो । लग्गगओ चउ-पंच-सत्तम-नव-दसमगो अ गुरू ॥ १०४ ॥ तइओ छट्ठो नवमो दुवालसो सुंदरो भवे सुक्को । वीओ पंचमओ अट्ठमो अ इक्कारसो अ सणी ॥ १०५ ॥ दुपणछट्ठो दु-ति-छट्ठे ति-छ-दसि ति-छ-दसि तिकोणकिंदेसु । ति-छ-न-व-वारसि दु-पण-ट्ठ सत्ति इगारे सियं मुत्तुं ॥ १०६ ॥ गुरुबुहससिसूराणं[1] छव्वग्गो इह सुहो न सेसाणं । जा उण छव्वग्गसुद्धी पुव्वुत्ता सा पइट्ठाए ॥ १०७ ॥ अहवा वि मज्झिमबलं काऊण सणिं गुरुं च बलवंतं । अवलं शुक्कं लग्गे तो दिक्खं दिज्ज सीसस्स ॥ १०८ ॥ दुपणछअट्ठेक्कारसठाणे मज्झिमवलो सणी होइ । लग्गगओ चउ सत्तम दसमो अ गुरू भवे बलवं ॥ १०९ ॥ छट्ठो दुवालसो तह अवलो सुक्को सुहो वयग्गहणे । दो तइय पंच छट्ठिक्कारसमो तह बुहो सुहओ ॥ ११० ॥ तइए छट्ठे दसमे इक्कारसमम्मि मंगले लग्गे । दिक्खं पत्तो सत्तो जायइ बहुनाण-तवजुत्तो ॥ १११ ॥ सुक्कंगारयमंदाण सत्तमे ससहरे गहियदिक्खो । पीडिज्जए अवस्सं सत्थदुसीलत्तवाहीहिं ॥ ११२ ॥ इय दिक्खाकुंडलिया दिसिमित्तं दंसिआ मए एवं । वुच्छं इओ पइट्ठाकुंडलियमहं समा-सेणं ॥ ११३ ॥ गुरुवुहसुक्का सुहया लग्गगया मज्झिमो ससी लग्गे । सूरंगारयसणिणो वज्जेयव्वा पयत्तेणं ॥ ११४ ॥ गुरुवुहससिणो सुहया वीए ठाणम्मि मज्झिमो सुक्को । कज्जस्स विणासयरा दिणयरसणिमंगला वीआ ॥ ११५ ॥ तइयम्मि सुहा रविससिवुहभोमसणिच्छरा न संदेहो । मज्झिमओ सुरमंती सुक्को उ असुंदरो तइओ ॥ ११६ ॥ लग्गाओ चउत्थगया गुरुवुहसुक्का सुहावहा भणिया । मज्झत्थो अ चउत्थो चंदो सेसा गहा असुहा ॥ ११७ ॥ रविससिकुजसुक्कसणी पंचमठाणम्मि मज्झिमा नेआ । बुहगुरुणो पुण दुन्नि वि सव्वत्थपसाहया तत्थ ॥ ११८ ॥ रविससिकुजगुरुसणिणो छट्ठे ठाणम्मि संठिआ सुहया । सुक्कबुहा पुण छट्ठा मज्झिमया हुंति नायव्वा ॥ ११९ ॥ सत्तमठाणम्मि गुरू सुहओ

[1] गुरु बुह सणि सूराणं इति प्रत्यन्तरे.

सियससिबुहा य मज्झत्था । सणिसूरमगला पुण वज्जेअव्वा पयत्तेणं ॥ १२० ॥ आइच्चसोममगलबुहगुरुसुक्का विवज्जणिज्जाओ । अट्ठमठाणम्मि ठिया सणिच्छरो मज्झिमो भणिओ ॥ १२१ ॥ नवमम्मि सुहा भणिया सुक्कगुरू मज्झिमा य बुहससिणो । वज्जेयव्वा य सया सणिमगलदिणयरा नवमा ॥ १२२ ॥ बुहगुरुसुक्का तिन्नि वि दसमम्मि हवति कज्जसिद्धिकरा । ससिसणिणो मज्झत्था असुहा रविमगला दुन्नि ॥ १२३ ॥ सूराईया सत्त वि इक्कारसगा उ कज्जसिद्धिकरा । वारसमा पुण सव्वे विन्नेया अत्थहाणिकरा ॥ १२४ ॥ छट्ठे दुगे अ छट्ठे आइम पण दसमयम्मि अतिअट्ठे । चउनवदसगे ति छगे सव्वेगारे न वारसमे ॥ १२५ ॥ अहवा इगदुगचउपचनवमदसमा सुहा सोमा । कूरा छट्ठा चदो वीओ सव्वे वि इक्कारा ॥ १२६ ॥ इय विंवपइट्ठा सूरिट्ठवण-रायाभिसेअ-वीवाहे । अन्ने वि य सुहकज्जेसु कुडलिया कज्जसिद्धिकरा ॥ १२७ ॥ जइ पुण तुरिय कज्ज हविज्ज लग्ग न लब्भए सुद्ध । तो धुयपयच्छायाई निच्च लग्ग गहेयव्व ॥ १२८ ॥ तिरिय ठियम्मि धुवए करिज्ज दिक्खा पइट्ठमाईय । उद्धट्ठियम्मि तम्मि य कुणसु धयारोवणप्पमुह ॥ १२९ ॥ तणुछायाइपयाइ सणिससिसुक्केसु अद्धनव लिज्जा । अट्ठ बुहे नव भोमे सत्तिगारस गुरुरवीसु ॥ १३० ॥ एय छायालग्ग बुहेहिं सव्वुत्तम समक्खाय । सव्वविसुद्धे वि दिणे सुहावह सव्वकज्जेसु ॥ १३१ ॥ इय सुदरे वि लग्गे सुहसउणवलेण कुणसु किच्चाइ । अहव निमित्तवलेण वयणमिण हारिभद्द ति ॥ १३२ ॥ इय तिविहसुद्धिजुत्त तीए विउत्त च ससिय लग्ग । ज किंचि इह अजुत्त वुत्त सोहिंतु त विउसा ॥ १३३ ॥

॥ इति श्रीहारिभद्रीयं लग्नशुद्धिप्रकरणम् ॥



॥ परोपकारप्रवणश्रीरत्नशेखरसूरिविरचिता ॥

॥ दिनशुद्धिः ॥

जोइसयं जोइगुरुं वीरं नमिऊण जोइदीवाउ । दिणसुद्धि दीविअमिणं पयडत्थं चेव पयडेमि ॥ १ ॥ रविचंदभोमबुहगुरुसुक्कसणिया कमेण दिणनाहा । चं सु गु सोमा मं स र कूरा य बुहो सहायसमो ॥२॥ चं स गु मं र सु बु वलयकमसो दिणवारमाइउ किच्चा । सड्ढघडीदोमाणा होराहिव पुण्णफलजणया ॥ ३ ॥ विच्छिअकुंभाइतिए निसिमुहि विसधणुहिकक्कितुलि मज्झे । मकमिहुणकन्नसिंहे निसिअंते संकमइ वारो ॥ ४ ॥ चउघडिअ सुवेला, एग दो छच्च सूरे, पण इग अड सोमे, अट्ठ चऊ सत्त भोमे । छ तिअ अड बुहम्मि, पंच दो सत्त जीवे, छ अडिग चउ सुक्के, तिन्नि सत्तट्ठ पंच ॥ ५ ॥ रविबुहसुक्का सत्तउ हायंता कुलिअकंटउवकुलिआ । अड ति छ इग चउ सग दो सूराइसु कालवेलाओ ॥ ६ ॥ ता चउजुअ अद्धपहरा तेसिं सोलडदुतीसदुएगचऊ । चउसट्ठी मज्झपला हेया पुव्वाउ दिसि छट्ठी ॥ ७ ॥

योग	रवि	सोम	मंगळ	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	
कुलिक	७	६	५	४	३	२	१	अर्धप्रहर.
कंटक	३	२	१	७	६	५	४	अर्धप्रहर.
उपकुलिक	५	४	३	२	१	७	६	अर्धप्रहर.
काळवेळा	८	३	६	१	४	७	२	अर्धप्रहर.
वर्ज्य अर्धप्रहर	४	७	२	५	८	३	६	
अर्धप्रहरना मध्य पळो यात्रादिकर्मा वर्जवा.	१६ पूर्व	८ वायव्य	३२ दक्षिण	२ ईशान	१ पश्चिम	४ अग्नि	६४ उत्तर	

	नंदा	भद्दा	जया	रित्ता	पूर्णा
तिथि	१	२	३	४	५
तिथि	६	७	८	९	१०
तिथि	११	१२	१३	१४	१५

नंदा भद्दा य जया रित्ता पुण्णा य तिहि
सनामफला । पडिवड छट्ठि इगारसि
३ पमुहा उ कमेण नायव्वा ॥ ८ ॥ छट्ठी
रित्तट्ठमी बारसी अ अमावसा गयतिही
उ। वुड्ढतिहि कूरदड्ढा वज्जिज्ज सुहेसु कम्मेसु ॥९॥ मेसाइ चउसु चउरो तिही
६ कमेण च पुण्ण सव्वेसु । एव परउ सकूररासि असुहा तिही वज्जा ॥१०॥
छग् चउ अट्ठमि छट्ठि दसमट्ठमि बार दसमि बीया उ । बारसि चउत्थि
बीआ मेसाइसु सूरदड्ढदिणा ॥११॥ →। इति तिथिद्वारम् ।← सउणि चउप्पय

९ सूर्य धन मीन संक्रान्तिमां २, वृष कुंभ संक्रान्तिमां ४ दग्धा
मेष कर्क संक्रान्तिमां ६, कन्या मिथुन संक्रान्तिमां ८
वृश्चिक सिंह संक्रान्तिमां १०, मकर तुला संक्रान्तिमां १२

१२ नागा किंत्थुग्घा किण्हचउद्दसि निसाओ । थिरकरण तीस घडिआ परओ
चलकरण एयाइं ॥१२॥ बव बालव-कोलव-तेतिलक्ख गर-वणिअ-विट्ठिनामाणो । पाय सव्वे वि सुहा एगा विट्ठी महापावा ॥१३॥ किण्हे पक्खे दिणे
१५ भद्दा सत्तमी अ चउद्दसी । रत्तिं दसमि तीआए सुक्के एगदिणुत्तरा ॥१४॥

भद्रानिवासयन्त्रम् ।

तिथि	प्रहर	दिशा
१४	१	पूर्व
८	२	अग्नि
७	३	दक्षिण
१५	४	नैर्ऋत्य
४	५	पश्चिम
१०	६	वायव्य
११	७	उत्तर
३	८	ईशान

चउद्दसी अट्ठमी सत्तमीए राका चउत्थी दसमीइ
१८ भद्दा । एगारसी तीअ कमा दिसाहिं तस्सरजामे
भिमुहाऽतिपावा ॥ १५ ॥ पण दुग दस पण पण
तिअ विट्ठिवडी वयण कठ उरु नाही। कडि पुच्छगा
२१ य सिद्धिसयनिस्सकुबुद्धिकलहविजयकरा ॥ १६ ॥
किंत्थुग्घ सउणि कोलव उड्ढकरण तिन्नि, तिन्नि सुत्ताइ।
तेइल नाग चउप्पय, पण सेस निविट्ठकरणाइ॥१७॥
२४ → इति कारणद्वारम् ← ति ति छ पण ति एग चऊ
ति छ पण दु दु पणिग एग चउ चउरो। ति इगार चउ चउ तिग ति चउ
सय दु दुग बत्तीस ॥ १८ ॥ इअ रिक्खाण कमसो परिअरतारामिई
२७ मुणेयव्वा । तारासमसखागा तिहीं वि रिक्खेसु वज्जिज्जा ॥ १९ ॥

नक्षत्र	तारा	नक्षत्र	तारा	नक्षत्र	तारा	नक्षत्र	तारा
अश्विनी	३	पुष्य	३	स्वाति	१	अभिजित्	३
भरणी	३	अश्लेषा	६	विशाखा	४	श्रवण	३
कृत्तिका	६	मघा	५	अनुराधा	४	धनिष्ठा	४
रोहिणी	५	पूर्वाफाल्गुनी	२	ज्येष्ठा	३	शतभिषक्	१००
मृगशीर्ष	३	उत्तराफाल्गुनी	२	मूळ	११	पूर्वाभाद्रपद	२
आर्द्रा	१	हस्त	५	पूर्वाषाढा	४	उत्तराभाद्रपद	२
पुनर्वसु	४	चित्रा	१	उत्तराषाढा	४	रेवती	३२

ऊ-खा अंतिमपायं सवण पढमघडिअचउ अभीइठिई । लत्तोवग्गहवेहे एगग्गलपमुहकज्जेसु ॥२०॥ किंत्ति मिग पुण असेसा उ-फ चि विसा जिट्ठ उ-ख धणी पू-भा । रेवइ अ एग दु ति चउ पायंता वार रासि कमा ॥२१॥

राशियुतानि नक्षत्रपादाक्षराणि

[मेष–चु चे चो ला अश्विनी
लि लु ले लो भरणी
अ [वृष–इ उ ए कृत्तिका
ओ व वि वु रोहिणी
वे वो [मिथुन–क कि मृगशिर
कु घ ङ छ आर्द्रा
के को ह [कर्क–हि पुनर्वसु
हु हे हो डा पुष्य
डि डु डे डो अश्लेषा
[सिंह–म मि मु मे मघा
मो ट टि टु पूर्वाफाल्गुनी
टे [कन्या–टो प पि उत्तराफाल्गुनी
पु ष ण ठ हस्त
पे पो [तुला–र रि चित्रा
रु रे रो ता स्वाति.
ति तु ते [वृश्चिक–तो विशाखा.
न नि नु ने अनुराधा.
नो य यि यु ज्येष्ठा.
[धन–ये यो भ भि मूळ.
भु ध फ ढ पूर्वाषाढा.
भे [मकर–भो ज जि उत्तराषाढा.
जु जे जो ख अभिजित्
खि खु खे खो श्रवण.
ग गि [कुम्भ–गु गे धनिष्ठा.
गो स सि सु शतभिषक्
से सो द [मीन–दि पूर्वाभाद्रपद.
दु श झ थ उत्तराभाद्रपद.
दे दो च चि रेवती.

गय हरिअ मया मोया हासा किड्डा रई सयणसरणं । तावा कंपा सुत्था ससिवत्था बार नामफला ॥ २२ ॥ पइरासि बारसंसा असुहा उ चए जओ सुहो वि ससी । एयाहिं हवइ असुहो सुहाहिं असुहो वि होइ सुहो ॥ २३ ॥ दाहिणुच्चो समो चंदो उत्तरुच्चो हलोवमो । धणु घक्को अ सूलाभो मेसासु अ कमुक्कमा ॥ २४ ॥ इति चन्द्रबलम्

जम्मा कम्मं च आहाणं तारा अट्ठट्ठ अंतरे । सस्सनामफला सव्वा अंतरा

इअ नामिआ ॥ २५ ॥ सपई आवई खेमा जामा साहण निहणा । मित्ती परममित्ती अ दुट्ठा ति सग पचमा ॥२६॥ जम्माहाणा विवज्जिज्जा गमे एयाहिं वाहिओ । कट्ठेण जीवई किण्हे पक्खे चंदुत्तरा इमा ॥२७॥

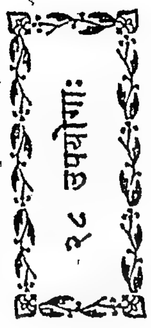
जन्म	सपद्	आपद्	क्षेमा	यामा	साधना	निधना	मैत्री	परम मैत्री
कर्म	॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥
आधान	॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥	॥

चउ छट्ठ नवम दसम तेरस वीस च सूररिक्खाओ । ससिरिक्ख होइ तया रविजोगो असुहसयदलणो ॥ २८ ॥ सोमे भोमे बुहे सुक्के अस्सिणाइ विइतरा । पचमी दसमी नदा सुहो जोगो कुमारओ ॥ २९ ॥ सूरे सुक्के बुहे भोमे भद्दा तीया य पुण्णिमा । नितरा भरणीमुक्खा राजजोगो सुहावहो ॥३०॥ थविरो गुरु सणि तेरसि रित्तट्ठमि किन्तिआ दुगतरिआ । रुअछेआणसणाई अपुण(णो)करण इह कुज्जा ॥ ३१ ॥ मगल गुरु सणि भद्दा मिग चित्त धणिट्ठिआ जमलजोगो । किन्ति पुण उ–फ विसाहा पू—भ उ–साहिं तिपुक्खरओ ॥ ३२ ॥ पचग धणिट्ठ अद्धा मयकिअवज्जिज्ज जामदिसिगमण । एसु तिसु सुहं असुहं विहिअ दु ति पण गुण होइ ॥ ३३ ॥ पण छस्सग नव घडिआ विक्खभ दुगड

योगनामानि २७

१ विष्कंभ	८ धृति	१५ वज्र	२२ साध्य
२ प्रीति	९ शूल	१६ सिद्धि	२३ शुभ
३ आयुष्मान्	१० गंड	१७ व्यतीपात	२४ शुक्ल
४ सौभाग्य	११ वृद्धि	१८ वरीयान्	२५ ब्रह्मा
५ शोभन	१२ ध्रुव	१९ परिघ	२६ ऐन्द्र
६ अतिगंड	१३ व्याघात	२० शिव	२७ वैधृति
७ सुकर्मा	१४ हर्षण	२१ सिद्ध	

सूल वाघार । परिहद्धदिण वज्जे विहिइ विईपाय सयलदिण ॥ ३४ ॥ अस्सिणि मिग अस्सेसा हत्थ णुराहा य उत्तरासाढा । सयभिस कमेण एए सूराइसु हुति मुहरिक्खा ॥ ३५ ॥ निअवारे निअरिक्खे मुहगणिए जत्तिय ससीरिक्ख । तावतिमोवओगो आनदाई सनामफलो ॥ ३६ ॥



१ आनंद	८ श्रीवत्स	१५ लुंपक	२२ मुशळ
२ काळदंड	९ वज्र	१६ प्रवास	२३ गज
३ प्राजापत्य	१० मुद्गर	१७ मरण	२४ मातंग
४ शुभ	११ छत्र	१८ व्याधि	२५ क्षय
५ सौम्य	१२ मित्र	१९ सिद्धि	२६ क्षिप्र
६ ध्वांक्ष	१३ मनोज्ञ	२० शूळ	२७ स्थिर
७ ध्वज	१४ कंप	२१ अमृत	२८ वर्धमान

नवमेगट्ठमी सूरे सोमे बीआ नवमिआ । भोमे जया य छट्टी अ बुहे भद्दा तिही सुहा ॥ ३७ ॥ गुरु एगारसी पुन्ना सुक्के नंदा य तेरसी । सणिंमि अट्ठमी रित्ता तिही वारेसु सोहणा ॥ ३८ ॥ रेवस्सिणी धणिट्ठा य पुण पुस्स तिउत्तरा । सूरे सोमंमि पुस्सो अ रोहिणी अणुराहया ॥ ३९ ॥ भोमे मिगं च मूलं च अस्सेसा रेवई तहा । बुहे मिगसिरं पुस्सा सेसा सवण रोहिणी ॥ ४० ॥ जीवे हत्थ स्सिणी पू–फ विसा-हादुग रेवई । सुक्के उ–फा उ–खा हत्थं सवणाणु पुणस्सिणी ॥ ४१ ॥ सणिंमि सवणं पू–फा महा सयभिसा सुहा । पुव्वुत्ततिहिसंजोगे विसेसेण सुहावहा ॥ ४२ ॥ हत्थं मिग स्सिणी चेवाणुराहा पुस्स रेवई । रोहिणी वारजोगेणामिअसिद्धिकरा कमा ॥ ४३ ॥ वारेसु कमसो रिक्खा विसा-हाइ चऊ चऊ । उप्पायमच्चुकाणाक्ख सिद्धिजोगावहा भवे ॥ ४४ ॥

	रवि	सोम	मंगळ	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उत्पात	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उत्तराफाल्गुनी
मृत्यु	अनुराधा	उत्तराषाढा	शतभिषक्	अश्विनी	मृगशिर	अश्लेषा	हस्त
काण	ज्येष्ठा	अभिजित्	पूर्वाभाद्रपद	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्धि	मूळ	श्रवण	उत्तराभाद्रपद	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूर्वाफाल्गुनी	स्वाति.

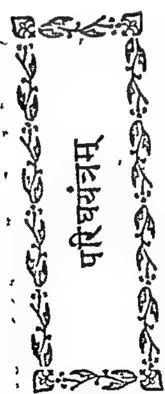
भ वि आ मू कि रो ह सूराइसु वज्जणिज्ज जमघंटा । भ चि उ–ख ध उ–फा जे रे इअ असुहा जम्मरिक्खा य ॥ ४५ ॥ गुरि सयभिस सणि उत्तरसाढा एया विवज्जए पायं । बारसि एगेगहीणा सूराइसु कक्कजोगु चए ॥ ४६ ॥ छट्ठि सत्तमि इगार चउद्दसी सूरि सोमि सग बार तेरसी । मंगले इग इगारसी बुहे वज्जए इग चउद्दसी जया ॥४७॥ छट्ठि चउत्थि सह्भद्दया गुरु सुक्कि बीअ सह तीइ रित्तया । पुन्न सत्तमि सणिंमि सव्वहा

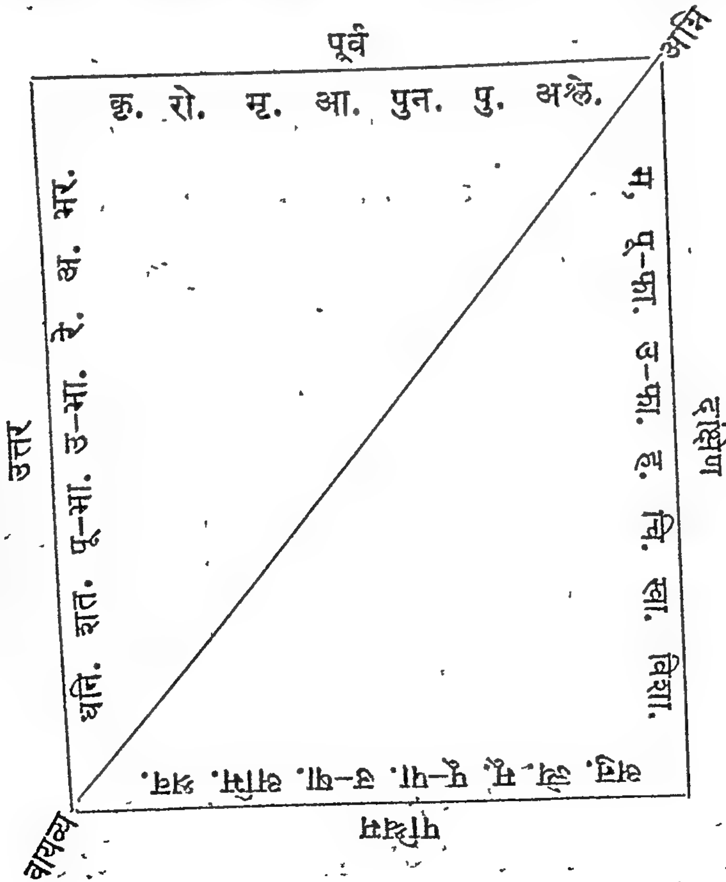
वज्जए इअ तिही विसेसओ ॥४८॥ ❈ इति योगा ❈ चरमाइमतिहिलग्गरिक्ख मज्झेगअद्धदोघडिआ । तिदुमत्तंतरि मुत्तुं पुणो पुणो तिविह गडत ॥ ४९ ॥ नट्ठ न लब्भए अत्थ अहिदट्ठो न जीवई । जाओ वि मरई पाय पत्थिओ न निअत्तई ॥ ५० ॥ वीआणुराह तीआ तिगुत्तरा

नाम	वेनी वच्चे	वेनी वच्चे	वेनी वच्चे	घडी
तिथि गडात	१५-१	५-६	१०-११	एक घडी
लग्न गडात	मीन-मेष	कर्क-सिंह	वृश्चिक-धन	अर्ध घडी
नक्षत्र गडात	रेवती-अश्विनी	अश्लेषा-मघा	ज्येष्ठा-मूळ	बे घडी

पचमीइ महरिक्ख । रोहिणि छट्ठी करमूल सत्तमी वज्जपाओऽय ॥५१॥ *मूलद्दसाइचित्ता असेससयभिसय कित्तिरेवइआ । नदाए भद्दाए भद्दवया फग्गुणी दो दो ॥ ५२ ॥ विजयाए मिग सवणा' पुस्सस्सिणि' भरणि जिट्ठ रित्ताए । आसाढदुग विसाहा अणुराह पुणव्वसु महा य ॥ ५३ ॥ पुन्नाइकरधणिट्ठा रोहिणि इअ मयगवत्थरिक्खाइ । नंदिपइट्ठापमुहे सुदकज्जे वज्जए मइम ॥ ५४ ॥ *जिट्ठद्दाऽसेस मूल म्र तिक्खा रिक्खा विआहिआ । मिउणि मिग चित्ता य रेवई अणुराहया ॥ ५५ ॥ पुस्सो अ अस्सिणी हत्थ अभिई लहुआ इमे । उग्गाणि पच रिक्खाणि तिपुव्वा भरणी महा ॥ ५६ ॥ चरा पुणव्वसू साई सवणाइतिअ तहा । ध्रुवाणि पुण चत्तारि उत्तराणि अ रोहिणी ॥ ५७ ॥ विसाहा कित्तिआ चेव दो अ मिस्सा विआहिआ । तिक्खे तिगिच्छ कारिज्जा मिऊ गहणधारणे ॥ ५८ ॥ लहू चरे सुहारभो उग्गरिक्खे तव चरे । ध्रुवे पुरपवेसाई मिस्से सधिकिअ करे ॥५९॥ *दसघणु उवरिं संयपच मज्झि पत्थाणि जाव दिण तिन्चऊ । थायव्व लग्गतिहीरायणरिक्खससिबल घित्तु ॥ ६० ॥ *पहि कुसलु लग्गि तिहि कज्जसिद्धि लाभ मुहुत्तओ होइ । रिक्खेण आरोग्ग चदेण सुक्ख सपत्ती ॥६१॥ *पाडिवए पडिवत्ती नत्थि विवत्ती भणति वीआए । तइआइ अत्थसिद्धी विजयग्गी पचमी भणिआ ॥६२॥ सत्तमिआ वहुलगुणा मग्गा निकटया दसमिआए । आरुग्गिआ इगारसि तेरसि रिउणो निविज्जिणइ ॥६३॥ *चाउदसिं पन्नरसिं वज्जिज्जा अट्ठमि च नवमिं च । छट्ठि चउत्थि वारसिं च दुन्ह पि पक्खाण ॥ ६४ ॥

*दसमि पंचमि तेरसि वीअगो भिगुसुओ गमणेऽतिसुहावहो । गुरु पुणव्वसु पुस्स विसेसओ सयभिसा अणुराह बुहे तहा ॥६५॥ *सव्वदिसि सव्वकालं सिद्धिनिमित्तं विहारसमयंसि । पुस्सस्सिणिमिगहत्था रेवइसवणा गहेयव्वा ॥ ६६ ॥ *वज्जे वारतिअं कूरं पडिवाय चउदसी । नवमट्ठमी इमाहिं तु बुहो वि न सुहो गमे ॥ ६७ ॥ *पुस्सस्सिणिमिगसिररेवइअं हत्था पुणव्वसू चेव । अणुराहजिट्ठमूलं नव नक्खत्ता गमणसिद्धा ॥ ६८ ॥ रोहिणी तिन्नि उ पुव्वा सवणधणिट्ठा य सयभिसा चेव । चित्ता साई एए नव नक्खत्ता गमणि मज्झा ॥ ६८ ॥ कित्तिअभरणिविसाहा अस्सेसमहउत्तरातिअं अद्दा । एए नव नक्खत्ता गमणे अइदारुणा भणिया ॥ ७० ॥ *धुवेहि मिस्सेहि पभायकाले, उग्गेहि मज्झन्हि लहू परण्हे । मिऊ पओसे निसिमज्झि तिक्खे, चरे निसंते न सुहो विहारो ॥७१॥ *पुव्वाइसु सग सग कित्तिआइं दिसि रिक्ख सदिसि हुंति सुहा । घरदिसि मज्झा वायग्गि परिहरेहा न लंघिज्जा ॥ ७२ ॥





*सूलं पुव्विं सणी सोमो, दाहिणाए दिसा गुरू । पच्छिमाइ रवी सुक्को, उत्तराए कुजो बुहो ॥ ७३ ॥ ईसाणे अ बुहो मदो, अग्गीइ अ गुरू रवी । नेरइए ससी सुक्को, भोमो वाए विवज्जए ॥ ७४ ॥ *चदण दहि मट्टी अ तिल्ल पिट्ठ तहा पुणो । तिल्ल खल च चदिज्जा सूराई सूलमुत्तरो ॥ ७५ ॥ *उदयदिसि भसूल दो असाढा य जिट्ठा, धणिसवण विसाहा पूव्वभद्दा जमाए । अह् वरुणदिसाए रोहिणी पुस्समूल, सुरगिरिदिसि हत्थो फग्गुणीदो विसाहा ॥७६॥ मीणाइतिसकती पच्छिमाइसु वग्गइ । वच्छो गमे पवेसे वि न सुहो पिट्टिसमुहो ॥ ७७ ॥ इगनवगाइकमा तिहि पुव्वुत्तरअग्गिनेरदाहिणए । पच्छिमवाईसाणे जोइणि सा वामपिट्टि सुहा ॥७८॥ दिणदिसि धुरि चउघडिया परओ पुव्वुत्तदिसिहि

दिशा	पूर्व	उत्तर	अग्नि	नैर्ऋत्य	दक्षिण	पश्चिम	वायव्य	ईशान [योगिनी]
तिथि	१-९	२-१०	३-११	४-१२	५-१३	६-१४	७-१५	८-३० (अमावस)

कमसो । तक्कालजोइणी सा वज्जेयव्वा पयत्तेण ॥७९॥ उदयत्थमणा चउ चउ घडियाइ राहु पुव्वदिसि तत्तो । सिदूधीए दिसि छट्टि गओ सुहो पुट्टिदाहिणओ ॥ ८० ॥ चित्तुत्तरिगदुमासा दिसि विदिसि विसिट्ठि सिवु तओ उदया । सिट्टि अढाई पणि घडि दिसि विदिसिं पुट्टिमुट्टि सुहो ॥८१॥ रवि रत्तिअतपहराओ पुव्वाइसु दुन्नि दुन्नि पहर कमा । दाहिण-

वायव्य वैशाख ज्येष्ठ घडी ५	उत्तर चैत्र घडी २॥	ईशान माघ फाल्गुन घडी ५
पश्चिम आषाढ घडी २॥	शिवचक्र	पूर्व पोष घडी २॥
श्रावण भाद्रपद घडी ५ नैर्ऋत्य	आश्विन घडी २॥ दक्षिण	अग्नि कार्तिक मार्गशीर्ष घडी ५

पुट्टि विहारे वामो पुट्टि पवेसि सुहो ॥ ८२ ॥ उदयवसा अहवा दिसिदारभवसओ हवे ससीउदओ । सो अभिमुहो पहाणो गमणे अमिआइ वर-

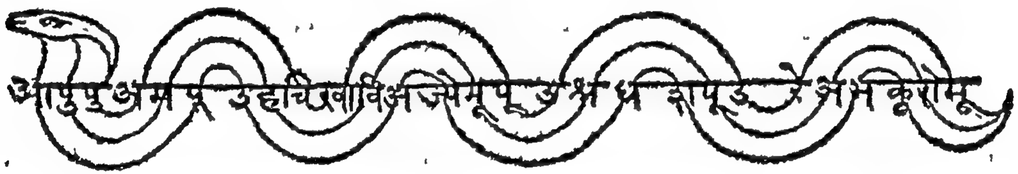
संतो ॥८३॥ जहिं उग्गइ जहिं दिसि भमइ जहिं च दारभट्ठाइ । तिहुं परिसंमुह सुक्क पुण उदउ जि इक्कु गणणइ ॥८४॥ सियपडिवयाउ पुव्वाइसु पासु दसदिसिहिं कालु तयभिमुहो । कुज्जा विहारि वामो पासो कालो उ दाहिणओ ॥८५॥ पुण्णनाडिदिसापायं अग्गे किच्चा सया विऊ। पवेसं गमणं कुज्जा कुणंतो साससंगहं ॥८६॥ —॥ इति प्रस्थानम् ॥— चेइअसुअं धुवमिउ-कर-पुस्स-धणिट्ठ-सयभिसा-साई । पुस्स-तिउत्तर-रे-रो कर-मिग-सवणे सिलनिवेसो ॥ ८७ ॥ सतभिस-पुस्स-धणिट्ठा-मिगसिर-धुव-मिउ अ एहिं सुहवारे । ससि गुरु-सिए उइए गिहे पवेसिज्ज पडिमाओ ॥८८॥ तिपुव्व-मूलं-भरणी विसाहा, ऽसेसा-महा-कित्ति अहोमुहाइं । रेवस्सिणी हत्थ-पुणाऽणु-चित्ता, जिट्ठा-मिगं-साइ तिरिच्छगा य ॥८९॥ तिउत्तर-ऽद्दा-सवणत्तिअं च उड्ढंमुहा रोहिणि पुस्सजुत्ता । भूमीहराई गमणागमाई धयावरोवाइ कमेण कुज्जा ॥९०॥ छट्ठट्ठमत्तं तह रिक्खजोणी, वग्गट्ठ नाडीगयरिक्ख-भावं । विसोवगा देवगणाइ एवं, सव्वं गणिज्जा पडिमाभिहाणे ॥९१॥ विसमा अट्ठमे पीई समाउ अट्ठमे रिऊ । सत्तु छट्ठट्ठमं नामरासिहिं परि-वज्जए ॥ ९२ ॥ वीयबारसंमि वज्जे नवपंचमगं तहा । सेसेसु पीई निद्दिट्ठा जइ दुच्चागहमुत्तमा ॥ ९३ ॥ आसगयमेससप्पा सप्पासाणबिडाल-मेससमज्जारा । आखुदुंगगवीमहिसी वग्घो महिसी पुणो वग्घो ॥ ९४ ॥ मिगमिगकुक्कुर वानर नउलदुगं वानरो हरितुरंगो । हरिपसुकुंजर एए रिक्खाण कमेण जोणीओ ॥ ९५ ॥ गयसीहमऽस्समहिसं कपिमेसं साणहरिणअहिनउलं । गोवग्घ विडालुंदर वेरं नामेसु वज्जिज्जा ॥ ९६ ॥ गरुडो विडालसीहो कुक्कुरसप्पो अ मूसगो हरिणो । मेसो अडवग्गपइ कमेण पुण पंचमे वेरं ॥९७॥ असिणाइतिनाडीए इगनाडिगयं सुहं भवे रिक्खं । गुरुसीसाणं तारा वज्जिज्ज तिपंचसत्ततथा ॥ ९८ ॥ सिद्धसाह-



गधुरक्खर वग्गंके कमुकमिण अट्ठ(ग ?)विभत्ते । सेस अद्धकय लभ-विसोअ पच्छिमाउ खलु अग्गगएणं ॥९९॥ देवस्सिणिपुणपुस्सा करसाइ-मिगाणुमवणरेवइआ । मणुअ तिपुव्व तिउत्तर रोहिणि भरणी अ अद्दा य ॥ १०० ॥ *कित्तिअविसाहचित्ता धणिजिट्ठाऽसेसतिन्नि दुग रक्खा । सगणे पीई नरसुर मज्झा सेसा पुणो असुहा ॥१०१॥ → इति प्रतिमाधारणागति दिष्ण्यनामकरण च ← गुरु बुहो अ सुक्को अ सुदरा मज्झिमो रवी । विज्जारंभे ससी पावो सणी भोमा य दारुणा ॥१०२॥ मिगसिर-अद्दा-पुस्सो तिन्नि उ पुव्वा उ मूलमस्सेसा । हत्थो चित्ताइ तहा दस वुड्डि-कराइ नाणस्स ॥१०३॥ पुणव्वसु अ पुस्सो अ सवणो अ धणिट्ठिया । एएहिं चउहिं रिक्खेहिं लोअकम्माणि कारए ॥१०४॥ कित्तिआहिं विसाहाहिं महाहिं भरणीहि अ । एएहिं चउहिं रिक्खेहिं लोअकम्माणि वज्जए ॥ १०५ ॥ मिग-अणु-पुण-पुस्सा जिट्ठ-रेवऽस्सिणीआ, सवण-कर-सचित्ता सोहणा कण्णवेहे । कर-सवणऽणुराहा-रेव-पुस्सऽस्सिणीआ, मिग-धणि-धुव-चित्ता दसणे भूवईण ॥१०६॥ सूरे जिण्ण ससी अद्द मलिण सणि धारिअ । भोमे दुक्खावह होइ वत्थ सेसेहिं सोहण १०७ मिग-पुस्सऽस्सिणी हत्थाऽणुराहा चित्त-रेवई । सोमो गुरु अ दो वारा पत्तवावरणे सुहा ॥ १०८ ॥ जामाइमुहा चउ चउ असिणाई काण चिवड सज्जया । दुसु वत्त जाइ सज्जे अधे लब्भइ गय वत्थु ॥ १०९ ॥

काणा	चीवडा	देखता	आधळो
अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी
मृगशिर	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य
अश्लेषा	मघा	पूर्वाफाल्गुनी	उत्तरफाल्गुनी
हस्त	चित्रा	स्वाति	विशाखा
अनुराधा	ज्येष्ठा	मूळ	पूर्वाषाढा
उत्तराषाढा	अभिजित्	श्रवण	धनिष्ठा
शतभिषा	पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद	रेवती
वस्तु दक्षिणमां गइ छे	वस्तु पश्चिममां गइ छे	वस्तु उत्तरमां गइ छे	वस्तु पूर्वमां गइ छे

रविरिक्खा छब्बाला बारस तरुणा नव परे थेरा । थेरे न जाइ तरुणेहिं जाइ बाले भमइ पासे ॥ ११० ॥ विसाहा–कित्तिआऽस्सेसा मूलऽद्दा भरणी महा । एयाहिं अहिणा दट्ठो कट्ठेणावि न जीवइ ॥ १११ ॥ पुण–पुस्स उ–फा उ–भ रोहिणीहिं रोगोवसम सत्तदिणे । मूलऽस्सिणि कित्ति नवमे सवण–भरणि-चित्त–सयभिसेगदसे ॥ ११२ ॥ धणि–कर–विसाहिं पक्खे मह वीसइमे उ–खा मिगे मासे । अणुराह–रेवइ चिरं तिपुव्व जिट्ठऽद्द–ऽस्सेस–साइ–मिइ ॥११३॥ चरलहुमिउमूले रोग-निन्नासहेऊ, हवइ खलु पउत्तं ओसहं वाहिआणं । भिगु–ससि पुण–जिट्ठाऽस्सेस–साइ–महाहिं, न य कहवि विहेयं रोगमुत्ते सिणाणं ११४ नामनक्खत्तमक्किंदू एकनाडीगया जया । तया दिणे भवे मच्चू नन्नहा जिणभासिअं ॥ ११५ ॥ आई अद्दा मिगं अंते मज्झे मूलं पइट्ठिअं । रविंदुजम्मनक्खत्तं तिविद्धो न हु जीवई ॥ ११६ ॥ धुवमिस्सुग्गन-



क्खत्ता मूलऽद्दा अणुराहया । पंचगाई रवी भोमा मयकज्जे विवज्जिया ॥ ११७ ॥ दो पणयालमुहुत्ते तीसमुहुत्तेगपुत्तलं काउं । नेरइअ दाहि-णाए महापरिट्ठावणं कुज्जा ॥ ११८ ॥ तिन्नेव उत्तराइं पुणव्वसु रोहिणी विसाहा य । एए छ नक्खत्ता पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥ ११९ ॥ सयभिस-भरणी साई अस्सेस-जिट्ठऽद्द छच्च नक्खत्ता । पनरसमुहुत्त-जोगा तीसमुहुत्ता पुणो सेसा ॥ १२० ॥ मास–दिण–रिक्खसुद्धिं मुणिऊणं सिद्धच्छायधुवलग्गो । बारंगुलम्मि सुद्धे दिक्खपइट्ठाइअं कुज्जा ॥ १२१ ॥ हरिसयण अकम्मण अहिअमास गुरुसुक्कि अत्थि-सिसु-वुड्ढे । ससि नट्ठे न पइट्ठा दिक्खा सुक्कऽत्थि वि न दुट्ठा ॥ १२२ ॥ अवजो-गकुलिअभद्दा उक्काई जत्थ तं दिणं वज्जे । संकंति साइदिणतिह गहणे इगु आइ सग पच्छा ॥ १२३ ॥ सुद्धतिही सुहवारे सिद्धाऽमियराज-जोगपमुहाइं । जत्थ हवंति सुहाइं सुहकज्जे तं दिणं गिज्झं ॥ १२४ ॥

हत्थऽणुराहा-साई सवणुत्तर-मूलरोहिणी पुस्सा । रेवइ-पुणव्वसु इअ दिक्खपइट्ठा सुहा रिक्खा ॥ १२५ ॥ अस्सिणि-सयभिस-पू-भा एसु वि दिक्खा सुहा विणिद्दिट्ठा । मह-मिग-धणि-पइट्ठा कुज्जा वज्जिज्ज सेमाइं ॥ १२६ ॥ कारावगस्स जम्मे दसमे सोलसमेऽट्ठारसे रिक्खे । तेवीसे पणवीसे न पइट्ठा कह वि कायव्वा ॥ १२७ ॥ सझागय रविगय विड्डुर सग्गह विलय च । राहुहय गहभिन्न वज्जए सत्त नक्खत्ते १२८. अत्थमणे सझागय रविगय जत्थ ट्ठिओ अ आइच्चो । विड्डुरमवद्दारिय सग्गह कूरग्गहठिअ तु ॥ १२९ ॥ आइच्च पिट्ठओ ऊ विलवि राहुहय जहिं गहण । मज्झेण गहो जस्स उ गच्छइ त होइ गहभिन्न ॥ १३० ॥ सझागयम्मि कलहो होइ विवाओ विलविनक्खत्ते । विड्डुरे परविजओ आइच्चगए अनिव्वाण ॥ १३१ ॥ ज सग्गहम्मि कीरइ नक्खत्ते तत्थ विग्गहो होइ । राहुहयम्मि मरण गहभिन्ने सोणिउग्गालो ॥ १३२ ॥ रविरिक्खाओ हेया उवग्गहा पचमऽट्ठ-चउदसमा । अट्ठारस उगुणीसा बावीसा तेवीस चउवीसा ॥ १३३ ॥ सेगविसमजोगद्ध सम अद्ध चउदसग सिररिक्खम् । नाउ चउदससिलाए ससिरवि इक्कग्गल वज्जे १३४

मृगशिर

रोहिणी	आर्द्रा
कृत्तिका	पुनर्वसु
भरणी	पुष्य
अश्विनी	अश्लेषा
रेवती	मघा
उत्तरा	पूर्वा
पूर्वा	उत्तरा
शतभिषा	हस्त
धनिष्ठा	चित्रा
श्रवण	स्वाति
अभिजित्	विशाखा
उत्तरा	अनुराधा
पूर्वा	ज्येष्ठा

मूळ

अस्से म चि अणु सव रे विसमारेहा उ सेसमभिलहिउं । रविरेहस्सिणि गणिए इट्ठे रिक्खे विसमि पाउ ॥ १३५ ॥ रविमुक्खा निअरिक्खा बारट्ठम तिअ तिवीसं छट्ठं च । पणवीस अडिगवीसं कुणंति लत्ताहयं रिक्खं ३ ॥ १३६ ॥ सत्त सिलाए किंत्तिअमाई रिक्खे ठवित्तु जोएह । गहवेहमिट्ठरिक्खे उवरि अहो वा पयत्तेण ॥ १३७ ॥ पंचसिलाए दो दो रेहा

कृ. रो. मृ. आ. पुन. पुष्य. अश्ले.

भ. — मघा
अ. — पूर्वा
रे. — उत्तरा
उ. — हस्त
पू. — चित्रा
श. — स्वाति
ध. — विशाखा

श्र. अभि. उ. पू. मू. ज्ये. अनु.

कोणेसु रोहिणीमुक्खा । दिसि धुरि रिक्खा उ कमा वए विलोइज्ज वेहमिहं ॥ १३८ ॥ सिद्धच्छायालग्गं रवि-कुज-बुह-जीव संकुपाय कमा । ७

कृ. रो. मृ. आ. पु. पु. अ.

भ. — म.
अ. — पू.
रे. — उ.
उ. — ह.
पू. — चि.
श — स्वा.
ध. — वि.

श्र. अभि. उ. पू. मू. ज्ये. अनु.

एगारस नव अड सग अद्धट्ठा (नव) सेसवारेसु ॥ १३९॥ तिरिच्छगे
धुवे दिक्खा पइट्ठाइ सुहकरे । उड्ढुट्टिए धयारोत्र-खित्तगाई समायरे १४०
३ वीस सोलस पनरस चउदस तेरस य बार वारेव । रविमाइसु वारगु-
लसकुच्छायगुला सिद्धा ॥ १४१ ॥ तिक्खुग्गमिस्सरिक्खाणि चित्ता
भोमसणिच्छर । पढम गोअरं नदी पमुह सुहमायरे ॥ १४२ ॥ इअ
६ जोगपईवाओ पयडत्थपएहिं विहिअउज्जोआ । मुणिमणभवणपयास दिण-
सुद्धिपईविआ कुणउ ॥ १४३ ॥ सिरिवयरसेणगुरुपट्टनाह-सिरिहेमति-
८ लयसूरीण । पायपसाया एसा रयणसिहरसूरिणा विहिआ ॥ १४४ ॥

॥ इति श्रीरत्नशेखरसूरिविरचिता दिनशुद्धि ॥



मन्त्रीश्वरश्रीवस्तुपालपूजितश्रीउदयप्रभदेवसूरिविरचिता ।

आरम्भसिद्धिः ।

ॐ नमः सकलारम्भसिद्धिनिर्विघ्नवेधसे । अर्हणामर्हते साक्षादुपलम्भाय शंभवे ॥ १ ॥ दैवज्ञदीपकलिकां व्यवहारचर्या[1]मारम्भसिद्धिमुदयप्रभदेव एताम् । शास्ति क्रमेण तिथिवारभयोगराशिगोचर्यकार्यगमवास्तुविलग्नमिश्रैः ॥२॥ नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चेति त्रिरन्विता । हीना मध्योत्तमा शुक्ला, कृष्णा तु व्यत्ययात् तिथिः[4] ॥ ३ ॥ रिक्ता–४–९–१४ षष्ठ्यष्टमीद्वादश्यमावास्याः शुभे[5] त्यजेत्[6] । स्वीकुर्यान्नवमीं क्वापि न प्रवेशप्रवासयोः ॥ ४ ॥ त्रीन् वारान् स्पृशती त्याज्या त्रिदिन[7]स्पर्शिनी तिथिः । वारे तिथित्रयस्पर्शिन्यवमं मध्यमा च या ॥ ५ ॥ दग्धामर्केण संक्रान्तौ राश्योरोजयुजोस्त्यजेत् ॥ भूतदृग्युक्तयोः शेषां शोधिते भगणे तिथिम् ॥६॥

दग्धाऽर्केण धनुर्मीने वृषकुंभेऽजकर्किणि । द्वन्द्वकन्ये मृगेन्द्रालौ तुलैणे[8] द्व्यादियुक्तिथिः ॥ ७ ॥ त्रिशश्चतुर्णामपि मेषसिंहधन्वादिकानां क्रमतश्चतस्रः । पूर्णाश्चतुष्कत्रितयश्च तिस्रस्त्याज्या तिथिः क्रूरयुतस्य राशेः ॥ ८ ॥

अर्कदग्धा	तिथिः	चन्द्रदग्धा[9]	तिथिः
धनुर्मीने	२	कुंभधनुषि	२
वृषकुंभे	४	मेषमिथुने	४
मेषकर्के	६	तुलासिंहे	६
मिथुनकन्ये	८	मकरमीने	८
सिंहवृश्चिके	१०	वृषकर्के	१०
तुलामकरे	१२	वृश्चिककन्ये	१२

1 ग्रन्थस्यापरनाम । 2 ग्रहाणां पूर्वपूर्वराशित उत्तरोत्तरराशिसंचरणम् । 3 लग्नाख्यस्तत्कालोदयाद्राशिः । 4 'तिथिपाश्चतुर्मुखविधातृविष्णवो, यमशीतदीधितिविशाखवज्रिणः । वसुनागधर्मशिवतिग्मरश्मयो, मदनः कलिस्तदनु विश्व इत्यपि' ॥ १ ॥ 'तिथौ हि दर्शसंज्ञके पितॄनुशन्त्यधीश्वरान् । त्रयोदशीतृतीययोः स्मृतस्तु चित्तपोऽपरैः' ॥ २ ॥ 'वह्निर्विरञ्चो गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृन्महेशः । दुर्गाऽन्तको विश्वहरिस्मराश्च शर्वः शशी चेति पुराणदृष्टाः' ॥ ३ ॥ 5 उग्रकार्यं त्वासु विशिष्य सिध्यति । 6 पक्षच्छिद्रसंज्ञत्वात् । 7 फल्गुरिति हर्षप्रकाशे । 8 एणो मकरः । 9 'कुंभधणे अजमिहुणे तुलसीहे मयरमीण विसकक्के । विच्छियकन्नासु कमा बीयाई समतिही उ ससिदड्ढा' ॥

मेष	१—५	सिंह	६—१०	धन	११—१५
वृष	२—५	कन्या	७—१०	मकर	१२—१५
मिथुन	३—५	तुला	८—१०	कुंभ	१३—१५
कर्क	४—५	वृश्चिक	९—१०	मीन	१४—१५

करणान्यथ शकुनिचतुष्पदनागानि क्रमाच्च किंस्तुघ्नम् । असितचतुर्दश्यर्धात्तिथ्यर्धेषु ध्रुवाणि चत्वारि ॥ ९ ॥ अथ बवबालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टय सप्त । मासेऽष्टाश्चराणि स्युरुज्ज्वलप्रतिपदन्त्यार्धात् ॥१०॥ द्वगामूनि विविष्टीनि दिष्टान्यखिलकर्मसु । रात्र्यहर्व्यत्ययाद् भद्राप्यदुष्टेवेति तद्विदः ॥ ११ ॥ रात्रौ चतुर्थ्येकादश्योरष्टमीराकयोर्दिवा । भद्रा शुक्ले तिथौ कृष्णे त्वेकैकोने यथाक्रमात् ॥ १२ ॥ वाणद्विदिग्जलधिषट्त्रिकनाडिकासु, वक्त्रे गलो हृदयनाभिकटाश्च पुच्छम् । विष्टेर्विदध्युरिह कार्यवेपुः स्वबुद्धिप्रेमर्द्धिपा क्षयमिमेऽवयवा क्रमेण ॥ १३ ॥



1 'इन्द्रो निधिमित्रार्यमभूपथीशमनाश्चलेषु करणेषु । कलिवृषफणिमरुत पुनरीशा क्रमशः स्थिरेषु स्युः' । शमनो यम । शकुनिचतुष्पदनागे किंस्तुघ्ने कौलवे वणिज्ये च । ऊर्द्धं सक्रमणं गरतैतिलविष्टिषु पुनः शुभम् । बवबालवे निविष्टम्, सुभिक्षं चोर्द्धसक्रमे उपविष्टो रोगकरः सुप्तो दुर्भिक्षकारकः *देवाधिदेवस्य प्रतिष्ठादौ सर्वेऽपि तिथिनक्षत्रकरणक्षणा शुद्धत्वे सत्युपयोगिन * । 2 'सुरमे वत्सया भद्रा सोमे सौम्ये सिते गुरौ । कल्याणी नाम सा प्रोक्ता सर्वकार्याणि साधयेत्' । स्वर्गेऽजोक्षैणकर्केष्वध स्त्रीयुग्मधनुस्तुले । कुम्भमीनालिसिंहेषु विष्टिर्मर्त्येषु खेलति । 3 'दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिकापञ्चकपर हरियांसप्तम्या त्रिदशघटिकान्ते त्रिघटिक । तृतीयायां राकासु च गतविंशैकघटिके, ध्रुव विष्टे पुच्छ शिवनियिचतुर्थ्योश्च निगलत्' ।

भद्रेन्द्राऽष्टाऽश्वतिथ्येऽब्धि-
दशेशाग्निमिते तिथौ । दिग्-
यामाऽष्टकयोर्नेष्टा संमुखी
पृष्ठतः शुभा ॥ १४ ॥

इति तिथिद्वारम्.

भद्रावासयन्त्रम्

प्रहर	दिशा	तिथि
१	पूर्व	१४
२	आग्नेय	८
३	दक्षिण	७
४	नैर्ऋत्य	१५
५	पश्चिम	४
६	वायव्य	१०
७	उत्तर	११
८	ईशान	३

२

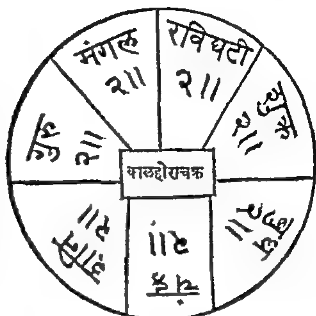
वारादिरुदयादूर्ध्वं पलैर्मेषादिगे रवौ । ६
तुलादिगे त्वधस्त्रिंशत्तद्द्युमानान्तरार्धजैः ॥ १५ ॥

द्वादशसंक्रान्तिष्वाद्यदिनानां मानमिदम्.			मासावधि प्रतिदिनम्.		मासेन वृद्धिहानिपलसर्वाग्रमिदम्.	
	घटी	पल	प०-अ०			
मकर	२६	१२	१—१२	दिनवृद्धिः	३६	पलवृद्धिः
कुंभ	२६	४८	२—५२	दिनवृद्धिः	८६	पलवृद्धिः
मीन	२८	१४	३—३२	दिनवृद्धिः	१०६	पलवृद्धिः
मेष	३०	०	३—३२	दिनवृद्धिः	१०६	पलवृद्धिः
वृष	३१	४६	२—५२	दिनवृद्धिः	८६	पलवृद्धिः
मिथुन	३३	१२	१—१२	दिनवृद्धिः	३६	पलवृद्धिः
कर्क	३३	४८	१—१२	दिनहानिः	३६	पलहानिः
सिंह	३३	१२	२—५२	दिनहानिः	८६	पलहानिः
कन्या	३१	४६	३—३२	दिनहानिः	१०६	पलहानिः
तुला	३०	०	३—३२	दिनहानिः	१०६	पलहानिः
वृश्चिक	२८	१४	२—५२	दिनहानिः	८६	पलहानिः
धन	२६	४८	१—१२	दिनहानिः	३६	पलहानिः

रविचन्द्रमङ्गलबुधा गुरुशुक्रशनैश्चराश्च दिनवाराः । रविकुजशनयः क्रूराः सौम्याश्चान्ये पदोनफलाः ॥ १६ ॥ ९

1 वड्ढइ छसु मयराइसु पलाण छत्तीस छलसि छहियसयं । कमउक्कमओ, हायइ तहेव कक्काइरासीसु ॥ १ ॥ राम३०रस६०नंद९०बाण५०वेदा४०अष्टौ८०सप्त७०दशहताः कार्याः । मन्दादीनां दिनतः क्रमेण भोगस्य नाड्यः स्युः ॥ १ ॥ अत एव सुप्तः शनिर्भव्यः त्रिंशद्घटीरूपस्य तस्य भोगस्य दिवैव समाप्तत्वेन शने रात्रौ रविभोगस्यैव समागमनादित्यन्ये । 2 राज्याभिषेकसेवामंत्रशस्त्रौषधविद्यासंग्रामयानसुवर्णताम्रौर्णिकालंकरणशिल्पपुण्यकर्मोत्सवादि रवौ सिध्यति । रजतगेयभोज्यकृपिवाणिज्यादि सोमे । सर्वं क्रूरकर्मरक्तस्राव-

होरा[1]ः पुनरर्कसितज्ञचन्द्रशनिजीवभूमिपुत्राणाम् । सार्धघटीद्वयमानाः स्ववारतस्तासु पूर्णफलाः ॥१७॥ त्याज्यो[2]ऽर्धयामो वेदा[1]द्रि[2]द्विपञ्चाष्टत्रि[3]षण्मितैः । सूर्यादौ कालवेलाऽर्धयामाङ्कात्सैकपञ्चमी ॥ १८ ॥ कंटकोऽपि दिनाष्टांशे स्ववारान्मङ्गलावधौ । बृहस्पत्यवधौ चोपकुलिकस्त्यज्यते परैः ॥ १९ ॥ कुलिको द्विघ्नशन्यन्तमिते त्याज्यः स्ववारतः ।



वारा	अर्धयामा	मध्यपलानि	आसु दिक्षु
रवि	४	*१६	पूर्व
चन्द्र	७	८	वायव्य
मंगल	२	३२	दक्षिण
बुध	५	२	ईशान
गुरु	८	१	पश्चिम
शुक्र	३	४	आग्नेय
शनि	६	६४	उत्तर

हेमप्रवालकरधातुसेनानिवेशादि कुजे । अक्षरशिल्पकर्णवेधशास्त्रव्यायामतर्कवादकलापठनादि बुधे । सर्वं शुभमाङ्गल्यकर्मदीक्षाविद्यायात्रौपधादि च गुरौ । सर्वं बुधगुरूक्तं दीक्षावर्जं शुक्रे । दीक्षागृहप्रवेशनिवेशादि स्थिरं क्रूरं च कर्म शनौ ॥ 'उपचयकरस्य कुर्याद्ग्रहस्य वारे स्ववारनिहितं यत् । अपचयकरग्रहदिने कृतमपि सिद्धिं न याति पुनः,' इति लल्लः ।

1 राश्यर्धस्य होरेति वक्ष्यमाणत्वादेता कालहोराभिधा । 2 रूढसंज्ञा सामान्येन घटीचतुष्करूप । *सोलडदसणदुइगचउचउसट्ठि अद्धपहरमज्झपला । जत्ताइसु अह अहमा पुव्वाइ छक्क छक्क दिसि ॥ १ ॥ यात्रादावसत त्याज्या । 3 सूर्यादौ कालवेलाऽष्टत्रिषट्क्षमाऽब्ध्यऽश्वदिग्मिता । इति पाठान्तरम् । कालवेला दिनमानप्रमाणेनार्धयामरूपा । 4 चतुर्घटिकादूनोऽधिकोऽपि दिनमानप्रमाणेन ग्राह्य । जघन्ये घटी ३ पल १६ अक्षर ३० । उत्कृष्टे तु घटी ४ पल १२ अक्षर ३० । 5 'छिन्नं भिन्नं नष्टं ग्रहजुष्टं पन्नगादिभिर्दष्टम् । नाशमुपयाति नियतं जातं कर्मान्यदपि तत्र' ॥ इति व्यवहारप्रकाशे । तथेदमपि–'सोमे माह्म कुजे पैत्र सुराचार्ये च राक्षस । शुक्रे ब्राह्म शनौ रौद्रो मुहूर्तो कुलिकोपमा '। ब्राह्म इति ब्रह्मदैवत । एवं पैत्र्यादयोऽपि । ब्राह्मत्वादिविभागस्तु मुहूर्तानां क्षौराधिकारे वक्ष्यते ।

मुहूर्त्तेऽह्नि निशि व्येके भागः पञ्चदशस्तु सः ॥ २० ॥ भानोर्भूनयनर्तवः सितरुचेः शीतांशुपञ्चाष्टमा, भौमस्याब्धिनगाष्टमाः शशितनूजस्य त्रितर्का-
ष्टमाः । जीवस्य द्विशरार्द्रयो भृगुभुवश्चन्द्राब्धिषष्ठाष्टमाः, शौरेस्त्रीपुनगा- ३
ष्टमार्श्च दिवसेष्वेतेऽष्टमांशाः शुभाः ॥ २१ ॥ सिद्धच्छाया क्रमादर्कादिषु सिद्धिप्रदा पदैः । रुद्रसार्धाष्ट८॥ नन्दाष्टसप्तभिश्चन्द्रवद्द्वयोः ॥ २२ ॥

वाराः	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	वारेषु कुवेलाः
दिवा	४	७	२	५	८	३	६	अर्धयाम
दिवा	८	३	६	१	४	७	२	कालवेला
दिवा	३	२	१	७	६	५	४	कंटक
दिवा	५	४	३	२	१	७	६	उपकुलिक
दिवा	७	६	५	४	३	२	१	कुलिक
दिवा	१४	१२	१०	८	६	४	२	कुलिकमुहूर्त
रात्रौ	१३	११	९	७	५	३	१	कुलिकमुहूर्त
दिवा	११	८॥	९	८	७	८॥	८॥	सिद्धच्छायापदानि

इति वारद्वारम् । चुचेचोलाऽश्विनी ज्ञेया लीलूलेलो भरण्यथ । ६
आईऊए कृत्तिका तु ओवावीवू च रोहिणी ॥ २३ ॥ वेवोकाकी मृगशिर आर्द्रा कुघङछाः पुनः । केकोहाही पुनर्वस्वोर्हूहेहोडा तु पुष्यभे ॥ २४ ॥ डीडूडेडोभिरश्लेषा ममीमूमे मघा मता । मोटाटीटू फल्गुनी प्राक् टेटो-
पापीभिरुत्तरा ॥२५॥ हस्तः पुषणठैर्वर्णैश्चित्रा पेपोररिः पुनः । रुरेरोताः १०

1 तादात्विकदिनरात्रिमानयोः पंचदशोंऽशः । जघन्ये घटी १ पल ४४ अक्षर ४८ । उत्कृष्टे घटी २ पल १५ अक्षर १२ । 2 नारचन्द्रमतेनैते दिनाष्टांशाः कुलिकसंज्ञाः । 3 तद्वेला च त्रिंशद्गुरुवर्णमात्रेति वृद्धाः । पञ्चदशवर्णोनायां कार्यमारभ्य शेषवर्णेषु समापनेन सिद्धछाया साधिता स्यात् । बहुकालसमाप्ये तु कार्ये त्रिंशद्वर्षमध्ये तत्कार्यं प्रारंभणीयमिति भावः । इयं च छाया पदैरिति भवनातपदरूपा । सप्ताङ्गुलशङ्कोस्त्वङ्गुलरूपा ज्ञेया । द्वादशाङ्गुलशङ्कोस्त्वेवम् । 'वीसं सोलस पनरस चउदस तेरस बार बारेव । रविमाइसु बारंगुलसंकुच्छायंगुला सिद्धा ॥ १ ॥ 4 घादयो वर्णा दशस्वरयुता ज्ञेया । स्वरचक्राभिप्रायेण ऋ ॠ ऌ ॡ इत्येते केवला रिरीलिलीवत्, व्यञ्जनगतास्त्वकारांततद्व्यंजनवत् । ब्रह्मदत्तश्रीधरध्रुवाद्यभिधासु ब. श्री. ध्रु रूपमेवाद्याक्षरं गण्यम् । विसर्गबिन्द्वादिकं तु नाक्षरस्य विकारकृत् । बवयोरैक्यम् । ञो ङवत् । पूर्वाचार्यानुरोधात् एकाशीतिपदे सर्वतोभद्रचक्रे एतद्वर्णानां ग्रहविद्धत्वे सति तत्तत्पादजानां पीडेति साफल्यसद्भावाच्च ङञणा अभिधादावदृष्टा अप्युक्ताः । यथा सर्वतोभद्रचक्रविवरणे—विध्यन्ते घङछा रौद्रे षणढा हस्तगे व्यधेः । फढधाः प्रागपाद्रायामाहिर्बुध्ने ञु शाङ्गथाः ॥

स्मृताः स्वातौ तीतूतेतो विशाखिका ॥ २६ ॥ अनुराधा ननीनूने स्याज्ज्येष्ठा
नोयचीयुभिः । स्याद्येयोभाभिभिर्मूलं पूर्वाषाढा भुधाफढैः ॥ २७ ॥
३ भेभोजाज्युत्तराषाढा जूजेजोखाऽभिजिन्मता । श्रवणे स्युः खिखूखेखो
धनिष्ठाया गगीगुगे ॥ २८ ॥ गोसासीसूः शतभिषक् प्राक् सेसोददि
भद्रपात् । दुशझथोत्तराभद्रा देदोचची तु रेवती ॥ २९ ॥ उत्तराषाढ-
६ मन्त्याह्नि चतस्रश्च श्रुतेर्घटीः । वदन्त्यऽभिजितो भोग वेधलत्ताद्यवेक्षणे ३०
भेशास्त्वश्वियमाग्नेयः कमलभूश्चेन्द्रोऽथ रुद्रोऽदितिर्जीवोऽहिः पितरो-
भगोऽर्यमरवी त्वष्टा समीरस्तथा । शक्राग्नी अथ मित्र इन्द्रनिर्ऋती वारीणि
१० विश्वे विधिर्वैकुठो वसवोऽम्बुपोऽजचरणोऽहिर्बुध्नपूषाभिधौ ॥३१॥ त्रित्र्य-
ङ्गभूतजगदिन्दुकृतत्रितर्क-ष्वक्षिद्विपचकुकुवेदयुगाग्निरुद्रैः । वेदाब्धिरामं-
११ गुणवेदशतद्विकद्वि-दन्तैश्च तत्समतिथिर्न शुभा भतारैः ॥ ३२ ॥

1 उत्पातादिचतुष्टयोपयोगे त्वर्गलादिष्वभिजिद्गृह्यते, परं तदोत्तराषाढश्रवणयो पञ्चदश चतस्रश्च घटीर्नहिष्कृत्वैव पादचतुष्कं कल्पनीयम् । 2 अन्यत्र नोपयोग इति सामर्थ्याल्लभ्यते । 3 अश्विनौ दस्राख्यदेवौ । कमलभूर्ब्रह्मा । अदितिर्देवमाता । जीवो गुरु । अहि सर्प । भगो योनि । अर्यमा सूर्यभेद । त्वष्टा विश्वकर्मा । समीरो वायु । शक्राग्नी इति विशाखाया आद्येऽर्धे इन्द्रोऽपरार्धेऽग्निर्देवता, अत एवास्या द्विदैवतसंज्ञा मिश्रसंज्ञा च । अत एवोक्तं दैवज्ञवल्लभे–"पूर्वार्धे मृदुकर्म चास्य सकलं तीक्ष्णं द्वितीये दले" इति । मित्र सूर्यभेद । निर्ऋति रक्षसां माता, तत्सबलाद्राक्षसा अप्यत्र लभ्या, तेन मूलो रक्षोनक्षत्रमित्युच्यते । वारीणि जलं । विश्वे इति विश्वाख्यास्त्रयोदश देवा, सर्वादित्वाज्जस इ । नन्वत्र संज्ञावाचिनो विश्वशब्दस्य कथं सर्वादित्वं असंज्ञायां सर्वादिरितिवचनात् ? उच्यते-छान्दसोऽयं प्रयोगस्तेन संज्ञायामपि सर्वादित्वं । विधिर्ब्रह्मा । वैकुठो विष्णु । वसवोऽष्टौ, यदुक्तं—"धरो ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैव यलोऽनिल । प्रत्यूषश्च प्रदोषश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता" ॥ १ ॥ अम्बुपो वरुण वास्तुशास्त्रप्रसिद्धो हृदयकोष्ठस्थो देव । रुद्राणामन्यतमोऽजपाद । अहिर्बुध्नो रुद्रभेद । यदाहु —"अजपादोऽथाहिर्बुध्न पिनाकिहररैवता । शम्भु शर्वो मृगव्याध कपाली त्र्यम्बको भव" ॥ १ ॥ इत्येकादश रुद्रनामानि । पूषरविभेद । यदाहु –"धातृ १ अर्यमन् २ मित्र ३ वरुण ४ अंशु५ भग ६ इन्द्र७ विवास्वन्८ पूषन्९ पर्जन्य१० त्वष्टृ११ विष्णु१२ संज्ञा द्वादशसूर्याः" इति । शेषा यथोक्तसंज्ञा देवभेदा । प्रयोजनं चैषां तद्देवतानाम्ना नक्षत्रव्यवहारादि ॥ 4 नवरं शतभिषग्युता दशमी, रेवतीयुता द्वितीया त्याज्या । 'दग्धा तद्दिननक्षत्रतारातुल्यातिथिर्भवेत्' इति लल्ल । 'तारासमैरहोभिर्मासैरब्दैश्च धिष्ण्यफलपाकं' इत्यपि लल्ल ।

अ	भ	कृ	रो	मृ	आर्द्रा	पुन	पुष्य	अश्ले	नक्षत्राणि
अश्वी	यम	अग्नि	कमलभू	चन्द्र	रुद्र	अदिति	जीव	अहिः	भेशाः
३	३	६	५	३	१	४	३	६	तारासंख्या

म	पूफा	उफा	ह	चि	स्वा	वि	अनु	ज्ये	मू	नक्षत्राणि
पितर	भग	अर्यम	रवि	त्वष्टा	समीर	शुक्राग्नी	मित्र	इन्द्र	नर्ऋति	भेशाः
५	२	२	५	१	१	४	४	३	११	तारासंख्या

पूषा	उषा	अभि	श्र	ध	श	पूभा	उभा	रे	नक्षत्राणि.
वारीणि	विश्वे	विधि	वैकुंठ	वसवः	अम्बुप	अजचरण	अहिबुध्न	पूषा	भेशाः
४	४	३	३	४	१००	२	२	३२	तारासंख्या

चरमाहुश्चलं स्वाति[1]रादित्यं श्र[2]वणत्रयम् । लघु क्षिप्रं च हस्तोऽश्विन्यभिजित् पुष्य एव च ॥३३॥ मृदु मैत्रं मृगश्चित्राऽनुराधा चैव रेवती । ध्रुवं स्थिरं च वै[3]रञ्चमुत्तरात्रितयान्वितम् ॥३४॥ दारुणं तीक्ष्णमश्लेषा मूलमार्द्रा[4]महेन्द्रभम् । क्रूरमुग्रं च भरणी तिस्रः पूर्वा मघान्विताः ॥३५॥ मिश्रं साधारणं च द्वे विशाखाकृत्तिकाभिधे । ईदृग्नाम्नोचिते धिष्ण्ये निर्मितं कर्म शर्मणे ॥३६॥ कुर्यात्[5]प्रयाणं लघुभिश्चरैश्च, मृदुध्रुवैः शा[6]न्तिकर्मा[7]जिमुग्रैः । व्या[8]धिप्रतीकार[9]मुशन्ति तीक्ष्णैर्मिश्रैश्च मिश्रं[10] विधिमामनन्ति ॥ ३७ ॥ भेषु क्षणान् पञ्चदशैन्द्र[11]रौद्र[12]वाय[13]व्यसा[14]पान्त[15]कवा[16]रुणेषु । त्रिघ्नान् विशाखाऽऽदिति[17]भध्रुवेषु शेषेषु तु त्रिंशतमा[18]मनन्ति ॥ ३८ ॥ ॥ इति भद्वारम् ॥ ३ ॥

भानौ भूत्यै क[19]रादित्यपौ[20]ष्णब्रा[21]ह्ममृगोत्तराः । पुष्यमूलाश्विवास[22]व्यश्चैकाष्ट-

1 पुनर्वसु । 2 श्रवणधनिष्ठाशतभिषजः । 3 रोहिणी । 4 ज्येष्ठा । 5 पण्यभूषणकलारतौषधज्ञानविज्ञानवाहनोद्यानिकाद्युपालक्ष्यम् । 6 बीजगृहनगराभिषेकारामभूषणवस्त्रगीतमङ्गलमित्रकार्यादि स्थिरकर्म च । 7 वञ्चनाविषघातबंधनोच्छेदनशस्त्राग्निकर्माद्यपि । 8 भूतयक्षमंत्रनिधिसाधनभेदकर्माद्यपि । 9 वाञ्छन्ति । 10 साधारणम्, स्वर्णरजतताम्रलोहाद्यग्निकर्म सर्वं तथा वृषोत्सर्गपरिग्रहादि च ॥ 卐 स्थिरश्चरस्तथोग्रश्च मिश्रो लघुरथो मृदुः । तीक्ष्णश्च कथिता वाराः प्राच्यैः सूर्यादयः क्रमात् ॥ एते वाराश्चरादिसदृशभसहिताः प्रयाणादौ विशिष्य प्रयोजकाः 卐 । 11 ज्येष्ठा । 12 आर्द्रा । 13 स्वातिः । 14 अश्लेषा । 15 भरणी । 16 शतभिषक् । 17 पुनर्वसु । 18 एषां किल चिरन्तनज्योतिःशास्त्रेष्वेवं भुक्तिरासीन्नतु यथाऽधुना सर्वाण्यप्येकदिनभोगानीति श्रीमदावश्यकवृहद्वृत्तिटिप्पनके, एषां नव्योदितचंद्रदर्शनादावुपयोगः तथाहि–'बृहत् ४५ सुधान्यं कुरुते समर्घं जघन्य १५ धिष्ण्येऽभ्युदिते महार्घम् । समेषु ३० धिष्ण्येषु समं हिमांशुः शुक्लद्वितीयाभ्युदयी विलोक्यः । इत्यादिविशेषस्त्वस्य ग्रंथस्य हैमहंसीयवार्त्तिकादवलोक्यः । 19 हस्तः । 20 रेवती । 21 रोहिणी । 22 धनिष्ठा ।

नवमी तिथिः ॥ ३९ ॥ न चार्के वारुणं याम्यं विशाखात्रितयं मघा । तिथिः षट्[12]सप्त[13]रुद्रा[14]र्कमनुसंख्या तथेष्यते ॥ ४० ॥ सोमे सिद्ध्यै मृगब्राह्ममैत्राण्यार्यमणं करः । श्रुतिः शतभिषक् पुष्यस्तिथिस्तु द्विनवाभिधा ॥ ४१ ॥ न चन्द्रे वासवाषा[6]ढात्रयार्द्राश्विद्विदैवतम् । सिद्ध्यै चित्रा च सप्तम्येकादश्यादित्रय तथा ॥ ४२ ॥ भौमेऽश्विपौष्णाहिर्बुध्न्यमूलराधा[8]र्यमाग्निभम् । मृगः पुष्यस्तथाऽश्लेषा जया षष्ठी च सिद्धये ॥ ४३ ॥ न भौमे चोत्तराषाढामघार्द्रावासवत्रयम् । प्रतिपद्दशमीरुद्रप्रमिता च मता तिथिः ॥ ४४ ॥ बुधे मैत्र[10] श्रुतिज्येष्ठा पुष्यहस्ताग्निभत्रयम् । पूर्वाषाढार्यमर्क्षे च तिथिर्भद्रा च भूतये ॥ ४५ ॥ न बुधे वासवाश्लेषा[9]रेवतीत्रयवारुणम् । चित्रा मूल तिथिश्चेष्टा जयै ३–८–१३ केन्द्रैर्नवाङ्किता ॥ ४६ ॥ गुरौ पुष्याश्विनादित्यपूर्वा[3]श्लेषाश्च वासवम् । पौष्ण स्वातित्रय सिद्ध्यै पूर्णा ५–१०–१५ श्चैकादशी तथा ॥ ४७ ॥ न गुरौ वारुणाग्नेयचतुष्काऽऽर्यमणद्वयम् । ज्येष्ठा मूलै तथा भद्रा २–७–१२ तुर्या षष्ठ्यष्टमी तिथिः ॥ ४८ ॥ शुक्रे पौष्णाश्विनाषाढा मैत्र मार्गं श्रुतिद्वयम् । यौना[13]दित्ये करो नन्दा १–६–११ त्रयोदश्यौ च सिद्धये ॥ ४९ ॥ न शुक्रे भूतये ब्राह्म पुष्य सार्पं मघाऽभिजित् । ज्येष्ठा च द्वित्रिसप्तम्यो रिक्ताख्या[15] ४–९–१४ स्तिथयस्तथा ॥ ५० ॥ शनौ ब्राह्मश्रुतिद्वन्द्वाश्वि[4]मरुद्गुरुमित्रभम । मघा शतभिषक् सिद्ध्यै रिक्ता ४–९–१४ष्टम्यौ तिथी तथा ॥ ५१ ॥ न शनौ रेवती सिद्ध्यै वैश्वमार्यमणत्रयम् । पूर्वा मृगश्च पूर्णाख्या ५–१०–१५ तिथिः षष्ठी च सप्तमी ॥५२॥ योगः कुमारनामा शुभः

मृत्युघातसिद्धि-योगनाम

रवि	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
हस्त	मृगशिर	अश्विनी	अनुराधा	पुष्य	रेवती	रोहिणी
५	६	७	८	९	१०	११

1 भरणी । 2 अनुराधा । 3 उत्तरफल्गुनी । 4 श्रवण । 5 पूर्वोत्तरापाढाभिजित । 6 विशाखा । 7 उत्तरभद्रपदा । 8 विशाखा । 9 कृत्तिका । 10 अनुराधा, त्रयशब्देन मृग पुष्यगुरु । 11 पूर्वोत्तरा । 12 पूर्वफल्गुनी । 13 स्वाति । 14 पुष्य । 15 अनुराधा ।

वार 卐	अमृत- सिद्धियोग	उत्पातयोग *प्रवासयोग	मृत्युयोग *मरणयोग	काणयोग *व्याधियोग	सिद्धियोग	यमघंट- योग	वज्रमुशलयोग सूर्यादेर्जन्मभैः	शत्रुयोग	चरयोग अस्थिरयोग	कर्कयोग ककचयोग	संवर्तकयोग
रवि	हस्त	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल	मघा	‡ भरणी	भरणी	उत्तराषाढा	तिथि १२	तिथि ७
चन्द्र	मृगशिर	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	अभिजित्	श्रवण	विशाखा	चित्रा	पुष्य	आर्द्रा	११	०
मंगल	अश्विनी	धनिष्ठा	शतभिषक्	पूर्वभाद्रपद	उत्तरभाद्रपद	आर्द्रा	उत्तराषाढा	उत्तराषाढा	विशाखा	१०	०
बुध	अनुराधा	रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	मूल	धनिष्ठा	आर्द्रा	रोहिणी	९	१-३
गुरु	पुष्य	रोहिणी	मृगशिर	आर्द्रा	पुनर्वसु	कृत्तिका	उत्तराफाल्गुनी	विशाखा	शतभिषा	८	६
शुक्र	रेवती	पुष्य	अश्लेषा	मघा	पूर्वाफाल्गुनी	रोहिणी	ज्येष्ठा	रेवती	मघा	७	२
शनि	रोहिणी	उत्तराफाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाति	† हस्त	रेवती	शतभिषा	मूल	६	७

* एताः संज्ञाः पूर्णभद्रमतेन । † आषाढाद्वयमत्रेति पाकश्रीकृत। ‡ अस्य स्थानेऽश्विनीति लोकश्रियाम् ।

वाराः	वारतिथ्योः सुयोगाः	वारतिथ्योः सामान्ययोगाः	वारभयोः सुयोगाः	वारभयोः सामान्ययोगाः
रवि	१—८—९	६—११—१४	अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, धनिष्ठा, रेवती.	शतभिषक्
चन्द्र	२—९	१२—१३	रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अनुराधा, शतभिषा.	अश्विनी, आर्द्रा, धनिष्ठा
मंगल	३-६-८-१३	१—११	कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, अश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, मूल, रेवती.	मघा
बुध	२—७—१२	८-१३-१४	रोहिणी, मृगशिर, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी,हस्त ज्येष्ठा,पूर्वाषाढा, श्रवण.	अश्लेषा
गुरु	५-१०-११-१५	२-४-७-१२	अश्विनी, अश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वापाढा, पूर्वभाद्रपद, स्वाति, धनिष्ठा, रेवती.	शतभिषक्, हस्त, ज्येष्ठा
शुक्र	१-६-११-१३	४—९—१४	अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, हस्त, अनुराधा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा.	अभिजित्
शनि	४-८-९-१४	५-१०-१५	अश्विनी, पुष्य, मघा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा.	मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, शतभिषक्, उत्तराषाढा

कुजज्ञेन्दुशुक्रवारेषु । अश्व्याद्यैर्द्व्यन्तरितैर्नन्दादशपञ्चमीतिथिषु ॥ ५३ ॥
राजयोगो भरण्याद्यैर्द्व्यन्तरैर्भैः शुभावहः । भद्रातृतीयाराकासु कुजज्ञभृ-
२ गुभानुषु ॥ ५४ ॥ स्थिरयोगः शुभो रोगोच्छेदादौ शनिजीवयोः । त्रयो
दर्श्यष्टरिक्तासु४-९-१४ द्व्यन्तरैः कृत्तिकादिभैः ॥ ५५ ॥ यमलाख्यो
द्विपादर्क्षे त्रिपादर्क्षे त्रिपुष्करः । जीवारशनिवारेषु योगो भद्रातिथौ
६ स्मृतः ॥ ५६ ॥ पञ्चके वासंवान्याधांतृणकाष्ठगृहोद्यमान् । याम्यदिग्ग-
मनं शय्या मृतकार्यं च वर्जयेत् ॥ ५७ ॥ पञ्चकं श्रवणादीनि पञ्च
ऋक्षाणि निर्दिशेत् । केचित्पुनर्धनिष्ठादिपञ्चकं पञ्चकं विदुः ॥ ५८ ॥
हानिवृद्ध्यादिकं सर्वं योगे स्याद्यमले द्विशः । त्रिशस्त्रिपुष्कराख्ये तु
१० पञ्चशः पञ्चकेऽपि च ॥ ५९ ॥

卐 एवमेते विरुद्धनामानः सामान्ययोगसुयोगसिद्ध्यमृतसिद्ध्याख्याश्चेति पञ्चविधयोगा उक्ताः आसन्तिमसिद्धिर्यदृच्छिकसिद्धिर्विलम्बितसिद्धिश्चिन्तितसिद्धिश्चिन्तिताधिकसिद्धि-श्चेति क्रमादेषां फलानीति त्रिविक्रमः 卐

1 अश्विनीरोहिणीपुनर्वसुमघाहस्तविशाखामूलश्रवणपूर्वभद्रपदान्यतरमेन । 2 भरणी-मृगशिरःपुष्यपूर्वफल्गुनीचित्राऽनुराधापूर्वाषाढाधनिष्ठोत्तरभद्रपदान्यतरमेन । कुमारराज-योगौ विरुद्धयोगोत्पत्तिं वर्ज्यं ग्राह्यौ । 3 कृत्तिकार्द्राश्लेषोत्तरफल्गुनीस्वातिज्येष्ठोत्तराषाढाशत-तारारेवत्यन्यतरमेन । 'अणसण खित्त-वाहि-रिण-रिउ रण दिव्व जलासए वधो । कायव्वो थिरजोगे जेसिं करणं पुणो नत्थि । इति पाकश्रियाम् । उग्रलक्षणलाम्भिन्नच्छेदस्लेहच्छेदादि च । अथ स्थिरयोगाऽपरनामाऽतिदुर्लभोऽनारंभिलात्, स्वभावादनिवर्त्तकश्चोक्तकार्येष्वेव ग्राह्यो नान्येषु । 4 मृगशीर्षचित्राधनिष्ठासु । 5 कृत्तिकापुनर्वसूत्तरफल्गुनीविशाखोत्तरा-षाढापूर्वभद्रपदासु । 6 धनिष्ठा । 7 नारभणीयं न चाच्छादनीयम् । 8 न कार्या न च व्यापार्या । 'धनिष्ठा धननाशाय प्राणघ्नी शततारका । पूर्वाया दण्डयेद्राजा उत्तरा मरणं ध्रुवम् ॥ १ ॥ अग्निदाहश्च रेवत्यामित्येतत्पञ्चके फलम्' ॥ इति व्यवहारसारे । 'यदि कश्चिदकस्मात्पञ्चके मृतस्तदा छेदनसहितं करचरणबन्धनं तस्य कुर्यादिति लल्लः । तद्दहन-विधिस्त्वयं गरुडपुराणे–दर्भमयाश्चत्वारः पुत्तलकाः कृत्वा शवपार्श्वे स्थाप्याः, ते सहैव च दहनीयाः, अन्यथा पुत्रगोत्रादीनां प्रत्यवायः स्यात् । 9 नारचन्द्रे तु श्रवणरेवत्यो सर्वदिग्गमनमनुमन्यमानेन दक्षिणदिग्यात्राऽप्यनुमेने तथाहि 'सर्वदिग्गमने हस्तः श्रवणं रेवतीद्वयम् । मृगः पुष्यश्च सिद्ध्यै स्युः कालेषु निखिलेष्वपि ॥ 10 एष्विष्टं कार्यं कार्यं न त्वनिष्टमित्याशयः ।

गंडान्तं च त्यजेत् त्रेधा लग्न४-८-१२ तिथ्युष५-१०-१५ डुषु९-१८-२७ त्रिषु । प्रत्येकं त्रित्रिभागान्तर[1]र्धै[2]केद्वि[3]घटीमितम् ॥ ६० ॥

लग्नगंडान्तं		तिथिगंडान्त		नक्षत्रगंडान्त		
भाग ३		भाग ३		भाग ३		
४ कर्क	५ सिंह	५	६	९ अश्लेषा	१० मघा	३
८ वृश्चिक	९ धन	१०	११	१८ ज्येष्ठा	१९ मूल	
१२ मीन	१ मेष	१५	१	२७ रेवती	१ अश्विनी	६
अर्ध घटी		एका घटी		द्वे घट्यौ		

*वज्रपातं त्यजेद् द्वित्रिपञ्चषट्सप्तमे तिथौ । मैत्रे[2] ऽथ त्र्युत्तरे[3] पैत्र्ये[5] ब्राह्मे[6] मूलकरे[7] क्रमात् ॥ ६१ ॥ योगो रवेर्भात् कृत[4]तर्क[6]नन्द[9]दिग्[10]विश्व[13]विंशो[20]डुषु

		वज्रपातयंत्र स्थापना			*वज्रपातस्य फलं षण्मासैः कार्यकर्त्तुर्मृत्युरिति हर्षप्रकाशे
२ अनुराधा	३ उत्तरात्रिकं	५ मघा	६ रोहिणी	७ मूल-हस्त	१३ चि. स्वा; ७ भ. ९ पुष्य. १० अश्ले. अपि नारचन्द्रटि०

		कालमुखी स्थापना			चउ उत्तर, पंच मघा, कत्तिय नवमीइ, तइय अणुराहा ।
४ उत्तरा ३	५ मघा	९ कृत्तिका	३ अनुराधा	८ रोहिणी	अट्ठमि रोहिणीसहिया, कालमुहीजोगि मासिछगि मच्चू ॥

	अवलयोगस्थापना			कत्तियपभिइ चउरो सणि बुहि ससि सूरवारजुत्तकमा पंचमि बिइ एगारसि बारसि अबला सुहे कज्जे
कृत्तिका शनि ५	रोहिणी बुध २	मृगशिर चन्द्र १	आर्द्रा रवि १२	

[2]सर्वसिद्ध्यै । आद्य[1]इन्द्रिया[5]श्व[7]द्विप[8]रुद्र[11]सारी[15]राजो[16]डुषु प्राणहरस्तु हेयः ॥ ६२ ॥ ९

1 जन्माधानयात्रोद्वाहव्रतगृहनिवेशप्रवेशक्षौरादिसर्वकार्येष्वशुभ इति भावः । 2 एयाण फलं कमसो विउलं सुक्खं४ जयं च सत्तूणं६ । लाभं च९ कज्जसिद्धी१० पुत्तुप्पत्तीय१३ रज्जं च२० ॥ शुद्धलग्नवद्रवियोगबलमिति यतिवल्लभे ॥ इक्कस्स भए पंचाणणस्स भज्जंति गयसयसहस्सा । तह रविजोगपणट्ठा गयणंमि गहा न दीसंति ॥१॥ रविजोगराजजोगे कुमारजोगे असुद्धदिअहेवि । जं सुहकज्जं कीरइ तं सव्वं बहुफलं होइ ॥ २ ॥ इति यतिवल्लभे

नोपग्रहास्तु भूत्यै भूपाद्रिर्फणीन्द्रतिथिधृतियुगले । रविभात्तथैकविंशादिषु पञ्चसु २१-२२-२३-२४-२५ चरति भेष्विन्दौ ॥ ६३ ॥ उपयोगास्त्व-श्विमृगाश्लेषाकरमैत्रवैश्ववारुणतः । रव्यादिषु तद्दिनभप्रमिताः क्रमतोऽ-

द्विहँयाङ्केन्द्रैभूपै १६ कन्यहयुग्वि शतिप्रमे । सूर्यं माच्चन्द्रमे स्यादा-टलस्त्याज्य सदा शुभे (इलो या त्राह्व रोपकृत् इति पाठां०) ॥ सूर्यं माङ्कणयेन्दोर्मं नक्षमिर्मागमाहर। शून्य द्वौ वा न शेषो चेदाटलो नास्ति निश्चितम् ॥ अयच प्राय शुगि रिदिष्ठि व्याप्रियते पतङ्गने च नवमो रवियोगो यानादौ नेष्ट इत्यागनम् ।

	४	३	२	१	२८	२७	२६	
५								२५
६								२४
७								२३
८			आडलोऽयं अत्राभिजिदपि गण्यते					२२
९								२१
१०								२०
११								१९
	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	

भिधानफलाः ॥ ६४ ॥ आनन्दः कालदण्डश्च प्राजापत्यः सुरोत्तमः । सौम्यो ध्वाङ्क्षो ध्वजश्चैव श्रीवत्सो वज्रमुद्गरौ ॥ ६५ ॥ छत्र मित्र मनोज्ञश्च कपो लुम्पक एव च । प्रवासो मरण व्याधिः सिद्धि शूलां-ऽमृतौ तथा ॥ ६६ ॥ मुसलो गजमातङ्गौ राक्षसोऽथ चरः स्थिरः । वर्धमानश्चेति नाम्ना स्युरष्टाविंशति. क्रमात् ॥ ६७ ॥

---

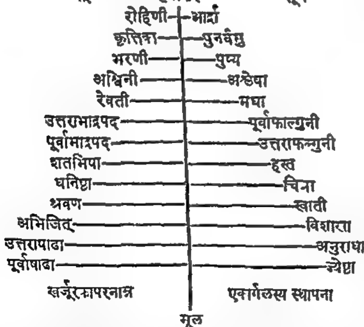
1 धृत्यनिधृती अष्टादशैकोनविंशयां च्छन्दोजाती । एषु द्वादशेष्वष्टाना सज्ञा उद्वाहादौ फल च एव नारचन्द्र उक्तम्—विद्युन्मुखशूलाऽशनिकेतूल्का वज्रकम्पनिर्घाता । द५ ज८ ड१४ द१८ ध१९ फ२२ व२३ भ२४ सस्ये रविपुरत उपग्रहा धिष्ण्ये ॥ १ ॥ फल्मङ्गज१ पतिमरणे२ दशमदिनान्तस्तथाशनिपात ३ । सानुजपति४ धननाशौ५ दौ शील्य६ स्थान७ कुलघातौ८ ॥ २ ॥ शेषास्तु चत्वार उपग्रहा सामान्येनानिष्टफलदा । एकाशीतिपदाख्ये वेधचक्रादावप्येतदनुसारेणोपग्रहफल ज्ञेयम् । 2 केचित् प्राजापत्यसुरोत्तममनोज्ञादिपद्ध-स्त्र्यगजानां क्रमेण धूम्रप्रजापतिमानसपद्मलम्बकोत्पातमृत्युकाणशुभगदसज्ञा प्राहु ।

उपयोगाः	रवि	सोम	मंगळ	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१ आनंद	अश्विनी	मृगशिर	अश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उषा	शतभिषा
२ कालदंड	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि	पूभा
३ प्राजापत्य	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूफा	स्वाति	मूल	श्रवण	उभा
४ सुरोत्तम	रोहिणी	पुष्य	उफा	विशाखा	पूषा	धनिष्ठा	रेवती
५ सौम्य	मृगशिर	अश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उषा	शतभिषा	अश्विनी
६ ध्वांक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि	पूभा	भरणी
७ ध्वज	पुनर्वसु	पूफा	स्वाति	मूल	श्रवण	उभा	कृत्तिका
८ श्रीवत्स	पुष्य	उफा	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी
९ वज्र	अश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उषा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिर
१० मुद्गर	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि	पूभा	भरणी	आर्द्रा
११ छत्र	पूफा	स्वाति	मूल	श्रवण	उभा	कृत्तिका	पुनर्वसु
१२ मित्र	उफा	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य
१३ मनोज्ञ	हस्त	अनुराधा	उषा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिर	अश्लेषा
१४ कंप	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि	पूभा	भरणी	आर्द्रा	मघा
१५ लुंपक	स्वाति	मूल	श्रवण	उभा	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूफा
१६ प्रवास	विशाखा	पूषा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उफा
१७ मरण	अनुराधा	उषा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिर	अश्लेषा	हस्त
१८ व्याधि	ज्येष्ठा	अभि	पूभा	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
१९ सिद्धि	मूल	श्रवण	उभा	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूफा	स्वाति
२० शूल	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उफा	विशाखा
२१ अमृत	उत्तराषाढा	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिर	अश्लेषा	हस्त	अनु
२२ मुसल	अभिजित्	पूभा	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा
२३ गज	श्रवण	उभा	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूफा	स्वाति	मूल
२४ मातंग	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उफा	विशाखा	पूषा
२५ राक्षस	शतभिषक्	अश्विनी	मृगशिर	अश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उषा
२६ चर	पूभा	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि
२७ स्थिर	उभा	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूफा	स्वाति	मूल	श्रवण
२८ वर्धमान	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उफा	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा

यत्प्रातिकूल्यं वाराणां तिथि[1]नक्षत्र[2]संभवम् । हूणवंगखसेष्वेव तत्त्यजेदिति १

1 तिथिसंभवं यथा संवर्त्तककर्कयोगादौ । 2 नक्षत्रसंभवं यथा उत्पातमृत्युकाणो-पयोगादौ ।

केचन ॥ ६८ ॥ सिद्धियोगः कुयोगश्च जायेता युगपद्यदि । कुयोगं तत्र निर्जित्य सिद्धियोगो विजृम्भते ॥ ६९ ॥ विष्कंभः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यैः शोभनैस्तथा । अतिगंडः सुकर्मा च धृतिः शूलं तथैव च ॥ ७० ॥ गंडो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा । वज्रं सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः ॥७१॥ सिद्धः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मो चैन्द्रोऽथ वैधृतिः । इति सान्वयनामानो योगाः स्युः सप्तविंशतिः ॥ ७२ ॥ व्यतिपातवैधृताख्यौ सकलौ परिघस्य पूर्वमर्धं च । प्रथमः पादोऽन्येष्वपि विरुद्धसंज्ञेषु हातव्यः ॥ ७३ ॥ त्यजेद्वा पञ्च विष्कम्भे षट् तु गण्डातिगण्डयोः । घटिकाः सप्त शूले तु नव व्याघातवज्रयोः ॥ ७४ ॥ एकार्गल कुयोगेषु चन्द्रेऽर्के च परस्परात् । गते साभिजिदोजर्क्षे त्याज्यः पादान्तरो न चेत् ॥ ७५ ॥ तिर्यक् त्रयोदशोर्ध्वैकरेखे खर्जूरके त्यजेत् । कुयोगे शीर्षभादर्कचन्द्रावेकार्गलर्क्षगौ ॥ ७६ ॥ खर्जूरकस्य शीर्षर्क्षमानमेकार्गले



सपूर्णैकार्गलस्थापना

च सू

४— —१
३— —२
२— —३
१— —४

आद्येन विध्यते तुर्यो द्वितीयेन तृतीयकः । तृतीयेन द्वितीयस्तु तुर्येण प्रथमस्तथा ॥ पादेन पाद इत्यर्थ ।

1 एकान्तिककार्यं विना शेषेष्वपि देशेषु त्याज्या इति भाव । 2 यौगिकनामाश्रयणात्सर्वोऽपि शुभयोग । 3 विष्कम्भगण्डातिगण्डशूलव्याघातवज्रपातेषु। 4 प्रीत्यायुष्मदादिसुयोगेष्वेकार्गलो न स्यादेवेत्यर्थं । 5 अनतरितपाद एकान्तेन शुभकार्येषु त्याज्य । पादान्तरितस्य त्यागे कामचार इति भाव । 6 शूले मूर्ध्नि मृगो मघा च परिघे चित्रा पुनर्वैधृते, व्याघाते च पुनर्वसू निगदितौ पुष्यश्च वज्रे स्मृत । गण्डे मूलमथाश्विनी प्रथमके मैत्रोऽतिगडे तथा, सार्पश्च व्यतिपात इन्दुतपनावेकार्गलस्थौ यदा ॥१॥ इति लल्ल । प्रथमके इति विष्कुम्भे।

मतम् । योगाङ्क सैक ओजोऽन्यः साष्टाविंशतिरर्धितः ॥७७॥ वेधं ऊर्ध्वतिरः-सप्तरेखे पूर्वादितोऽभिभात् । भस्य रेखाग्रगे खेटे हेयश्चेन्न पदान्तरम् ॥७८॥

विवाहे पूर्ववत्पञ्च रेखा द्वे द्वे तु कोणके । लिखित्वाऽभिभतो भानि वेधं तत्रऽपि[1] चिन्तयेत् ॥ ७९ ॥ लत्ता वर्ज्येष्टभस्यार्कादीनां साभिजिदीयुपाम् । धृत्यांकृत्यु-ड्डुसप्ताहेतुपञ्चांक-

1 यंत्रालेखनान्तरं यो यो ग्रहो यत्र यत्र भे स्यात् स तत्र तत्र स्थाप्यः । ततो यद्रेखायाः प्रान्ते तद्दिनभं समागतं तस्य द्वितीयप्रांतस्थभे यदि कश्चिद्ग्रहः स्यात्तदा तेन

त्र्यैङ्कसंख्यभम् ॥ ८० ॥ लत्तयन्ति भमर्काद्याः स्वर्क्षतः साभिजित्क्रमात् ।
अर्कोऽर्ष्टमिविकृत्यैङ्गतत्त्वोऽर्ष्टप्रकृतिप्रमम् ॥ ८१ ॥ अग्रतो नवमे राहोः
३ सप्तविंशे भृगोस्तु मे । केचिज्ज्योतिर्विदः प्राहुर्लत्ता तामपि वर्जयेत् ॥८२॥
पातः सूर्यर्क्षतोऽश्लेषा मघा चित्रानुराधिका । श्रुतिः पौष्णं च यत्र स्युस्त्या-
५ ज्यस्तत्संख्यभेऽश्विभात् ॥ ८३ ॥ पात शूलस्य गंडस्य हर्षणव्यतिपा-

---

ग्रहेणेष्टभस्य वेध स्यात् स हेय । यत क्रूरवेधे मृत्युरेव, सौम्यवेधे तु सर्वथा सुखनाश । 2 इति पूर्णभद्र । श्रीपतिकेशवार्कौ तु पादान्तरितमपि क्रूरग्रहवेध ग्रहीतु नानुमन्येते । 3 अवधारणे, तेन सप्तरेखवेध सर्वकार्येषु वीक्ष्य । विवाहे लयमेव । फल तु रवि विहवा, कुजि कुल खय, बुहि वझा, भिगु अपुत्त, सणि दासी । गुरुवेहेण तविस्सिणि, विलासिणी राहुकेऊहिं ॥१॥ पूर्णभद्रस्तु दीक्षायामप्यय वीक्ष्य इत्याह च-सूरिपयाइसु सत्त-सलाय वयगहणाइसु पचसलाय कत्तिअमाइ ठविज्ज हु चक्क जो अहसस्सिणो तो गहवेह । 4 आकृतिर्द्वाविंशश्छन्दोजाति । लत्ता पादप्रहार प्रायोऽश्वादीनामिव पृष्ठत स्यात् ।

1 स्वर्क्षत इति यद्येन ग्रहेण तदा आक्रान्त स्यात्तस्य स्वर्क्ष ततो येषु येषु मेष्वर्काद्या ग्रहन्ता स्थिता स्युस्तेभ्योऽग्रे क्रमाद्द्वादशादीनि भानि लत्तया घ्नन्ति । विकृतिप्रकृती त्रयोविंशैकविंश्यौ छन्दोजाती । तत्त्वानि साङ्ख्यमते पञ्चविंशति । उत्तरार्धे सुखार्थं पाठान्तर–"सूर्याष्टनित्रयोविंशैपट्तत्त्वोऽष्टैकविंशकम्" । अस्मिंश्च लत्ताद्वैविध्येऽपि नार्थ-भेद । तथाहि—इष्टभमश्विनी ततोऽष्टादशे मे ज्येष्ठायां स्थितोऽर्कोऽश्विनीं पृष्ठतो लत्तयति । तथार्कस्य स्वर्क्ष ज्येष्ठा तत्रस्थोऽर्क पुरतो द्वादश भमश्विनीं लत्तयति । एव सर्वत्र भाव्य । ननु यदिष्टदिनस्य भं तदेवेन्दोर्भं, तत्रस्थश्चेन्दुर्यदि द्वाविंशमष्टम वा भ लत्तयति तदेष्टभस्य किमागत ? ततश्चेष्टभस्येन्दुलत्ताविचारण व्यर्थमेवापद्यते । सत्य, परमिन्दु परिपूर्ण एव सन् भ लत्तयति, नान्यथा, यदाह श्रीपति –"द्वाविंश परिपूर्णमूर्तिरुडुप सतापयेत्तर" । ततो गतपक्का यत्र भे समाप्ता स्यात्तदेवेन्दोर्भं कल्पयित्वा ततो विचार्यम् । उक्त च यति-वल्लभे—"चकार यत्र नक्षत्रे राकान्त रजनीकर । ततश्चाष्टमनक्षत्र स पुरो हन्ति लत्तया" ॥ १ ॥ 2 अणुजविणासो नासो कज्जाभावो भय विहवछेओ गुरुबुहसियससिर-विहयरिरकेसु मरणमन्नेसु । इति पूर्णभद्र । वृद्धास्तु सौम्यलत्ता किल स्वल्पदोषा भस्य दौर्बल्यमात्रकारका, क्रूरलत्तास्तु मरणदारिद्र्यादिनाऽनर्थदा । 3 निशूलपात इति नामान्तरम् । भावना यथा–यदा सूर्यभ ज्येष्ठा तदा ज्येष्ठातोऽश्लेषा एकोनविंशी, मघा विंशी, चित्रा चतुर्विंशी, अनुराधा सप्तविंशी, श्रुति पञ्चमी, पौष्ण दशम चेत्यतस्तद्दिनेऽश्विनीत एकोनविंशविंशचतुर्विंशसप्तविंशपञ्चमदशमीषु मूलपूर्वाषाढाशतभिषग्रेवतीमृगशिरोमघासु पात स्यात् । एवमन्यदपि भाव्यम् । पातेऽभिजिन्न गण्यते । 4 शूलाद्या एते षड्योगा येषु येषु मेषु समाप्यन्ते तेषु तेष्वेते षडपि पाता क्रमात् स्यु । पवन पावकश्चैव काल किंकर एव च । मृत्युकृत् क्षयकृच्चेति पाता नामसदृक्फला । एता सज्ञा नरपतिजयचर्यायाम् ।

तयोः । साध्यवैधृतयोश्चान्ते धिष्ण्यं यत्तत्र वर्जयेत् ॥ ८४ ॥ ॥ इति योगद्वारम् ॥ ४ ॥ इति वार्त्तिकानुसारेण प्रथमो विमर्शः समाप्तः ॥

॥ अथ द्वितीयो विमर्शः ॥ २

[1]राशिरथ तत्र मेषोऽश्विनी च भरणी च कृत्तिकापादः । वृषभस्तु कृत्तिकांह्रित्रयान्विता रोहिणी समार्गार्धा ॥ १ ॥ मिथुनो मृगार्धमार्द्रापुनर्वसोश्चांह्रयस्त्रयः प्रथमे । कर्की च पुनर्वस्वोः पादः पुष्यस्तथाऽश्लेषा ॥ २ ॥ सिंहस्तु मघाः पूर्वाफल्गुन्यः पाद उत्तराणां च । कन्योत्तरात्रिपादी हस्तश्चित्रार्धमाद्यं च ॥ ३ ॥ तौली चित्रान्त्यार्धं स्वातिः पादत्रयं विशाखायाः । स्याद् वृश्चिको विशाखाचतुर्थपादोऽनुराधिका ज्येष्ठा ॥ ४ ॥ धन्वी मूलं पूर्वाषाढाऽपि च पाद उत्तराषाढः । स्यान्मकर उत्तराषाढांह्रित्रितयं श्रुतिर्धनिष्ठार्धम् ॥ ५ ॥ कुंभोऽन्त्यधनिष्ठार्धं शततारा पूर्वभाद्रपात्रिपदी । मीनो भाद्रपदांह्रिस्तथोत्तरा रेवती चेति ॥ ६ ॥ मेषाच्छोणार्जुनहरिद्रक्तश्वेतैतमेचकाः । पिंगपिंगलकल्माषकडारमलिना [2]रुचः ॥७॥ [3]उद्यद्घोषवतीगदं नृमिथुनं नौस्थाग्निसस्यान्विता, कन्या ना च तुलाधरो

---

1 अभिजितोऽगणनात् पादत्रयस्य वर्णा उत्तराषाढाया अन्त्यपादे तदन्त्यपादस्य च वर्णः श्रवणस्याद्यपादे ह्यन्तर्भाव्यः। 2 नवांशविचारणायां तु नवांशानामपि। प्रयोजनं चास्य विशिष्य नवांशेषु तच्चैवम्—धातुमूलजीवरूपं द्रव्यं किल नवांशाज्ज्ञायते । उक्तं च 'अंशकाज्ज्ञायते द्रव्यम्' । ततश्च तस्य धातुमूलादेर्वस्तुनो हृतनष्टादिप्रश्नेऽनेन वर्णज्ञानं स्यात् । 3 तथा च सारङ्गः—"मेषो दैन्यमुपैति, गर्वति वृषो, नानामतिर्मन्मथः, शूरः कर्कटको, धृतिश्च वनपे, कन्या च मायाविनी। सत्यं रज्जुतुलास्खलौ मलिनता, चापश्च पापाशयो, मौखर्यं मकरे, घटे चतुरता, मीने च धीरा मतिः" ॥ १ ॥ तथा मेषवृषौ दिवा आरण्यौ, निशि ग्राम्यौ । मिथुनो ग्राम्यः । कर्कमीनौ जले । सिंहोऽरण्ये । वृश्चिकः प्रवासी । धनुःकुंभौ ग्राम्यौ । मकरस्याद्योऽंश आरण्योऽन्यो जलचर इत्यादि । प्रयोजनं चास्य हृतनष्टादौ चौरचेष्टास्थानादिज्ञानं । एषु च लग्नेषूचितकर्माण्येवं दैवज्ञवल्लभे—"राज्याभिषेकविरोधसाहसकूटकर्मादि धात्वाकराद्यं च मेषे लग्ने सिध्यति १ । विवाहवेश्मप्रवेशकन्यावरणादिध्रुवं कर्म क्षेत्रारंभपशुकर्मणी च वृषे २ । वृषोक्तं विद्याशिल्पभूषणादि च मिथुने ३ । सेवाभोगौ मृदुशुभकर्म पौष्टिकं वापीकूपादिजलकर्म च कर्के ४ । मेषोक्तं वाणिज्यनृपसेवारिपुमिलनादि च सिंहे ५ । शिल्पौषधभूषणवाणिज्यादिचरस्थिरं कन्यायाम् ६ । कृषिसेवायात्रादि कन्योक्तं च तुलायाम् ७ । ध्रुवकर्म नृपसेवाचौर्यादिदारुणोग्रादिकर्म च वृश्चिके ८ । यात्रायुद्धव्रतसत्कर्मादि धनुषि ९ । क्षेत्राश्रयमम्बुयात्रा चरकर्म नीचक्रिया च

घृतधनुर्धन्व्यश्वपश्चार्धकः । एणास्यो मकरः कुटांकितशिराः कुंभो विलो-
मानन, मीनो मीनयुग च नामसदृशाः प्रोक्ताः परे राशयः ॥ ८ ॥
२ पूर्वादिदिक्षु मेषाद्याः पतयः स्युः पुनः पुनः । चरस्थिरद्विस्वभावाः क्रूरा-
ऽक्रूरा नरस्त्रियः ॥ ९ ॥ षड् निर्गावलिनोऽजोक्षयुग्मकर्कधनुर्मृगाः । पृष्ठे-
नोद्यन्त्ययुग्मास्ते शीर्षेणान्ये द्विधा झषः ॥ १० ॥ अर्कादुच्चान्यजवृषे-
६ मृग[३]कन्या[५]कर्क[५]मीन[६]वणिजो[७]ऽशैः । दिग्[३]दहना[२८]ष्टाविंशति[१५]तिथीषु[३]नक्षत्र[२७]विंश-
७ तिभिः[२०] ॥ ११ ॥ स्वोच्चतः सप्तम नीच त्रिकोणान्यथ भानुतः ।

मकरे १० । अभ्युयानानौसज्जीकरणबीजोप्तिदमभेदमतादि नीचकर्म च कुम्भे ११ ।
विद्यालङ्कृतिशिरपपशुकर्मनौयानाभिषेकादि मङ्गल्यकर्म च सर्वं मीने सिध्यति १२ ।"
"एतान्युक्तानि ससिद्धि यान्ति शुद्धेष्वजादिषु । क्रूराणि क्रूरयुक्तेषु शुभानि सशुभेषु
तु" ॥ १ ॥

1 आशु जाता यथानामस्वभावा । 'मेषसिंहवृश्चिकमकरकुम्भा पञ्चराशय क्रूर
क्रूरस्वामिकत्वात् शेषा सप्त सौम्येशत्वात्सौम्या इति , रत्नमालायाम् । 'ग्रहयोगेक्षणाभ्या
स्याद्राशेर्भावो ग्रहोद्भव । राशि स्वभावमाधत्ते ग्रहयोगेक्षणोज्झित ' इति तु दैवज्ञवल्लभे ।
2 प्रयोजन तु हतनष्टादौ दिनरात्रिरूपसमयज्ञानम् । बलानुसारेणैव दिने रात्रौ वा यात्रादि
शुभ नान्यथा । 3 प्रयोजन तु यात्रादौ शीर्षोदये लग्ने जय पृष्ठोदये वैफल्यमित्यादि ।
4 लघुबृहज्जातकनारचन्द्रादीनामभिप्रायस्त्वयम् । मेषेऽर्के उच्चस्तस्यैव दशमे त्रिंशांशे
तु परमोच्च * * * भौमो मकरे उच्च तस्यैवाष्टाविंशे परमोच्च ' इत्यादि । ताजिके तु
नास्ति परमोच्चसज्ञा किन्तु मेषे आदशभागान्यावत्सूर्य उच्च । पश्चात्तु तेज पतित इत्यु-
क्तम् । एव वृषादिषु चन्द्रादीनामपि वाच्यम् । 5 जातकादीनामभिप्रायस्तत्रापि उच्चव-
देव । परमोच्चता परमनीचता च षष्टिलिप्ताप्रमाणस्य तत्तदशस्य मध्यभागे, कोऽर्थ ? त्रिंश-
ल्लिप्ताभि क्रमे स्यातामिति तज्ज्ञा । परमोच्चनीचत्वयो समयज्ञानोपायश्चायम्—"माघ
रविबुधशुक्रौ सार्ध भौमैस्त्रयोदशाचार्ये । त्रिंशन्मन्दोऽष्टादश राहुश्चन्द्र सपाददिवस-
युगम्" ॥ १ ॥ इद तावद्ग्रहाणां राशिस्थितिमान । तथा च—"त्रिंशांशे शार्कशुक्राणां
दिन सार्धचतुर्घटि । इन्दो कुंजे सार्धदिन माममेक शनैश्चरे ॥ १ ॥ अष्टादशदिनी
राहोस्त्रयोदशदिनी गुरो " । इति । ततश्च मेषसक्रान्तौ नवदिनेभ्योऽनु दिनमेक परमो-
च्चोऽर्क १ । वृषे नवघटीभ्योऽनु सार्ध घटीचतुष्क चन्द्र परमोच्च २ । मकरे सार्ध-
चत्वारिंशद्दिनेभ्योऽनु सार्धमेक दिन भौम परमोच्च ३ । कन्याया चतुर्दशदिनेभ्योऽनु
दिनमेक बुध परमोच्च ४ । कर्के द्वापञ्चाशद्दिनेभ्योऽनु त्रयोदशदिनानि गुरु परमोच्चः
५ । मीने षड्विंशतिदिनेभ्योऽनु दिनमेक शुक्र परमोच्च ६ । तुलायामेकोनविंशतिमासे-
भ्योऽनु मासमेक शनि परमोच्च ७ । परमनीचेऽप्येवमेव भावना । इद च सामान्येनोक्त

सिंहोक्षमेषप्रमदा धनुर्धटघटाः क्रमात् ॥ १२ ॥ लग्नाद्भावास्तनु-१

द्रष्टव्यं । यतो भौमाद्याः प्रायो वक्रिता अतिचरिता वा स्युः । न च तदानीमयं परमोच्चनीचत्वसमयः संवदति, तेन वक्रातिचारवतां ग्रहाणां वक्ष्यमाणकरणेन स्पष्टतां कृत्वा यथोक्तांशैरेव परमोच्चनीचत्वे निर्धार्ये । सहजगतीनां तु सांप्रतोक्तसमययुक्त्येति । उच्चनीचप्रयोजनं त्वेवम्—"इक्को जइ उच्चत्थो हवइ गहो उन्नइं परं कुणइ । किं पुण बे तिन्नि गहा कुणंति को इत्थ संदेहो ॥ १ ॥ जन्मनि तत्फलं यथा—"त्र्युच्चैर्नृपः पञ्चभिरर्धचक्री चक्री षडुच्चैर्मुनिभिस्तथार्हन् ॥ १ ॥ त्रिभिर्नीचैर्भवेद्दासस्त्रिभिरुच्चैर्नराधिपः । त्रिभिः स्वस्थानगैर्मंत्री त्रिभिरस्तमितैर्जडः ॥ १ ॥ अन्धं दिगम्बरं मूर्खं परपिंडोपजीविनम् । कुर्यातामतिनीचस्थौ पुरुषं चन्द्रभास्करौ" ॥ २ ॥ इत्यादि । त्रिकोणान्यथेति एतानि मूलत्रिकोणान्यप्युच्यन्ते । प्रमदा कन्या । धटस्तुला । घटः कुंभः । प्रयोजनं तु त्रिकोणग्रहा उच्चसमं किञ्चिदूनं वा फलं दद्युरिति पाकश्रियाम् । प्रश्नशतकवृत्तौ च त्रिकोणादीनि त्रिंशांशव्यक्त्या एवमूचिरे, तथाहि–"सिंहे विंशतिस्त्रिंशांशास्त्रिकोणं शेषा दश गृहं रवेः १ । वृषे द्वावंशावुच्चौ तृतीयः परमोच्चः शेषास्त्रिकोणमिन्दोः २ । मेषे द्वादशांशास्त्रिकोणं शेषा गृहं कुजस्य ३ । कन्यायां चतुर्दशांशा उच्चाः पञ्चदशः परमोच्चः ततः पञ्चांशास्त्रिकोणं शेषा दश गृहं बुधस्य ४ । धनुषि दशांशास्त्रिकोणं शेषा गृहं गुरोः ५ । तुलायां पञ्च दशांशास्त्रिकोणं शेषा गृहं शुक्रस्य ६ । कुंभे विंशतिरंशास्त्रिकोणं शेषा दश गृहं शनेरिति ७ ॥

1. भाव्यन्ते विचार्यन्ते इति भावाः । पृच्छायां जन्मनि यात्रादौ वा यः कश्चित्तत्काले उदयन् राशिः स लग्नाख्यो द्वादशारचक्राकृतिं न्यस्य संमुखारविवररूपे मुख्यस्थाने देयः, शेषा एकादश राशयोऽप्रदक्षिणमेकादशस्थानेषु च, एवं कुंडलिका स्यात् । तत्स्थापना पृष्ठे ४२ । अत्र लग्नस्य तनुभावसंज्ञा इष्टनरादेस्तनुरेतदनुसारेण विचार्येत्यर्थः । ततोऽप्रदक्षिणमेकादशस्थानेषु द्वितीयादिस्थानस्थराशीनां क्रमाद् द्रव्यभाव २ भ्रातृभाव ३ बन्धुभावा४दिसंज्ञाः । इष्टस्य पुंसो द्रव्यभ्रात्रादिकमेषामनुसारेण विचार्यं, तथाहि—"यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा, सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिः । पापैरेवं तस्य तस्यास्ति हानिर्निर्देष्टव्या पृच्छतां जन्मतो वा" ॥ १ ॥ नवरं षष्ठेऽरिभावे यथा क्रूरा अरिभावं घ्नन्ति तथा सौम्या अपि घ्नन्त्येव, न तु पुष्णन्ति । व्ययाष्टमयोश्च यथा सौम्या व्ययमृत्यू पुष्णन्ति तथा क्रूरा अपि पुष्णन्त्येव, न तु घ्नन्ति । अत एवोक्तं–"सौम्याः षष्ठेऽरिघ्नाः सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगा" इति । यवनेश्वरमते तु–"अष्टमे सौम्या आयुर्वृद्धिकरा इति । भ्रातृभावे च भगिन्योऽपि लक्ष्याः । बन्धवः स्वजना बन्धुभावे माताऽपि । सुतभावे शिष्या अपि । स्त्रीति भार्या । अत्र गमागमाद्यपि । अष्टमे रोगाद्यपि । धर्मभावे क्रमागतविद्याऽचुम्बिताविद्याऽचिन्तितधनलाभाद्यपि । दशमे कर्मव्यापारः, अत्र पिताभाग्यमाहैश्वर्याद्यपि च । लाभे नष्टलाभाद्यपि । व्यये सदसद्व्ययादि च विचार्याणि(र्यं) । द्वादशेति यथा लग्नादारभ्य द्वादश भावा उक्तास्तथा चन्द्रादपि ज्ञेयाः, लग्नचन्द्रयोर्मध्ये यस्तदानीं बलवान् स्यात्तस्माद्द्वादश भावा विचार्यन्त इत्याम्नायः ॥

ग्रहा	रवि	चन्द्र	मंगळ	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु
उच्चानि	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला	मिथुन
नीचानि	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष	धनु
राशिस्थिति	मास १	मास २।	मास १॥	मास १	मास १३	मास १	मास ३०	मास १८
परमोच्चपरम नीचानि	१०	३	२८	१५	५	२७	२०	०
अंशमान	दिन १	घटी ४॥	दिन १॥	दिन १	दिन १३	दिन १	मास १	०

द्रव्यंभ्रातृबन्धुसुतारयः । स्त्रीमृत्युधर्मकर्मायव्ययाश्च द्वादश स्मृताः ॥१३॥ सुहृन्-मन्दिर-पाताल-हिबुका-ऽम्बु-सुखाभिधम् । चतुर्थम्, अष्टम

३ बुधस्वामी भ्रातृ भगिनी सहज दुश्चिक्य विक्रम आपोक्लिम उपचय / २ शुक्रस्वामी धन पणफर	१ मंगळस्वामी तनु मूर्ति लग्न केन्द्र चतुष्टय कटक	१२ बृहस्पतिस्वामी (सदसद्) व्यय आपोक्लिम रिप्फ / ११ शनैश्चर स्वामी आय पणफर नष्टलाभादि सर्वतोभद्र उपचय
४ चंद्रस्वामी बधु अंबु सुहन्मंदिर केन्द्र चतुष्टय कटक पाताल हिबुक अम्बु सुख चतुरस्र मातृभवन गृहभवन	लग्न-संज्ञायंत्रम्	१० शनैश्चरस्वामी कर्म व्यापारभवन केन्द्र चतुष्टय कटक मध्य मेषूरण व्योम उपचय
५ रविस्वामी सुत शिष्य पणफर धी त्रिकोण / ६ बुधस्वामी अरि आपोक्लिम उपचय	७ शुक्रस्वामी स्त्री काम जामित्र द्युन द्यून अस्त केन्द्र चतुष्टय कटक विवाह	८ मंगळस्वामी मृत्यु छिद्र पणफर अनायु पाप क्षत चतुरस्र / ९ बृहस्पतिस्वामी धर्म भाग्य आपोक्लिम त्रित्रिकोण त्रिकोण

३ छिद्रम् चतुरस्रे उभे पुनः ॥ १४ ॥ त्रित्रिकोण च नवमम्, त्रिकोणे नव-

1 क्षतपापपर्याय । अनायुरित्यप्यस्य संज्ञा ।

पञ्चमे । सप्तमं काम-जा[1]मित्र-द्युन-द्यूना-[2]ऽस्तसंज्ञकम् ॥१५॥ स्यातां तृतीये
दुश्चिक्यविक्रमे, पञ्चमे तु धीः । मध्य[3]-मेषूरण-व्योमान्याहुर्दशमधामनि १६
उपान्त्यं [4]सर्वतोभद्रमन्त्यं रिष्पमुदीरितम् । वदन्त्युप[5]चयाह्वांस्त्रिषड्दशैका- ३
दशान् पुनः ॥ १७ ॥ केन्द्र[6]चतुष्टयकंटकनामानि वपुःसुखास्तदश-
मानि । स्युः पणफराणि परत२-५-८-११ स्तेभ्योऽप्यापोक्लिमानीति३-६-
९-१२ ॥ १८ ॥ मेषादीशाः कुजः शुक्रो बुधश्चन्द्रो रविर्बुधः । शुक्रः ६
कुजो गुरुर्मन्दो मन्दो जीव इति क्रमात् ॥ १९ ॥ होराराश्यर्धमोज-
र्क्षेऽर्केन्द्वोरिन्द्वर्कयोः समे । द्रेष्काणा भे[7] त्रयस्तु स्वपञ्चमत्रित्रिकोणे-
पाः ॥ २० ॥ नवांशाः स्युरजादीनामजैणतुलकर्कतः । वर्गोत्तमा[8]श्चरादौ
ते प्रथमः पञ्चमोऽन्तिमः ॥ २१ ॥ स्युर्द्वादशांशाः स्वगृहादथेशास्त्रिंशांश- १०

---

1 विवाहपर्यायः जामिं भगिनीं त्रायति त्यजतीति कृत्वा । 2 सर्वोऽपि ग्रहो यस्मिन् राशावुदितस्तत्सप्तमेऽदर्शनं यातीत्यस्तसंज्ञा । 3 इह किल तुर्यस्य पातालाम्बुसंज्ञे दशमस्य मध्यव्योमसंज्ञे च भूगोलकल्पनयेत्यूह्यं, भूगोलमते ह्यर्कः प्रातः प्राच्यामुदीय प्रदक्षिणं भ्रमन्मध्याह्ने दशमधामनि व्योममध्यमागत्य सायं सप्तमेऽस्तमेति, तथैव च रात्रावपि भ्रमन्मध्यरात्रे तुर्यधाम्नि पाताले भूत्वा पुनः प्रातः प्राच्यामुदेतीत्याहुः । पातालं च स्वभावादम्बुस्थानमिति प्रतीतमेव ॥ 4 तत्रस्थग्रहस्य सर्वथाऽपि शुभत्वात् । 5 लग्ना-च्चन्द्राच्च । एषु स्थितः पापग्रहोऽपि शुभफलप्रदः स्यात् । 'कार्यं यदुक्तं तदुपैति सिद्धिं वारे ग्रहे चोपचयर्क्षभाजि । नीचर्क्षसंस्थेऽपचयस्थिते च यत्ने कृते चापि भवत्यसाध्यम् ॥१॥ 6 सर्वासु भावसंज्ञासु दुश्चिक्यहिबुकत्रिकोणद्युनद्यूनत्रित्रिकोणचतुरस्रमेषूरणरिष्पकेन्द्र-चतुष्टयकंटकपणफराऽऽपोक्लिमसंज्ञाः, वक्ष्यमाणहोराद्रेष्काणसंज्ञे चान्वर्थरहितत्वाद्या-दच्छिक्यो यवनाचार्यादिमते रूढत्वादुक्ताः । विक्रमसुखवेश्मधीजामित्रछिद्रादिसंज्ञास्तु सान्वर्थाः, तेनेष्टपुंसो विक्रमादि तत्तद्गृहाद्विचार्यम् । एवमेव प्रथमादिस्थाने तन्वादि विचार्यम् । 7 राशीनामिति शेषः । सूर्येन्दुहोराजाताः क्रमात्तेजस्विनो मृदवश्च स्युः । एवं द्रेष्काणादिजाता अपि तत्तत्स्वामिसदृशाः । सप्तांशकव्यवहारिणां तु मते तेषां नाथा होरामकरन्दे एवमुक्ताः 'स्वर्क्षादोजे युग्मभे द्यूनगेहाद्गण्यास्तज्ज्ञैः सप्तमांशाः क्रमेण' । 8 सर्वस्य राशेः स्वस्वसमाननामा नवांशो वर्गोत्तम इति भावः तज्जातश्च स्वकुले मुख्यः स्यात् । 'ति चउ पण सत्त नवमा रासीण नवंसया सुहा जम्मे । पढम दु अट्ठम अहमा, छट्ठो पुण मज्झिमो नेयो' ॥ इति पूर्णभद्रः ॥ 'बलवानुदितांशस्थः शुद्धं स्थानफलं ग्रहः । दद्याद्वर्गोत्तमांशे च, मिश्रं शेषांशसंस्थितः ॥ १ ॥ यतो य एव राशिः स्यात् स एव च नवांशकः । प्रोक्तं स्थानफलं शुद्धमतोऽस्मिन् सोपपत्तिकम्' ॥ २ ॥ इति दैवज्ञवल्लभे वर्गोत्तमनवांशस्थो ग्रहोऽपि वर्गोत्तमः । नवांशस्वामिनस्तेषां राशिस्वामितुल्याः ।

केष्वोजयुजोस्तु राश्योः । क्रमोत्क्रमादर्थगैराऽष्टशैलेन्द्रियेषु भौमार्किगुरुज्ञशुक्राः ॥२२॥ पड्वर्गेऽष्टादश नव षड् द्वे सार्धशतानि षष्टिश्च । क्रमशो

राशीना गृहाणि	गृहेशा	होरा		द्रेष्काणेशा			नवांशेशा								
१ मेष	मंगळ	र	च	म	र	गु	म	शु	बु	च	र	बु	शु	म	गु
२ वृष	शुक्र	च	र	शु	बु	श	श	श	गु	म	शु	बु	च	र	बु
३ मिथुन	बुध	र	च	बु	शु	श	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु
४ कर्क	चंद्र	च	र	च	म	गु	च	र	बु	शु	म	गु	श	श	गु
५ सिंह	रवि	र	च	र	गु	म	म	शु	बु	च	र	बु	शु	म	[illegible]
६ कन्या	बुध	च	र	बु	श	शु	श	श	गु	म	शु	बु	च	र	बु
७ तुला	शुक्र	र	च	शु	श	बु	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु
८ वृश्चिक	मंगळ	च	र	म	गु	च	च	र	बु	शु	म	गु	श	श	गु
९ धन	गुरु	र	च	गु	म	र	म	शु	बु	च	र	बु	शु	म	गु
१० मकर	शनि	च	र	श	शु	बु	श	श	गु	म	शु	बु	च	र	बु
११ कुंभ	शनि	र	च	श	बु	शु	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु
१२ मीन	गुरु	च	र	शु	च	म	च	र	बु	शु	म	गु	श	श	गु

राशीना गृहाणि	द्वादशांशेशाः												त्रिंशांशेशा				
१ मेष	म	शु	बु	च	र	बु	शु	म	गु	श	श	गु	५ म	५ श	८ गु	७ बु	५ शु
२ वृष	शु	बु	च	र	बु	शु	म	गु	श	श	गु	म	५ शु	७ बु	८ गु	५ श	५ म
३ मिथुन	बु	च	र	बु	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	५ म	५ श	८ गु	७ बु	५ शु
४ कर्क	च	र	बु	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु	५ शु	७ बु	८ गु	५ श	५ म
५ सिंह	र	बु	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु	च	५ म	५ श	८ गु	७ बु	५ शु
६ कन्या	बु	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु	च	र	५ शु	७ बु	८ गु	५ श	५ म
७ तुला	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु	च	र	बु	५ म	५ श	८ गु	७ बु	५ शु
८ वृश्चिक	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु	च	र	बु	शु	५ शु	७ बु	८ गु	५ श	५ म
९ धन	गु	श	श	गु	म	शु	बु	च	र	बु	शु	म	५ म	५ श	८ गु	७ बु	५ शु
१० मकर	श	श	गु	म	शु	बु	च	र	बु	शु	म	गु	५ शु	७ बु	८ गु	५ श	५ म
११ कुंभ	श	गु	म	शु	बु	च	र	बु	शु	म	गु	श	५ म	५ श	८ गु	७ बु	५ शु
१२ मीन	गु	म	शु	बु	च	र	बु	शु	म	गु	श	श	५ शु	७ बु	८ गु	५ श	५ म

२ गृहहोरादौ लिप्ताः स्युः प्रभुरिह नवांशः ॥ २३ ॥ पण्णां त्र्यादिषु वर्गेषु

1 चन्द्रबलं किल तिथ्यादिबलेभ्यः शतगुणं, ततोऽपि लग्नं सहस्रगुणबलम्, ततोऽपि होराद्याः सर्वेऽपि यथोत्तरं पञ्चपञ्चगुणबलाः इति बृहज्ज्यातकवृत्तौ । 2 गृहादिषड्वर्गोऽनतिस्थूलसूक्ष्मत्वात्प्रतिष्ठाविवाहादिसर्वकार्येष्वधिकारी नवांश एवेत्यर्थः । यत्रत्र –स्वार्धं नक्षत्रफलं तिथ्यर्धं तिथिफलं समादेश्यम् । होराया वारफलं लग्नफलं त्र्यंशके स्पष्टम्' ॥

यो ग्रहः स्वेष्ववस्थितः । स स्ववर्गगतो ज्ञेय एवमेवान्यवर्गगः ॥ २४ ॥

ग्र[1]हाः स्युरैन्द्याद्यधिपा दिने-
शे[1]शु[2]क्रा[3]र[4]रा[5]ह्वा[6]र्कि[7]श[8]शि[9]ज्ञ[10]जी-
वाः । पापाः क्रू[2]शेन्द्वर्कत-
मोऽसितारास्तैः संयुतो ज्ञश्च,
परे तु सौम्याः[3] ॥ २५ ॥

ईशान गुरु	पूर्व रवि	अग्नि शुक्र
उत्तर बुध	दिगीश- ग्रहयन्त्रम्	दक्षिण मंगळ
चंद्र वायव्य	शनि पश्चिम	राहु नैर्ऋत्य

तथा ग्रहो नवांशस्य प्राधान्यम् तथाहि—लग्ने शुभेऽपि यद्यंशः क्रूरः स्यान्नेष्टसिद्धिदः । लग्ने क्रूरेऽपि सौम्यांशः शुभदोऽंशो बली यतः ॥ इति दैवज्ञवल्लभे । तथा क्रूरांशस्थः सौम्यग्रहोऽपि क्रूरः स्यात् सौम्यांशस्थस्तु क्रूरोऽपि सौम्यः स्यादिति लल्लः । तथा क्रूरांशस्थस्य सौम्यग्रहस्यापि दृष्टिर्दुष्टा सौम्यांशस्थस्य च क्रूरस्यापि दृक् शुभा । तथा ग्रहगोचरशुद्धिविचारणावसरे ग्रहो राशिगोचरेणाशुभोऽपि नवांशगोचरेण यदि शुभः स्यात्तर्हि शुभ एवेत्यादि लल्लश्रीपती । 3 षण्णामिति निर्धारणे षष्ठी । त्र्यादिष्विति अन्यतरेषु त्रिषु चतुर्षूत्कर्षतः पञ्चसु वा स्वकीयेषु यः स्थितः, न तु कदापि षट्सु संभवति, अर्केन्द्वोस्त्रिंशांशस्य कुजादीनां होरायाश्चाभावात्, स स्ववर्गस्थस्तत एव च सबलः । एवमेवेति यस्तु त्र्यादिषु परकीयेषु स्थितः सोऽन्यवर्गस्थस्तत एव विबलश्च । विशेषस्तु यत्र नवांशे षण्णां पञ्चानां चतुर्णां वा गृहाद्यन्यतरेषां सौम्य एव ग्रहस्वामी लभ्यते स नवांशः षड्वर्गस्य पञ्चवर्गस्य चतुर्वर्गस्य वा सौम्यत्वात् प्रतिष्ठादिलग्नेषु विशेषतो ग्राह्यः । स चैवं निर्धारितः तथाहि—"सत्तमनवमा मेसे[1] पंचमतइआ विसे[2] मिहुणि छट्ठो[3] । पढमतइआ य कक्के[4] सिंहे छट्ठो[5] कणी तइओ[6] ॥ १ ॥ अट्ठमनवमा य तुले[7] विच्छियलग्गे[8] चउत्थय नवंसो[9] । धणुलग्गि छट्ठसत्तमनवमो[10] मयरम्मि पंचमंओ[11] ॥ २ ॥ छट्ठट्ठमा य कुंभे[12] पढमो तइओ अ मीणलग्गम्मि[13] । चउपणवग्गछवग्गो एएसु नवंसएसु सुहो" ॥३॥ अत्र चउपणवग्गत्ति एषु नवांशेषु चतुर्वर्गशुद्धिस्तावदस्त्येव, पञ्चवर्गशुद्धिषड्वर्गशुद्धी तु केषुचिन्नवांशेषु संपूर्णेषु स्तः, केषाञ्चित्तु कियत्यपि भागे स्तः, तद्व्यक्तिश्च ग्रन्थप्रान्तकाव्यवृत्तौ लिखिताऽस्ति ततोऽभ्यूह्या । इह च केचित्त्रिवर्गशुद्ध्याऽप्यन्ये तु नवांशस्यैव प्रभुत्वात्तमेवैकं सौम्यसत्कमादाय शेषवर्गशुद्धिं विनाऽपि लग्नमाद्रियन्ते, तदत्रेदं तत्त्वम्—लग्ने ध्रुवग्राह्यनवांशशुद्धौ सत्यां यथा यथा शुभवहुवर्गलाभस्तथा तथा प्रतिष्ठादौ शुभकार्ये तद्विशिष्य ग्राह्यम् ॥

1 दिग्वाच्या केन्द्रमतैरसंभवे वा वदेद्विलग्नर्क्षात् । चौरादीनामिति शेषः । 2 कृष्णचतुर्दश्यादिदिनत्रयेऽकलः कृशः शशी क्रूरः । 3 प्रयोजनं पापसौम्यग्रहवलिष्ठत्वाज्जातकादेस्ताच्छील्यादि विशेषस्तु रक्तश्यामो भास्करो, गौर इन्दुर्नात्युच्चाङ्गो रक्तगौरश्च वक्रः । दूर्वाश्यामो ज्ञो[4] गुरुर्गौरगात्रोऽश्यामः शुक्रो, भास्करिः कृष्णदेहः ॥ १ ॥ अस्यापि प्रयोजनं वलिनः सदृशी जातकादेर्मूर्त्तिः । यद्वा लग्ने तत्कालं यो नवांशस्तत्स्वामितुल्या तन्मूर्तिरिति ।

पृ[1]च्छादिष्वपरे केतुं तमसः सं[2]प्तमं विदुः । शुक्रेन्दू योषितौ म[4]न्दबुधौ क्लीबौ परे नराः ॥ २६ ॥ वर्णाना[5] जीवसितौ रविभौमौविन्दुरिन्दुजेश्चेशाः । स[6]ङ्करजाना तु शनिर्जीवसितौरिन्दुजाश्च[3] वेदानाम् ॥ २७ ॥ ते स्थानब-लिनो मित्रस्वगृ[6]होच्चनवांशगाः । स्त्रीराशिष्विन्दुभृगुजौ पुराशिषु, पुनः परे ॥२८॥ लग्नागुत्क्रमकेन्द्रा[7]रव्यदिक्षु प्राच्यादिषूद्बलाः । जीवज्ञौ भास्क-रक्ष्माजौ शनि[3]ः सितासितद्युती ॥ २९ ॥ बलिनोऽह्नि गुरुसितार्काः, सदा बुधो, निशि तु चन्द्रकुजमन्दाः, । स्व[8]दिनादिषु च, सितासितपक्षद्वितयेषु शुभक्रूराः ॥ ३० ॥ रविचन्द्रावुदगयने वि[9]पुलक्षि[10]रघाश्च व[11]क्रगाश्चाऽन्ये । [12]बलिनो [13]युधि चोत्तरगा [14]र्यर्केन्दुयुताश्च चेष्टाभिः ॥ ३१ ॥ सौम्यैर्दृग्य-

1 अनेन जातके ग्रहगोचरे प्रतिष्ठादिलग्नेषु च केतुर्न तथोपयोगीत्यसूचि । 2 'राहु-च्छाया स्मृता केतुर्यत्र राशौ भवेदयम् । तस्मात्सप्तमके केतू राहु स्यात्रवांशके ॥ तस्मादथो सप्तमे स्यात् केतुरंशो नवांशकः' । 3 क्रियाविवेके । 4 परे रविकुजगुरव । प्रयोजन जन्मनि चिन्तायां हृतनष्टादौ वा बलवन्त स्वसर्गमेव ज्ञापयन्तीति । 5 मूर्धा-वसिक्तादिरथकारान्ता निषादकन्ययोर्दशभेदा यथा तथा जातिद्वयजाता । प्रयोजन तु जीवादीनामुदयास्तादौ तत्तज्जातीनां तत्तद्देवता च सुखदु खादि । 6 गृहस्योपलक्षणत्वा-न्मूलत्रिकोणेऽपि । मित्र ५ स्वर्क्ष १० त्रिकोणे १५ चे २० फलं दत्तेऽह्निशुद्धित । इति त्रैलोक्यप्रकाशे । 7 लग्न प्राची, दशम दक्षिणा, सप्तम पश्चिमा, तुर्यमुत्तरा । अन्तरालस्थितत्र्यया१२ऽऽया११ऽऽदि गृहद्वयद्वयरूपमाग्नेयादिविदिक्चतुष्क तु क्रमात् पूर्वादिचतुर्दिक्समफलमेव विदिशा दिगनुगामित्वात् । 8 स्वदिनस्ववर्षस्वमासस्वकालहोरासु तत्तदधिपग्रहा बलिनस्ते चैवम्—'यस्य वारस्य मध्ये स्याच्छुक्लप्रतिपदो मुखम् । तन्मासेश स विज्ञेयश्चैत्रे वर्षाधिप पुन ' ॥ 'चैत्रादिमेषसङ्क्रान्तिकर्कसङ्क्रान्तिवासरा । प्रतिवर्षे क्रमा ज्ज्ञेया राजानो मन्त्रिसस्यपा ' इति व्यवहारसारे । दिनेशसस्तद्दिनवार एव । 'वर्षमासदु-होरेशैर्वृद्धि पञ्चोत्तरा फले' इति मुहूर्तसारे । 9 नतु बाला वृद्धा अस्तमिता वा । 'बाल्ये वार्द्धके च सर्वे ग्रहा सपाद निर्बला ' इति सप्तर्षय प्राहु । 10 अर्काद्दूरतरस्थत्वेन दृ लक्ष्यमाणा । 11 वक्रगत्वे किल सर्वग्रहाणा मूलत्रिकोणतुल्य बलमिति पाकश्रियाम् । 12 रवीन्द्वोर्वक्रगत्वभावात्पद्यार्थे । भौमादिग्रहाणा गतयश्चैवम्—'सूर्यमुक्ता उदीयन्ते शीघ्रा अर्के द्वितीयगे । सम तृतीयगे यान्ति मन्दा भानौ चतुर्थगे ॥ १ ॥ वक्रा पञ्चमषष्ठेऽर्के तेऽतिवक्रा नगाष्टगे । नवमे दशमे मार्गा सरला स्वभरिष्पगे' ॥ २ ॥ अत्र पञ्चमषष्ठेऽर्के इति शनिकुजगुरूनपेक्ष्योक्तम्, बुधशुक्रौ त्वर्कस्यासन्नस्थावेव वक्री स्याताम् । एव मार्गेऽपि वाच्यमिति प्रश्नशतकवृत्तौ । 13 जयित्वात् । 'सर्वे बलिन उदक्स्था दक्षिणदिक्स्थो बली शुक्र ' इति तु वराहसंहितायाम् । 14 ये एकस्मिन्नक्षत्रपादे मिथस्ताराग्रहाणां योगो

लिनो दृष्टा, बले नैसर्गिके[1] पुनः । मन्दारज्ञेज्यशुक्रेन्दुभास्कराः स्युर्बलो[2]त्तराः ॥ ३२ ॥ पश्यन्ति पादतो वृद्ध्या भ्रातृव्योम्नी, त्रिकोणके,५–९ । चतुरस्रे,४–८ स्त्रियम्, स्त्रीवन्मतेना[3]र्यादिमावपि ॥ ३३ ॥ पश्येत्[4]पूर्णं शनिर्भ्रातृव्योम्नी, धर्मधियौ गुरुः । चतुरस्रे४–८ कुजोऽर्केन्दुबुधशुक्रास्तु सप्तमम् ॥३४॥ रवेः शुक्रशनी शत्रू, ज्ञः समः, सुहृदः परे । चन्द्रस्यार्कबुधौ मित्रे, कुजगुर्वादयः समाः ॥ ३५ ॥ कुजस्य ज्ञो रिपुर्मध्यौ शनिशुक्रौ परेऽन्यथा । बुधस्य मित्रे शुक्रार्कौ शत्रुरिन्दुः समाः परे ॥ ३६ ॥ जीवस्यार्कास्त्रयो मित्राण्यार्किर्मध्यः परावरी । कवेरमित्रौ मित्रेन्दू मित्रे ज्ञार्कौ समावुभौ ॥ ३७ ॥ मन्दस्य ज्ञसितौ मित्रे गुरुर्मध्यः परेऽरयः ।

ग्रहाणां	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शत्रवः	शुक–शनि	०	बुध	चन्द्र	बु–शु	र–चं	र–चं–मं
मित्राणि	चं–मं–गु	र–बु	र–चं–गु	र–शु	र–चं–मं	बु–श	बु–शु
मध्यस्थाः	बु	मं गु-शु-श	शु–श	मं–गु–श	श	मं–गु	गु

तत्काल[5]सुहृदो द्वित्रिसुखलाभान्त्यकर्मगाः ॥ ३८ ॥ मित्रमध्यारयो येऽत्र निसर्गेणोदिताः क्रमात् । अधि[6]मित्रसुहृन्मध्यास्ते स्युस्तत्कालमैत्र्यतः

युद्धमुच्यते । 15 अर्कवियुताः सन्त इन्दुना एकराशिस्थाः । 16 उपलक्षणत्वान्मित्रैश्च पादार्धपादोनपूर्णाभिर्दृग्भिर्दृष्टाः क्रमात्तावत्तावद्विंशोपान् बलिनः ।

1 यदा ग्रहयोर्ग्रहाणां वाऽन्यबलसाम्यं स्यात्तदा स्वाभाविकबलेनैव सबलाबलत्वं विभाव्यते । राहुस्त्वर्कादपि बलिष्ठः । 2 पञ्चभिः पञ्चभिर्विंशोपकैः । 3 केषांचिन्मतेन । 4 शनेः पाददृक्, गुरोरर्द्धदृक्, कुजस्य पादोनदृगस्तीत्यागतमनेन ग्रन्थेन । ज्योतिषसारे तु सर्वग्रहाणां द्विर्द्वादशयोर्न दृक्, षडष्टमयोः पाददृक्, त्र्येकादशयोरर्धदृक्, नवपञ्चमयोः पादोनदृक्, केन्द्रेषु तु चतुर्षु पूर्णा दृगित्युक्तम् । ताजिके तु द्विर्द्वादशषडष्टमेषु मूलतोऽपि नेष्टा । 5 तत्कालेत्यादि जन्मनि पृच्छादिलग्ने वा यत्र स्थाने कश्चिदेको ग्रहोऽस्ति तस्माद्द्वितीयादिस्थाने योऽन्यो ग्रहः स्यात्स तत्काले द्वित्र्यादिस्थानस्थितिकालावधीत्यर्थः तस्य मैत्री स्यात् । इयं तात्कालिकी मैत्रीत्युच्यते ॥ 6 अधिकं मित्रमधिमित्रं, अर्थादेव च मित्रस्थानेभ्योऽन्यानि प्रथमपञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमनवमस्थानानि तत्कालवैरस्थानानि । तत्फलं चैवं—"येऽत्रारिमध्यमित्राणि निसर्गेणोदिताः क्रमात् । अधिशत्रुद्विषन्मध्यास्ते स्युस्तत्कालवैरतः" ॥ १ ॥ भुवनदीपके तु ग्रहाणां मित्रशत्रुस्वरूपं पक्षद्वयमेवोक्तं, तथाहि—"रवीन्दुसौमगुरवो ज्ञशुक्रशनिराहवः । स्वस्मिन् मित्राणि चत्वारि परस्मिन् शत्रवः

॥ ३९ ॥ स्याद्गोचरेणात्र शुभोऽपि विद्धः, खेटोऽन्यखेटैरशुभः क्रमेण ।
दुष्टोऽपि चेष्टश्च स वामवेधान्मिथो न वेधः पितृपुत्रयोस्तु ॥ ४० ॥
३ वेधस्त्रिपड्गगनलाभगतस्य भानोः, खेटैः क्रमेण नवमान्त्यसुखात्मजै-
स्थैः । इन्दोस्तनौ त्रिरिपुमन्मथखायगस्य धीधर्मरिष्फधननन्धुमृतौ स्थितैश्च
॥ ४१ ॥ स्यान्मङ्गलस्य सहजद्विपदायगस्य सौरेस्तथा व्ययतपःसुखगैश्च
६ वेधः । चान्द्रेः स्वबन्धुरिपुमृत्युखलाभगस्य पुत्रत्रिधर्मतनुनिर्व्ययनाऽन्त्य-
गैश्च ॥४२॥ वाचस्पतेः स्वतनयास्तनवायगस्य वेधस्तथान्त्यसुखविक्रमरसाष्ट-
८ गैश्च । शुक्रस्य पट्खमदनान्यजुषो १-२-३-४-५-८-९-११-१२ ऽष्टसप्ता-

स्मृता " ॥ १ ॥ राहुरव्यो परं वैर गुरुभार्गवयोरपि । हिमांशुबुधयोर्वैरं विवस्वन्मन्द-योरपि ॥ २ ॥ अनिमैत्री राहुशन्योरिन्दुगुर्वो कुजार्कयो । शितज्ञयो " इति एवं च ग्रहाणां मित्रात्मगृहाण्युच्चानि विशेषाद्दर्पदीप्तिस्थानानि, यथा रवेर्मेष सुहृद्गृहमुच्च च, बुधस्य कन्यागृहमुच्च चेत्यादि। अरिगृहाणि तूच्चान्यपि प्रभादायीनि स्यु पर नान्त सुख-दानि, यथा शुक्रस्य मीन । नीचान्यपि च सुहृद्गृहाणि किंचित्प्रभादायीनि यथेन्दो-र्वृश्चिक । रिपुगृहाणि तु नीचानि नानाऽनर्थान् प्रभाहानिं च कुर्युरिति भुवनदीपकवृत्तौ ॥

1 गोचरेण शुभोऽपि ग्रहो वक्ष्यमाणक्रमेणान्यग्रहैर्विद्ध सन्नशुभ स्यात् । दुष्टोऽपीत्यादि अपिचेत्यखण्डमव्ययसमुदाय क्रमेणेत्येतदत्रापि योज्य गोचरेण दुष्टोऽपि च ग्रह क्रमेण वामवेधादिष्ट स्यात् । इह किल तृतीयादिस्थानस्थस्य रवेर्नवमादिस्थानस्थ ग्रहैर्यो वक्ष्यते स वेध । यस्तु नवमादिस्थानस्थार्कस्य तृतीयादिस्थानस्थग्रहै स्यात् स वामवेध । कोऽर्थ ? तृतीयादिस्थानस्थोऽर्क शुभ चेन्नवमादिस्थानस्थैरन्यग्रहैर्न विध्येत । नवमादिस्थानस्थश्चाशुभोऽप्यर्क शुभो यदि तृतीयादिस्थानस्थै परैर्विध्येत । एवमन्येऽपि भाव्या । उक्त च यतिवल्लभे—"एभिर्वेधैर्विद्धा विफला स्युर्गोचरे ग्रहा सर्वे । विपरीतवेधविद्धा पापा अपि सौम्यतां यान्ति" ॥ १ ॥ "यत्रस्थेन ग्रहेणेष्टग्रहो विध्यते तत्रस्थस्यैव खस्य फल शुभमशुभ वा स ददातीति तत्त्वम्" इति रत्नभाष्ये । ये तु गोचर-फलमेव प्रमाणयन्तो वेधविधौ माध्यस्थ्यमाद्रियन्ते तन्मत न बहुसमतम् । यदाह सारङ्ग —"यत्र गोचरफलप्रमाणता, तत्र वेधफलमिष्यते न वा । प्रायशो न बहुसमत लिद, स्थूलमार्गफलदो हि गोचर " ॥ १ ॥ यतिवल्लभेऽप्युक्तम्—"अज्ञात्वा वेधविधिं ग्रहगोचरपाकजातगुणदोषम् । ये निर्दिशन्ति मूढास्तेषां विफला सदादेशा " ॥ १ ॥ वेधौ च वामोऽवामश्च जन्मराशित एव गण्यौ । मिथो न वेध इति रविशनी चन्द्रबुधौ च पितापुत्रौ । अत्र पितृपुत्रयोरिति पाठश्चिन्त्य , श्रुत आत्मवचनात्, तेन "मिथो न पित्राङ्गजयोस्तु वेध " इति पाठोऽस्तु ॥ 2 निर्व्ययन छिद्रमष्टममित्यर्थ । 3 षट्खेत्यादि षष्ठदशमसप्तमवर्जनवस्थानजुष ।

द्या[1]कां[10]श[9]धर्म[5]तनया[11]य[3]तृतीय[6]षष्ठैः ॥ ४३ ॥

ग्रहाणां वेधस्थापनायन्त्रम्

गुरोः		शुक्रस्य		रवेः		चन्द्रस्य		भौमशन्योः		बुधस्य	
२	१२	१	८	३	९	१	५	३	१२	२	५
५	४	२	७	६	१२	३	९	६	९	४	३
७	३	३	१	१०	४	६	१२	११	४	६	९
९	१०	४	१०	११	५	७	२			८	१
११	८	५	९			१०	४			१०	८
		८	५			११	८			११	१२
		९	११								
		११	३								
		१२	६								

॥ इत्युक्तं सप्रसङ्गं राशिद्वारम् ॥

श्रेयान् गोचर[1]तोऽशुभानुपचये३-६-१०-११ चन्द्रस्तु साद्यद्युने३-६-१०-११-१-७, वक्रार्कौ त्रि[3]षड[6]आय[11]गावथ बुधस्त्वन्त्यान्ययुग्लाभगः२-४-६-३-८-१०-११ । जीवः स्त्री[7]धन[2]धर्म[9]लाभ[11]सुत[5]गः शुक्रो[2]ऽरिखास्तान्यगो१-२-३-४-५-८-९-११-१२, जन्मेन्दो[3]र्ग्रहणे[4] तमोऽप्युपचये३-६-१०-११-ऽन्येषां[5] त्वनाद्येन्दुवत्[6]३-६-७-१०-११ ॥ ४४ ॥ ६

---

1 लक्षणया गवां चरणभूमिरिव ग्रहाणामपि चरणभूमिर्गोचरः । 2 पूर्णभद्रेण लष्टममपि वर्जितम् । 3 जन्मेन्दोरारभ्य सर्वग्रहाणां गोचरो गण्यते । 4 अर्केन्द्वोर्ग्रहणदिनादन्यत्र राहुगोचरो न गण्यते । नक्षत्रगोचरमाश्रित्यान्यदापि गण्यते इति ज्योतिषसारे । 5 मते । 6 राहुः । विशेषस्तु जन्मलग्नादप्येषु स्थानेष्वेवैते शुभा इति रत्नभाष्ये । 'गहणे तमरासीओ नियरासी तिचउअट्ठिगार सुहा । पणनवदहन्त मज्झिम, छसत्तइगदुन्नि अइअहमा' ॥ इति ज्योतिषसारे ॥ 'यादृशेन शशांकेन संक्रान्तिर्जायते रवेः । तन्मासि तादृशं प्राहुः शुभाशुभफलं नृणाम्' ॥ एतेनार्को द्वादशाष्टमाद्यशुभस्थानस्थोऽपि गोचरेण तारावलेन शुभावस्थादिना च शुभे चन्द्रवले सति जातसङ्क्रमः शुभ एवेति रत्नभाष्ये । 'यादृशेन ग्रहेणेन्दोर्युतिः स्यात्तादृशो हि सः ॥ अशुभोऽपि शुभश्चन्द्रः सौम्यमित्रगृहांशके । स्थितोऽथवाऽधिमित्रेण वलिष्ठेन विलोकितः' ॥ इति दैवज्ञवल्लभे ॥ सर्वग्रहसाधारणं तु दैवज्ञवल्लभे–'असत्फलोऽपि यः सौम्यैर्दृष्टो यः सत्फलोऽपि वा । क्रूरेण दृष्टोऽरिणा वा स न किंचित्फलप्रदः' ॥ १ ॥ 'नीचेऽस्तेऽरिगृहे वापि निष्फलो ग्रहगोचरः' इति लल्लः । विशेषस्तु वार्तिकेऽवलोक्यः ।

जन्मादिद्वादशगृहगतगोचरफलयन्त्र वराहसंहितानुसारेण

ग्रहा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
रवि	स्थान भ्रंश	भय	श्री	परि भव	दैन्य	अरि हति	पथ	अगा र्त्ति	क्षान्ति क्षय	सिद्धि	धन	व्यय
चन्द्र	तुष्टि	आधि	धन	आजि	अर्थ भ्रंश	श्री	सार्थ युव ति	मृति	भीति	सुख	जय	मरुग्- धन- क्षय
मंगल	रुग्	धन नाश	धन	अरि- भी	अर्थ क्षय	धन	शुग्	अस्त्र घात	आर्त्ति	शुग्	लाभ	विविध दुःख
बुध	बन्ध	अर्थ	वध	अर्थ	हति	स्थान	वपु- र्बाधा	धन	महा- पीडा	सौख्य	अर्थ	वित्त नाश
गुरु	रोग	अर्थ	क्लेश	व्यय	सुख	भी	नृप- मान	धना- गम	श्रीद	अप्रीति	लाभ	हृदुःख
शुक्र	अरि नाश	अर्थ	सुख	श्री	सुत	अरि वृद्धि	शुग्	अर्थ	वस्त्र	असुख	आय	लाभ
शनि	अस्थान	धन गमन	अर्थ	अरि वृद्धि	सुत नाश	लाभ	दुःख भर	पीडा	अर्थ गम	आर्त्ति	धी	दुःख

चेन्द्रो जन्मत्रिषट्सप्तदशैकादशगः शुभः । द्विपञ्चनवमोऽप्येवं
शुक्लपक्षे [2]बली यदि ॥ ४५ ॥ हीनं[3]मध्योच्चबलता तिथिवत्तुहिनद्युतेः ।
[1] बलहानावि[4]दं त्वस्य [5]ग्राह्यं ताराबलं बुधैः ॥ ४६ ॥ जैनि[6]भान्नव-

1 'चन्द्रे च शुभे सति शेषग्रहाः शुभफलदा एव प्रायो न त्वशुभफलदा' इति व्यवहारप्रकाशे । हर्षप्रकाशे 'चन्द्रस्यैव बलाबलमासज्ज गहा कुणति सुहमसुह' । विशेषस्तु 'यात्रायुद्धविवाहेषु जन्मेन्दौ रोगसंभवे । क्रमेण तस्करा भङ्गो वैधव्यं मरणं भवेत्' । इति नारचन्द्रटिप्पण्याम् । 2 द्व्यादिगगुरुरिव शुभद इति रत्नभाष्ये । 3 सौम्यग्रहैर्दृष्टस्त्विन्दुः सदापि बलवानित्यपि जातके । अन्ये तु कृष्णाष्टम्यर्धादनु शुक्लाष्टम्यर्धं यावच्चन्द्रं क्षीणं शेषं पक्षं पुष्टमित्याहुः । 'उदिते च तथा चन्द्रे शुभयोगे शुभे तिथौ । कृष्णस्य दशमीं यावत् सर्वकार्याणि साधयेदि'ति नक्षत्रसमुच्चयग्रन्थे ॥ शुक्लद्वितीयायां दिवा उदितोऽपीन्दुर्न ग्राह्यः ॥ 'उदेति चायं प्रतिपत्समाप्तौ कृशोऽपि वार्विष्णुतया प्रशस्तः । द्वीपान्तरस्थो विफलस्तु तावद्यावन्न पृथ्वीनयनाध्वनीनः' इति विवाहवृन्दावने । 4 वक्ष्यमाणम् । 'कृष्णस्याष्टम्यर्धादनन्तरं तारकाबलं योज्यम् । प्रतिपत्प्रान्तोत्पन्नं सन्ध्याकालोदयं यावदि'ति व्यवहारप्रकाशे ॥ 'ताराबले शशिबलं शशिबलसंयुतसक्रमाद्बलं भानोः । सूर्यबले सति सर्वेऽप्यशुभा अपि खेचराः शुभदाः' इति ल्लः । 5 चन्द्राद्बलवती तारा कृष्णपक्षे [illegible] मर्त्तरि । विकले प्रोषिते च स्त्री कार्यं कर्तुं यतोऽर्हति ॥ १ ॥ 6 तदपरिज्ञाने नामभात् ।

केषु त्रिषु जन्मकर्माधानसंज्ञिताः प्रथमाः । ताभ्यस्त्रि३-१२-२१ पंच ५-१४-२३ सप्तम७-१६-२५ ताराः स्युर्न हि शुभाः क्वचन ॥ ४७ ॥

जन्म १	संपत् २	विपत् ३	क्षेमा ४	यमा ५	साधना ६	निधना ७	मैत्री ८	परममैत्री९
कर्म १०	संपत्११	विपत्१२	क्षेमा१३	यमा१४	साध० १५	निध०१६	मै०१७	परम० १८
आधान१९	संपत्२०	विपत्२१	क्षेमा२२	यमा२३	साध० २४	निध०२५	मै०२६	परम० २७

जन्माधानान्विताास्तिस्रस्तास्त्यजेत्क्षौरयात्रयोः । शुक्लेऽप्यासूत्थिते रोगे[3] दीर्घक्लेशोऽथवा मृतिः ॥ ४८ ॥ चन्द्रावस्था प्रोषितंहृतंमृतंजयंहासं हर्षरतिनिद्राः । मुक्तिजराभयसुखिता राश्यंशा द्वादश यथार्थाः ॥ ४९ ॥

[6] मन्दर्क्षतः प्रथमं वेदं षडङ्घ्रिबाणत्रिद्व्येकचन्द्रमितभेषु यथाक्रमेण । पीडा[६]

---

1 प्रत्यरा इति पर्याया ॥ 'ऋक्षं न्यूनं तिथिर्न्यूना क्षपानाथोऽपि चाष्टमः । तत्सर्वं शमयेत्तारा षट्चतुर्थनवस्थिता,' इति लल्लः ॥ आद्या द्वितीया अष्टम्यश्च मध्यमाः । 2 यात्रायुद्धविवाहेषु जन्मतारा न शोभना । शुभाऽन्यशुभकार्येषु प्रवेशे च विशेषतः ॥ १ ॥ जन्मर्क्षवदाधानं कर्मसु शस्तेषु शस्तमेव स्यात् । यच्च न जन्मनि कार्यं विवर्जनीयं तदाधाने ॥ २ ॥ इति लल्लः । 3 यद्यपि स्याद्बली चन्द्रस्तारा तथाप्यनिष्टदा । जन्माधाने तृतीया च पंचमी सप्तमी तथा ॥ १ ॥ शेषासु तु तारासु व्याधिः साध्यो नृणां भवति जातः । व्याधिवदवबोद्धव्याः सर्वारंभाश्च तारासु ॥ २ ॥ इति लल्लः । 4 ग्रहान्तर-प्रातिकूल्याभावे । 5 यदा यावद्घटीमानश्चन्द्रस्येष्टराशिभोगः स्यात्तदा तावान् टिप्पनकं विलोक्य निर्णयः । यथा सामान्येन पञ्चत्रिंशदधिकशत १३५ मितस्येन्दो राशिभोगस्य द्वादशभिर्भागे एकादश घट्यः पञ्चदश पलानि च स्युः । इष्टसमये च पञ्चत्रिंशदधिकशतमध्ये यावत्यो घट्यो भुक्ताः स्युस्तासां सपादैरेकादशभिर्भागे यल्लब्धं ता भुक्ताः, शेषाङ्केन भुज्यमानद्वादशांशा ज्ञेयाः । अत्र च सामान्योक्तेऽप्ययं भावः–राशौ राशौ द्वादशांशरीत्या इन्दुर्द्वादशावस्था भुङ्क्ते । उक्तं च यतिवल्लभे—"राशौ राशौ द्वादशामूर्भुङ्क्तेऽवस्थाश्च चन्द्रमाः । द्वादशांशक्रमात्सांहिक्ष्यहेनाख्यासदृक्फलाः" ॥ १ ॥ ततोऽयमर्थः–मेषे स्थितस्येन्दोः प्रोषितात आरभ्य द्वादशावस्था गण्याः । वृषस्थस्य तु हृतातः, मिथुनस्थस्य मृतात इत्यादि यावन्मीनस्थस्य सुखितात इति लोकव्यवहारोक्तं रत्नमालाभाष्ये । यथार्था इति स्वस्वसंज्ञासदृक्फलदा इति भावः । तेन प्रोषित १ हृत २ मृत ३ निद्रा ४ जरा ५ भया ६ ख्याः षडवस्थास्त्याज्या इति नारचन्द्रटिप्पण्याम् । अत एव दिनशुद्धावप्युक्तम्—"पइरासि बारसंसा असुहाओ चए जओ सुहो वि ससी । एआहिं होइ असुहो सुहाहिं असुहो वि होइ सुहो" ॥ १ ॥ 6 शन्याक्रान्तभात्स्वजन्मभं यावद्गण्यम् । अभिभूतिः पराभवः ।

१ विभूतिपथंबन्धंनैधर्मंलाभंपूजांऽभिमूर्त्यपमृतीः फलमूचुरुच्चैः ॥ ५० ॥

शनिनर

मुखे	१	पीडा
दक्षिणकरे	४	लक्ष्मी
पादद्वये	६	पथा
वामकरे	४	बधन
उदरे	५	धर्म
मस्तके	३	लाभ
नेत्रद्वये	२	पूजा
गुदे	२	मृत्यु

अत्र चानुक्तोऽपि शनिर्नराकारोऽभ्यूह्य । यदुक्त यतिवल्लभे

"यस्मिन् शनिश्चरति चक्रगत तदृक्ष,
चत्वारि दक्षिणकरेऽह्रियुगे च षट्कम् ।
चत्वारि वामकरगाण्युदरे च पञ्च,
मूर्ध्नि त्रय नयनयोर्द्वितय गुदे च" ॥ १ ॥

नवरमत्र द्वितयमिति यदा नराकार पट्टिकादौ क्वचिदालिख्यते तदा गुदगुह्ययोरैक्यमेव दृश्यत इति कृत्वा गुद एव द्वय विवक्षितम्, सूत्रकृता तु तयो र्यैक्यविवक्षया स्थानद्वयेऽप्येकैक नक्षत्रमूचे ।

चन्द्रपुरुष १

नेत्रयो	३	सुख
दक्षिणकरे	३	लाभ
वामकरे	३	लाभ
मुखे	१	अतिपीडा
हृदये	७	सुख
गुह्ये	४	मरण
पादयो	५	भ्रमण

'रुद्रयामले तु नवग्रहाणामपि नराकारस्थापना नक्षत्रगोचरफलान्यूचिरे' तत्र रविनरं सूत्रकृदेव जातकाधिकारे वक्ष्यति, शेषग्रहनरास्त्वेवम् ।

दृग्३ बाहुयुग्म६वक्त्रेषु३ भाना प्रत्येकतस्त्रिकम्१२ ।
हृदि सप्त१९ तथा गुह्ये चतुष्क२३ पञ्चक पदो २८ ॥१॥
वक्त्रे पीडा भृश चक्षुर्हृदयेषु शुभ सुखम् ।
बाह्वोर्लाभ मृति गुह्ये भ्रम दत्ते पदो शशी ॥ २ ॥

भौमपुरुष २

मुखे	३	रोग
नेत्रयो	३	लाभ
मस्तके	-	यश
वामकरे	२	रोग
दक्षिणकरे	२	शोक
कंठे	२	हिक्कादि
हृदये	५	लाभ
गुह्ये	३	परस्त्रीरत
पादयो	४	भ्रमण

त्रय त्रय त्रिषुमुखदृक्छिरस्सु३-९,
द्वयानि वामे२ तरबाहु२ कंठे २-१५
पञ्चोरसि स्यु२० स्त्रितय च गुह्ये२३,-
चत्वारि चाह्र्यो २७ कुजचक्रमेतत् ॥ १ ॥
कीर्ति शिरसि हृन्नेत्रे लाभ चरणयोर्भ्रमम् ।
गुह्येऽन्यस्त्रीरतिं दत्ते कुज शेषेषु चाशुभम् ॥ २ ॥

बुधपुरुषः ३

मुखे	५	ज्ञानं
नेत्रे	५	राज्यं
कंठे	५	सुखरता
हृदये	५	ज्ञानं
पादयोः	५	क्षयः
वामकरे	१	ज्ञानं
दक्षिणकरे	१	ज्ञानं
गुह्ये	१	क्षयः

वक्त्र५ नेत्र५ गलो५ रस्सु५ पादयोः५ पञ्च पञ्च च२५।
बाहु१ युग्मे१ तथा गुह्ये१ त्रीण्यमूनि भवन्ति च२८ ॥
वक्त्रहृद्बाहुषु ज्ञप्तिं गुह्यपादेषु संक्षयम् ।
गले सुखरतां दत्ते नेत्रे राज्यं बुधो ग्रहः ॥ २ ॥

गुरुपुरुषः ४

मस्तके	४	राज्यं
दक्षिणकरे	४	लक्ष्मीः
कंठे	१	धनं
हृदये	५	प्रीतिः
पादद्वये	६	असुखं
वामकरे	४	मृत्युः
नेत्रयोः	३	लाभः

शीर्षे चत्वारि राज्यं युगपरिगणिता सव्यहस्ते च लक्ष्मी-
रेकं कंठे विभूतिं मदनशरमिते वक्षसि प्रीतिलाभम् ।
षड्भिः पीडांह्वियुग्मे जलधिपरिमिते वामहस्ते च मृत्यु-
र्दृग्युग्मे त्रीणि कुर्युर्नृपतिसमसुखं वाक्पतेश्चक्रमेतत् ॥

शुक्रपुरुषः ५

मस्तके	४	सौम्यता
मुखे	२	मरणं
हृदये	४	सौम्यता
हस्तद्वये	१०	पूजा
गुह्ये	३	दुःखं
जानुद्वये	२	दुःखं
पादद्वये	२	दुःखं

युगं शीर्षे द्वयं वक्त्रे चतुष्कं हृदयेऽपि च ।
दश बाह्वोस्त्रयं गुह्ये जान्वंह्रिषु द्वयं द्वयम् ॥ १ ॥
जानुमुष्ककपादेषु दुःखं बाह्वोर्नृपार्हणाम् ।
हृच्छीर्षे सौम्यतां वक्त्रे मरणं कुरुते सितः ॥ २ ॥

राहुपुरुषः ६

मुखे	३	जयः
दक्षिणकरे	४	लक्ष्मीः
पादयोः	६	भ्रमणं
वामकरे	४	क्लेशः
हृदये	३	लाभः
कंठे	१	क्लेशः
मस्तके	३	राज्यं
नेत्रयोः	२	सौभाग्यं
गुह्ये	२	मरणं

वक्त्रे त्रीणि जयाय दक्षिणकरे चत्वारि लक्ष्म्यै पदोः,
षड् भ्रान्त्यै न सुखाय वामककरे चत्वारि हृत्स्थं त्रयम् ।
लब्ध्यै कंठगमेकमामयकरं शीर्षे त्रयं राज्यदं,
सौभाग्यं युगलेऽक्षिगे मृतिरथो गुह्यद्वये राहुभात् ॥ १ ॥
'तमरिक्खंमुहि १ तिफुल्लिअ ४ चउफलिअ ८ तिअहल ११ तिझडिय १४ गुदिक्कं १५ । तिअरायस १८ तिअ तामस २१ चउसुह २५ तिअ असुहं २८ तमचक्कं ॥१॥ फुल्लिअफलिए लाहं अपाणिलच्छी सुहं च मुहरिरके । मुह अहलझडियरायस तामस असुहेअ असुहतमं' ॥२॥ इति ज्योतिषसारे। अत्रापि राह्वाक्रान्तभात्स्वभं यावद्गण्यम् ।

केतुपुरुष ७

गुदे	२	भय
मस्तके	५	जय
फणे	५	महाभय
हस्तद्वये	४	जय
पादद्वये	५	सुख
हृदये	२	शोक
कंठे	४	पीडा

वक्त्रे द्वे भयदे जयाय शिरसि स्यात् पंचक पंचक,
भीत्यै तत्फणग जयाय करयोर्युग्मे चतुष्क स्थितम् ।
अङ्घ्यो पंच सुखाय हृत्स्ययुगल शोकाय कंठे व्यथा
भीत्यै स्याच्च चतुष्टय फलमिदं केतौ तदाक्रान्तभात् ॥

गोचरेण ग्रहाणां चेदानुकूल्य न दृश्यते । जन्मलग्नग्रहेभ्योऽष्टवर्गेणालोकयेत्तदा ॥ ५१ ॥ अर्कः स्वमन्दभौमेभ्यो नवव्यायाष्टकेन्द्रगः९-२-११-
३ ८-१-४-७-१० । त्रिकोणायैरिगोजीवाच्छुक्रादन्त्यैरिकामगैः ॥ ५२ ॥ चन्द्रादुपचयस्थो ३-६-१०-११ ज्ञाद्धीधर्मोपचयान्त्यगः ५-९-३-६-१०-११-१२ । पातालोपचयान्त्येषु ४-३-६-१०-११-१२ लग्नाच्च तरणिः
६ शुभः ॥ ५३ ॥ ≫ ॥ इति रव्यष्टकवर्ग ॥ १ ≪ चन्द्रश्चोपचये ३-६-१०-११ लग्ना—द्भानोः साष्टस्मरे स्थितः ३-६-१०११-८-७ । स्वात्सादिसप्तमे ३-६-१०-११-१-७च्चारात्सद्रव्यनवमात्मजे ३-६-१०-११-२-
९ ९-५ ॥ ५४ ॥ छिद्रत्रिलाभात्मजकेन्द्रगो ८-३-११-५-१-४-७-१० बुधाद्गुरोस्तु रिप्याष्टमलाभकेन्द्रगः१२-८-११-१-४-५-१० । शुक्रात्त्रिपञ्चास्तनवायखाबुगः३-५-७-९-११-१०-४, शुभ· शनेः षट्त्रिसुता-
१२ यग·६—३—५—११ शशी ॥ ५५ ॥ → ॥ इति चन्द्राष्टकवर्ग ॥ २ ← कुज इन्दोरुपचयभे३—६—१०—११ साद्ये३-६-१०-११-१लग्नात्सपञ्चमे ३—६—१०—११—५ सूर्यात् । व्यायाष्टकेन्द्रग २-११-८-१-
१६ ४-७-१०स्वात्सौम्यात्त्रिसुतारिलाभस्थः३—५—६—११ ॥ ५६ ॥ जीवात्खान्त्यायारिपु१०—१२—११—६ शुक्राच्छिद्रान्त्यलाभशत्रुगतः ८—

---

1 सामान्योक्तेऽपि रवीन्दुजीवानामानुकूल्याभावे इति ज्ञेयम् । यदुक्त नारचन्द्रे 'रविशशिजीवे सबले शुभद स्याद्गोचरोऽथ तदभावे । ग्राह्याष्टवर्गशुद्धिर्जननविलग्नग्रहेभ्यस्तु ॥ १ ॥ 2 जन्मनि यल्लग्न ये च ग्रहास्तेभ्य । 3 अष्टवर्गेणेति, अयमर्थ –ग्रहस्य राशौ सचरत पड्भ्योऽपरग्रहस्थानेभ्य स्वस्थानाल्लग्नाच्च विचारणयाऽष्टकवर्ग उच्यते ।

१२–११–६ । मन्दाल्लाभनवाष्टमकेन्द्रस्थः ११-९-८-१-४-७-१० शोभनो भौमः ॥ ५७ ॥ ॥ इति भौमाष्टवर्गः ॥ ३ बुधोऽर्कतोऽन्त्यायनवारिधीषु १२–११–९–६–५, स्थितः स्वतः सत्रिदशादिमेषु १२-११-९-६-५-३-१०-१ । द्विषड्दशायाष्टसुखेषु २-६-१०-११-८-४ चन्द्रा–ल्लग्नात्तु तेष्वाद्ययुतेषु २-६-१०-११-८-४-१ शस्तः ॥ ५८ ॥ कुजशनितो व्यन्त्यारिषु १-२-३–४–५—७–८–९–१०–११ जीवादरिनिधनलाभरिष्यस्थः ६–८–११–१२ । शुक्रादापुत्राष्टमनवमायस्थो १-२-३-४-५-८-९-११ बुधः शुभदः ॥ ५९ ॥ ॥ इति बुधाष्टवर्गः ॥ ४ गुरुः केन्द्रस्वरन्ध्राये १–४–७–१०–२–८–११ ष्वारात्स्वात्सत्रिपूत्तमः १–४–७–१०–२–८–११–३ । अर्कात्सत्रिनवस्वि १-४-७-१०-२-८-११-३-९ न्दोः स्वधीकामनवायगः २-५-७-९-११ ॥ ६० ॥ स्वादिखायसुखधीतपोऽरिषु २–१–१०–११–४–५–९–६, ज्ञाद्गुरुः स्वरयुतेषु २-१-१०-११-४-५-९-६-७ लग्नतः । स्वत्रिकोणरिपुखायगः २-९-५-६-१०-११ सितात्, त्र्यन्त्यधीरिपुषु ३–१२–५–६ मन्दतः शुभः ॥६१॥ ॥ इति गुर्वष्टवर्गः ॥ ५ शुक्रो लग्नादासुतधर्मायाष्टसु १-२-३-४-५-९-११-८मतः स्वतः साभ्रः १-२-३-४-५-९-११-८-१० । शशिनः सान्त्यः १-२-३-४-५-९-११-८-१२ शनितः खायतपस्त्रिसुखधीमृतिषु १०–११–९–३–४–५–८ ॥ ६२ ॥ आयव्ययाष्टगोऽर्का ११-१२-८ द्बुधात्त्रिकोणायषट्त्रिगः ९–५–११–६–३ शुभदः । ध्यापोक्लिमाप्तिषु ५–३–६–९–१२–११ कुजाद्गुरोस्त्रिकोणाष्टखायगः ९–५–८–१०–११ शुक्रः ॥ ६३ ॥ ॥ इति शुक्राष्टवर्गः ॥ ६ शनिः स्वात्र्यायपुत्रारि ३–११–५–६ ष्वारात्सव्ययकर्मसु ३–११–५–६–१२–१० । केन्द्राष्टायार्थगः १–४–७–१०–८–११–२ सूर्याच्चन्द्रात् षट्त्र्यायगो ६–३–११ मतः ॥ ६४ ॥ आद्याम्बूपचये लग्नात् १–४–३–६–१०–११ कवेरायव्ययारिषु ११–१२–६ । गुरोः सधीषु ११–१२–६–५साभ्राष्ट–धर्मेषु ११–१२–६–१०–८–९ ज्ञाच्छनिर्मतः ॥ ६५ ॥

१०७ ॥ इति शल्यष्टवर्ग ॥ ७ ८८ 卐 卐 卐 सर्वत्रेन्दुः कुजः संस्ये बोधे

卐 卐 卐 एषा चतुर्दशवृत्तानां ५२–६५ पिंडार्थोऽयम्—आयत्तेऽर्क इति यदा यात्रादिकार्यचिकीर्षाऽस्ति तस्मिन् काले य स तात्कालिकोऽर्क । सूमन्देत्यादि सशब्देोह जन्मकालिकोऽर्को ग्राह्य । एव मन्दभौमादयोऽपि जन्मकालिका एव ततस्तात्कालिकार्काद्या जन्मसत्कार्कमन्दादिभ्यश्चेनवद्मादीनामन्यतरस्थाने स्युस्तदा शुभा । ते सर्वेऽपि रेखा ददतीति परिभाषा । ततश्च यावन्तो लग्नग्रहेभ्य उक्तान्यतरस्थाने तात्कालिका अर्काद्या प्राप्यन्ते तावत्यो रेखा देया , यावन्तश्च न प्राप्यन्ते तावन्ति शून्यानि देयानि, एव मेकैकग्रहस्याष्टौ रेखा सभवेयु , तासा मध्ये यदि चतस्रो हीना अधिका वा रेखा स्युस्तदा मध्या अधमा श्रेष्ठाश्च क्रमात् । एव च यस्य ग्रहस्य रेखाबाहुल्य स गोचरेणाशुभोऽपि शुभ , शून्यबाहुल्ये तु गोचरेण शुभोऽप्यशुभ । केऽप्याहु —कार्यकालेऽष्टकवर्गरेखा न मील्यन्ते, किंतु यदा तदा वा जन्मकुंडलिकामेव समग्र सस्थाप्य आद्यकुडलिकाया यत्र स्थानेऽर्कोऽस्ति तस्माज्जवमादिष्वष्टस्थानेष्वष्टौ रेखा देया । एव मन्दभौमाभ्यामपि प्रत्येकमष्टाष्ट, गुरुनश्चतस्र , शुक्रात्तिस्र , बुधात्सप्त, लग्नात् पट्, एव तस्यामर्काष्टवर्गकुडलिकाया सर्वरेखा रवेरष्टचत्वारिंशत् । एवमेव द्वितीयादिषु चन्द्राद्यष्टकवर्गकुडलिकासु क्रमात् सर्वरेखा, एव चन्द्रस्यैकोनपञ्चाशत्, भौमस्य चत्वारिंशत्, बुधस्याष्टपञ्चाशत्, गुरो षट्पञ्चाशत्, शुक्रस्य द्वापञ्चाशत्, शनेरेकोनचत्वारिंशच्चेति । उक्त च—"वसुवेदौ १ नन्दवेदौ २ खवेदौ ३ वसुसायकौ ४ । षड्बाणौ ५ द्विशरौ ६ नन्दवह्नी ७ रेखा इनादिजा " ॥ १ ॥ एव चैकैकग्रहाष्टवर्गकुडलिकाया द्वादशस्वपि राशिस्थानेषु प्रत्येक यावत्सभव रेखा देया , शेषाणि शून्यानि च । इत्थमतश्चैवमेकत्र स्थाने यथायोगमष्टौ रेखा सभवेयु । तत कार्यकाले यो ग्रहो यत्र राशौ स्यात्तत्स्थान वीक्ष्यते, तत्र स्थाने रेखाधिक्ये सग्रह शस्त , शून्याधिक्ये त्वशुभ इति द्विधाऽपि चैकमेव तत्त्व । अथामीषुपयोग एव—"चतूरेखे मध्यफल हीने हीन तनोऽधिके श्रेष्ठम् । विफल गोचरगणित त्वष्टकवर्गेण निर्दिष्टम्" ॥ १ ॥ एकग्रहमाश्रित्येदमुक्त । तात्कालिकीनां सर्वग्रहरेखाणा मीलने तु षोडशमध्ये कदापि न स्यात्, सप्तदशभ्य आरभ्योत्कृष्टा षट्पञ्चाशत यावत्तु स्यु । तत्र षड्विंशतिं यावदशुभा एव, सप्तविंशत्या समता, अष्टाविंशत्यादयस्तु षट्पञ्चाशत यावद्यथावहुल शुभशुभतरशुभतमा । "रेखाधिक्य शस्त शून्याधिक्य तथाऽधम कथितम् । एतत्सयोगे स्यु षट्पञ्चाशन्न जातु अधिकास्ता " ॥ १ ॥ अत्र षट्पञ्चाशदिति रव्यादिसप्तकस्य प्रत्येकमष्टाष्टरेखासभवे षट्पञ्चाशत् एव तासा मेलनादिति भाव । विशेषस्तु–"चतूरेख मध्यफल" इति यद्यप्युक्त, तथापि यस्य ग्रहस्याष्टकवर्गशुद्धिस्तदानीं विलोक्यमानाऽस्ति तस्य शुद्धिपतेर्ग्रहस्य स्वत समुत्था रेखा यदि सपद्यते तदा चतूरेखमपि श्रेष्ठम् , तदभावे षड्विधादिबलालङ्कृतस्य तन्मित्रग्रहस्य स्वत समुत्था रेखा यदि सपद्यते तदापि चतूरेख प्रशस्तम् । तस्या अप्यभावे स एव शुद्धिपतिर्ग्रहो यदि वामवेधेन शुभ स्यात्तदाऽपि

ज्ञः स्थापने गुरुः । याने शुक्रः शनिर्मौण्ड्ये बली भानुर्नृपेक्षणे ॥ ६६ ॥
[1]ज्ञोऽखिले फलदो राशावादावादित्यमंगलौ । मध्ये सुरासुराचार्यौ प्रान्ते २

चतूरेखं शुभं । प्रकारत्रयस्याप्यभावे त्वधिकरेखोऽपि ग्रहो न शुभ इति व्यवहारप्रकाशे । तथा षट्पञ्चाशदिति रेखासर्वाग्रं यदुक्तं तद्राहोः सर्वथा रेखा न सन्तीति मतेन । केचित्तु राहोरपि रेखाः प्राहुः । तथाहि—"केन्द्राष्टद्वित्रिगः १-४-७-१०-८-२-३ सूर्याद्राहू रेखाप्रदः स्मृतः । इन्दोस्तनुत्रिधीरुग्यष्ट धर्मकर्मव्यये १-३-५ ७-८-९-१०-१२ स्थितः ॥ १ ॥ भौमात्तनुत्रिधीरिष्ये १-३-५-१२ स्वाम्बुरुग्यष्टान्तिमे २-४-७-८-१२ बुधात् । जीवात्सप्रथमे २-४-७-८-१२-१ शुक्रादरिद्यूनायरिष्यगः ६-७-११-१२ ॥ २ ॥ शनेस्त्रिधीवधूलाभे ३-५-७-११ लग्नाद्राहुस्तु शोभनः । त्रिपञ्चसप्तनवमान्त्येषु ३-५-७-९-१२ रेखाऽस्य न स्वतः ॥ ३ ॥ त्रिचत्वारिंशदेवं स्यू रेखा राहुष्टवर्गगाः ।"

* सर्वकार्येषु कार्यकर्तुश्चन्द्रो गोचरादिबली विलोक्यत इति शेषः । यदुक्तं—"एग १ चउ २ अट्ठ ३ सोलस ४ बत्तीसा ५ सट्ठि ६ सयगुण ७ फलाइं । तिहि १ रिख्ख २ वार ३ करण ४ जोगो ५ तारा ६ ससंकबलं ७" ॥ १ ॥ अत एवोक्तं—"कर्तुरनुकूलयोगिनि शुभेक्षिते शशिनि वर्धमाने च । तारायोगेऽभीष्टे सर्वेऽर्थाः सिद्धिमुपयान्ति" ॥ १ ॥ तत्र चायं विभागः—"ग्रामे नृपतिसेवायां संग्रामव्यवहारयोः । चतुर्षु नामभं योज्यं शेषं जन्मनि योजयेत् ॥ १ ॥" इदं नरपतिजयचर्यायाम् । तात्कालिकलग्नेऽपि च सर्वकार्येषु चन्द्रबलं नियमेन प्रकल्पयेत् यत्सारंगः—"लग्नं देहः षड्वर्गोऽङ्गकानि, प्राणश्चन्द्रो धातवः खेचरेन्द्राः । प्राणे नष्टे देहधात्वङ्गनाशो, यत्नेनातश्चन्द्रवीर्यं प्रकल्प्यम्" ॥ १ ॥ संख्यं युद्धं । बोधो विद्या । स्थापनं पदप्रतिष्ठाविवाहादि । यानं प्रस्थानं । मौण्ड्यं दीक्षा । नृपेक्षणे इति यो यस्य स्वामी स तस्य नृपः तस्य दर्शने । अयं भावः—यदैतानि कार्याणि लग्नबलात् क्रियन्ते तदैषां ग्रहाणामुदितत्वेन वा लग्नस्थत्वेन वा लग्नाधिकृतषड्वर्गाधिपत्वेन वा केन्द्रोपचयस्थत्वेन वा षड्विधादिबलालङ्कृतत्वेन वा सबलत्वं लग्ने कार्यं, कार्यकर्तुश्चैषां गोचरबलं ग्राह्यम् । यदा तु मुहूर्त्तमात्रबलात् क्रियन्ते तदैषां गोचरबलं वारहोरादि च ग्राह्यम् ॥

1 फलद इति शुभगोचरस्थः शुभं फलं दत्ते, अशुभगोचरस्त्वशुभमिति भावः । राशाविति यस्त्वेन स्वयमाक्रान्तोऽस्ति तस्मिन् । आदाविति आद्यद्रेष्काणे । मध्ये इति द्वितीयद्रेष्काणे । प्रान्ते इति तृतीयद्रेष्काणे । इदं च सहजगतौ वर्तमानानां ग्रहाणामुक्तं । यदा तु वक्रेणातिचारेण वा ग्रहा राश्यन्तरं गताः स्युस्तदैवम्—"पक्षं १ दशाहं २ मासं ३ च दशाहं ४ मासपञ्चकम् ५ । वक्रेऽतिचारे भौमाद्याः पूर्वराशिफलप्रदाः ॥ १ ॥ इति लल्लः । अत्र पूर्वराशीति वक्रे सत्यग्रेतनराशेः, अतिचरितास्तु पाश्चात्यराशेः फलं ददतीत्यर्थः । प्रश्नप्रकाशकरस्त्वाह—"वक्रेऽतिचारे भौमाद्याः पूर्वराशिफलप्रदाः । जीवः शनिश्च यत्रस्थौ तस्य राशेः फलप्रदौ ॥ १ ॥" विशेषस्तु—"राश्यन्तगतः खेटः परभावफलं ददाति पृच्छासु । अन्त्यघटीं यावदसावासीनफलं विवाहादौ ॥ १ ॥ अत्र राश्यन्तोऽन्त्यत्रिंशांशरूपः ॥

त्विन्दुशनैश्चरौ ॥ ६७ ॥ अर्कारयोर्ह्रेम्ये गुरोः सितेन्द्वोर्मन्दस्ये राहूरगयोश्च तुष्ट्यै । सदा वहेद्विद्रुमहेममुक्तारूप्याणि लोहं च विराटजं च ॥ ६८ ॥ पूपादितोपायं च पद्मरागमुक्ताप्रवालानि सगारुडानि । सपुष्परागं कुलिशं च नीलं गोमेदवैडूर्यमणीन् वहेत्त ॥ ६९ ॥ एलाशिलापद्मकयष्टुशीरसुराह्वकश्मीरजशोणपुष्पैः । अर्के विधौ कैरवपञ्चगव्यैः, सशङ्खशुक्तिस्फटिकेभदानैः ॥ ७० ॥ भौमे बलाहिंगुलबिल्वकेसरैर्मांस्या फलिन्याऽरुणपुष्पचन्दनैः । सुवर्णमुक्तामधुगोमयाक्षतैः, सरोचनामूलफलैर्बुधे पुनः ॥ ७१ ॥ जीवे सजातिकुसुमैः सितसर्षपयष्टिमल्लिकापत्रैः । मूलफलकुंकुमैलामनःशिलाभिस्तु दैत्यगुरौ ॥ ७२ ॥ कृष्णतिलाञ्जनलाजैः शतपुष्पीरोध्रमुस्तकबलाभिः । तरणितनये च गोचरविरुद्धराशिस्थिते स्नायात् ॥७३॥ ॥ इति गोचरद्वारम् ॥ ६ ॥ इति वार्तिकानुसारेण द्वितीयो विमर्शः समाप्तः ।

---

1 विद्रुमादीनां षण्णां पूर्वार्धस्थैरर्कारयोरित्यादिपदैर्यथासङ्ख्यं योगः । उरगः केतुः । विराटजो राजावर्तमणिः । ननु सप्तानां ग्रहाणां सर्वदा विचार्यं गोचरफलमुक्तं, दिनमासवर्षहोराधिपत्यमप्येषामेव, तत्कथं राहुकेत्वोर्ग्रहत्वं कथं वा तयोः प्रतिकूलगोचरत्वं, यच्छान्त्यर्थं विराटजादिवहनं क्रियते ? उच्यते–तयोर्दिनाधिपत्याद्यभावोऽस्तु, ग्रहत्वं त्वस्त्येव, राश्यादिचारस्यान्यथाऽनुपपत्तेः । राहुगोचरश्च ग्रहणदिने विचार्य इत्युक्तं, ततस्तदा तत्प्रतिकूलत्वे तच्छान्तिकमुपयुज्यते । केतुरपि यदोदितः स्यात्तदा तदुत्थारिष्टशान्तये तच्छान्तिकस्योपयोगः ॥ 2 स्पष्टम् ॥ 3 शिला मनःशिला । यष्टिर्यष्टीमधु राह्वो देवदारु । शोणेति रक्तकणवीरपुष्पैरिति । स्नायादितिपदेन त्रिसप्ततितमवृत्तस्थेन सह योजनीयमिदम् । भावश्चाय–एतानि जलमध्ये प्रक्षिप्य मन्त्रपूर्वं स्नानं कार्यं रविवारे । एवमग्रेऽपि तत्तद्ग्रहस्य वारोऽनुक्तोऽप्यूह्यः । पञ्चगव्यं चैवं पराशरोक्तम्—“कृष्णाया गोमयं मूत्रं नीलायाः कपिलाघृतम् । सुरभेर्दधि शुक्लायास्ताम्राया क्षीरमाहरेत्” ॥ १ ॥ इभानां दानं मदवारि ॥ 4 बलेति बलधान्यं । निरवेति बिल्वफलं । केसरो बकुलः । मांसी सुरमांसिनाम्नी । फलिनी प्रियंगुः । अरुणपुष्पं जपाकुसुमं । चन्दनं रक्तचन्दनं । मूलफलैरिति नारंगस्येति वसिष्ठः ॥ 5 मल्लिकेति विचकिलपत्रैः । मूलफलेति बीजपूर्यो इति वसिष्ठः ॥ 6 अञ्जनं सौवीराञ्जनं लाजा व्रीहिधाना । शतपुष्पीति सोआ नाम । भास्करस्त्विदमप्याह—“रोध्रगर्भतिल्पत्रकमुस्ताहस्तिदानमृगनाभिपयोभिः । स्नानमेतदपरोधति राहो, साजमूत्रमिदमेव च केतो” ॥ १ ॥ पीडामिति शेषः “सप्रियंगुरजनीद्वयमांसीकुष्टलाजसितसर्षपचन्द्रैः । वारिभिः सह वचं सह रोध्रैः, स्नानमत्ति निखिलग्रहपीडाम्” ॥ २ ॥ स्नानं च नृपादीनामेवोचितं । अन्यो जनस्तु—“रत्त १ सेय २ रत्त ३ नील ४ पीअ ५ सिअ ६ विह्नु ७ किन्ह ९। पूअ बलिं च कुज्जा सूराईण विरुद्धाण” ॥ १ ॥ इति हर्षप्रकाशे ॥

॥ तृतीयो विमर्शः ॥ ३

कार्यं[1] वितारेन्दुबले[2]ऽपि पुष्ये, दीक्षां विवाहं च विना विदध्यात् ।
पुष्यः परेषां[3] हि बलं हिनस्ति, बलं तु पुष्यस्य न हन्यु[4]रन्ये ॥ १ ॥ २
अधोमुखानि पूर्वाः स्युर्मूलाश्लेषामघास्तथा । भरणीकृत्तिकाराधाः सिद्ध्यै
खातादि[5]कर्मणाम् ॥ २ ॥ तिर्यङ्मुखानि चादित्यं मैत्रं ज्येष्ठा करत्रयम् ।
अश्विनीचान्द्रपौष्णानि कृषियात्रा[6]दिसिद्धये ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वास्यान्युत्तराः ६
पुष्यो रोहिणी श्रवणत्रयम् । आर्द्रा च स्युर्ध्वजच्छत्राभिषेकतरुकर्मसु[7] ॥४॥
[8]ऋत्वाद्यद्युचतुष्टयवर्जो विषमासु रात्रिषु न योषाम् । सेवेत पुत्रकामः
पौष्णमघामूलभेष्वपि च ॥ ५ ॥ सीमन्तः स्यान्नृ[9]वारेषु मासि षष्ठेऽष्ट- ९
मेऽपि वा । हस्तमूलमृगादित्यपुष्यश्रुतिषु[10] योषिताम् ॥ ६ ॥ विषकौ[11]मारजन्म
स्याद् द्वितीयाशनिसार्पभैः । सप्तम्यारशतर्क्षैश्च द्वादश्यर्काग्निभैस्तथा ७ ११

---

1 प्रस्तावात् सौम्यम् । 2 गोचरेणाष्टकवर्गेण वा विरुद्धे चन्द्रे जन्मप्रत्यरानैधनादि-तारासु चेत्यर्थः । सतारेन्दुबले तु विशिष्येति भावः । अपिशब्दात् पुष्यः पञ्चरेखे सप्तरेखे वा चक्रे दुष्टग्रहेण विद्धो यदि स्यात्, पापग्रहेणाक्रान्तो वा भुक्तो वा भोग्यो वा पश्चिमायां दक्षिणस्यां वा गमनेऽन्तरा परिघदण्डपातेन तद्दिग्विपरीतो वा, तदापि पुष्ये चन्द्रयुक्ते सति पुष्यस्योदयसमये पुष्यसत्के मुहूर्ते वा प्रतिष्ठायात्राक्षौरान्नप्राशनोपनयनविद्यारंभश्वेत-वस्त्रपरिधानादि सर्वं शुभकार्यं कुर्यादिति रत्नमालाभाष्ये । 3 कुतिथिकुवारकुयोगादीनाम् 4 वारतिथ्यादयः पुष्यस्य बलमिव पुष्यस्य ग्रहवेधविरुद्धतारादिस्वरूपं दोषमपि न हन्युः । पुष्यस्तु स्वयमेव स्वदोषं हन्तीति भावः । अत एवाहुः–'सिंहो यथा सर्वचतुष्पदानां तथैव पुष्यो बलवानुडूनाम्' । 5 आदिपदाद्वापीकूपतटाकपरिखादिखनननिधानोद्धारक्षेपद्यूत-विवरप्रवेशधातुकर्मनृपविग्रहगणितारंभादीनि । 6 आदेरश्वगजगवादितिर्यग्दमनवाणिज्य-नृपसन्धिप्रवहणनौकर्मशकटरथयंत्रप्रवाहादीनि । 7 बहुवचनाद् दुर्गप्राकारतोरणोच्छ्रया-रामविधिपट्टाभिषेकादिष्वपि । 8 'गर्भाधाने मघा वर्ज्या रेवत्यपि यतोऽनयोः । पुत्रजन्मदिने मूलाश्लेषे स्तस्ते च दुःखदे' ॥ १ ॥ अत्र मूलाश्लेषे स्त इति आधानाद्दशमे जन्मेति वचनात् । 'रत्नानीव प्रशस्तेऽहि जाताः स्युः सूनवः शुभाः । अतो मूलमपि त्याज्यं गर्भाधाने शुभा-र्थिभिः' ॥ २ ॥ 9 रविकुजजीवेषु । 10 एते पुंनक्षत्राः । विशेषस्तु 'अर्वाग्विवाहकालाच्च पितृचन्द्रबलं सदा । स्त्रीणां सीमन्त उद्वाहे ग्राह्यमन्यत्र तत्पतेः' ॥ इति व्यवहारप्रकाशे 11 'विषकन्याख्या प्रथमं पित्रोर्वंशक्षयंकरी । हन्ति पश्चात्पतिं श्वश्रूं श्वशुरं देवरं तथा' ॥ विशेषस्तु अभिजिति कृतं सर्वं कार्यं शुभं स्यात्, जातमपत्यं तु प्रायो न जीवतीति व्यवहारप्रकाशे ।

मूलस्याह्विचतुष्के पितृमातृद्रव्यनाशसौख्यानि । बालस्य जन्मनि स्युः क्रमतः सार्पस्य तूत्क्रमतः ॥ ८ ॥ मूर्धास्यस्कन्धबाहाकरहृदयकटी-
३ गुह्यजानुक्रमेषु,स्युर्घट्यः पञ्च पञ्चोरगकरटिकराष्टद्विदिक्रुतर्काः ।
बालश्छत्री पितृघ्नो ऽसलदृढबलवान् राक्षसो ब्रह्मघाती, राजा नाशीस्व-
५ सौख्यावहं इह चपलो नश्वरश्चासु जातः ॥ ९ ॥ त्यजेन्न वीक्षेत समा-

1 सौख्यानीति, वराहस्तु मूलतुर्यपादफलमेवमाह—"क्षेत्राधिपसदृष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरर्थपति । द्रेष्काणाशकपैर्वा प्राय सौम्यै शुभ नान्यै" ॥ १ ॥ इद तात्कालिकजन्मलग्ने विचार्यम् । अत्र क्षेत्राधिपेति तदानीं यत्र राशौ चन्द्रोऽस्ति तद्राशीशो यदीन्दु पश्येत्तदा मूलतुर्यपादजो नृप स्यात्, तद्राशीशस्य सुहृद पश्येयुस्तदाऽर्थपति स्यात्, चन्द्राक्रान्तस्य द्रेष्काणस्य नवाशस्य वा स्वामी यदि सौम्यश्चन्द्र पश्येत्तदा शुभ क्रूरेण त्वशुभमिति । बालस्येति, केऽप्याहु —"मूलस्याह्विचतुष्के क्रमेण पशुनाशिनी १ सुख करी २ च । पितृपक्षमथ क्षपयति ३ मातुलपक्ष च ४ जाता स्त्री ॥१॥ मूले जातोऽधम स्याना स्त्री तु पुण्यवती भवेत् । ज्येष्ठा मघा विपरीताऽश्लेषा तदुभयेऽधमा ॥ २ ॥ तृतीया दशमी कृष्णा शनिभौमशसयुता । शुक्लचतुर्दशीमूलजात सहरते कुलम्" ॥ ३ ॥ सार्पस्य तूत्क्रमत इति । यदुक्तम्—"सार्पांशे प्रथमे राजा द्वितीयांशे धनक्षय । तृतीये जननीं हन्ति चतुर्थे पितृघातक" ॥ १ ॥ 2 स्कन्धादिद्विकेषु सम विभज्य घट्य स्थाप्या । 3 विवेकविलासादौ तु मूलाश्लेषयोर्मुहूर्त्ते फलमूचे, तथाहि–"आद्य पञ्चत्रयोविंशो द्वितीयो नवमोऽष्टम । अष्टादशश्च मूलस्य मुहूर्ता दु रादा जनौ ॥ १ ॥ त्रयोविंशपञ्चविंशौ द्वाविंशोऽष्टत्रयोदशौ । एकोनत्रिंशत्रिंशौ च सार्पे स्युरशुभा क्षणा ॥ २ ॥" कुत इदमेवमिति चेदुच्यते-एषा मुहूर्त्तांना क्रूरस्वामिकत्वोक्ते, तथाहि—"राक्षसो १ यातुधानश्च २ सोम ३ शक्र ४ फणीश्वर ५ । पितृ ६ मातृ ७ यमा ८ कालो ९ वैश्वदेवो १० महेश्वर ११ ॥ १ ॥ साध्यदेव १२ कुबेरश्च १३ शुक्रो १४ मेघो १५ दिवाकर १६ । गन्धर्वो १७ यमदेवश्च १८ ब्रह्मविष्णुमयस्तत १९ ॥ २ ॥ ईश्वरो २० विष्णु २१ रिन्द्राणी २२ पवनो २३ मुनय २४ स्तथा । षण्मुखो २५ मृगिरीटी २६ च गौरी २७ मातृ २८ सरस्वती २९ ॥ ३ ॥ प्रजापतिश्च ३० मूलस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तनायका । विपरीता पुनर्ज्ञेया अश्लेषाजातबालके ॥ ४ ॥ 4 त्यजेदिति स्वगृहादिति शेष । समा वर्षाणि । शतौषधीति मूलशतमृत्तिकासप्तक्युततीर्थोदकपञ्चरत्नै साहचर्यात् पञ्चगव्यदन्तिमदसबीजकषायपञ्चकसर्वौषधियुते सौवर्णमूलनक्षत्रेण राक्षसरूपेण सह शतच्छिद्रकुम्भमध्यक्षिप्तैस्तज्ज्ञोक्तविधिना हवनपूर्वम् । सशिशुप्रसूक इति मूलजातशिशुना तज्जनन्या च सह स्नायात् । अश्लेषाजातेऽप्येवमेव, नवरं तत्र सौवर्णसर्परूपेण सहेति ज्ञेयम् । एतच्च मूलाश्लेषाविधान सविस्तरं गृहस्थधर्मसमुच्चयादिग्रन्थेषूक्तमपि बहुसावद्यत्वान्नेह प्रतन्यते । बहुसावद्यारंभपातकभीरुणा तु मूलाश्लेषाजाते बालके सति सर्वनक्षत्रभोक्तृनवग्रहस्ततत-

मस्तके	५	राजा
मुखे	५	पितृहन्ता
स्कन्धयोः	८	स्कन्धिलः
बाह्वोः	८	दैत्यः
हस्तयोः	२	ब्रह्मघ्नः
हृदये	८	राज्यधरः
कट्यां	२	अल्पायुः
गुह्ये	१०	सुखी
जान्वोः	६	चपलः
पादयोः	६	अल्पायुः

← मूलपुरुषस्थापना

केऽप्याहुः—'ब्रह्महत्याकरः पाणौ यद्वा मातुलघातकः । गुह्यजातो धनं हन्याद् वृद्धत्वे च सुखी भवेत् ॥ १ ॥ न जीवेद्वामजङ्घायां पान्थो वा जायते नरः । दक्षिणस्यां तु जङ्घायां जातकः स्यान्महाधनी ॥ २ ॥ कृच्छ्राज्जीवति वामेऽङ्घ्रौ दक्षिणे धनपुण्यवान्' । इति ।

मूले	४	मूलपातः
स्थुडे	७	अर्थहानिः
त्वचि	८	भ्रातृनाशः
शाखायां	१०	मातृनाशः
पत्रे	९	म्रियते
पुष्पे	५	मंत्री स्यात्
फले	६	राज्याप्तिः
शिखायां	११	स्वल्पायुः

← मूलवृक्षस्थापना

अन्ये मूलवृक्षस्वरूपमेवमाहुः ।—पीत[1]-स्तम्ब[2]च्छल्लि[3]शाखा[4]दल[5]कुसुम[6]फले[7] स्युः शिखायां[8] च घट्यो, मूलद्रो[1]र्वा[4]र्धिसप्ताऽष्टकदशकनवेष्व[5]ङ्ग[6]-रुद्र[11]प्रमाणाः । मूला[1]ऽर्थ[2]भ्रातृ[3]मातॄन्[4] क्षपयति पतति[5] प्रौढ[6]मन्त्री नृप[7]श्च, स्यादेतासु प्रसूतः श्रयति कृशतरं चायुरेतच्छिखायाम्[8] ॥ १ ॥ केचिच्छिखायां परमायुराहुः ।

पादयोः	५	मरणं
जान्वोः	५	भ्रमणं
गुदे	८	सुखं
नाभौ	८	व्याधिः
हृदये	२	राज्यं
हस्तयोः	८	हत्याकृत्
बाह्वोः	२	दैत्यः
स्कन्धयोः	१०	स्कंधिलः
मुखे	६	पितृघ्नः
मस्तके	६	राजा

← अश्लेषानरस्थापना

शास्त्रान्तरे तु मूलनराद्विपरीतोऽश्लेषानरोऽप्येवमूचे । तथाहि—अश्लेषाघटिकाषष्टिरेवं स्थाप्या नराकृतिः । आदौ पादद्वये पञ्च जान्वोः पञ्च गुदेऽष्ट च ॥ १ ॥ नाभावष्टौ हृदि द्वौ च पाण्योरष्टौ द्वयं भुजे । स्कन्धयोर्दशकं वक्त्रे षट् शीर्षे षडिति क्रमात् ॥ २ ॥ मृति[1]र्भ्रमः[2] सुखं[3] व्याधी[4] राज्यं[5] हत्या[6] च दैत्यता[7] । स्कन्धिलः[8] पितृहा[9] नेता[10] फलं ज्ञेयं यथाक्रमात् ॥ ३ ॥

सेव्यमानपादपीठस्य श्रीमदर्हतो विशिष्य च मूलनक्षत्रजातस्य श्रीसुविधिजिनस्याष्टोत्तरशतीयविधिना शास्त्रोक्तेन समहोत्सवं स्नात्रं कार्यम् । एवमपि सकलक्षुद्रोपद्रवोपशमस्य सर्वत्र साक्षाद्दर्शनात् । अत्र केऽप्याहुः—"विष्कंभादिकुयोगेषु कुलिके सत्रिपुष्करे । संक्रान्तौ दुर्दिने विष्टौ मूलाश्लेषाजबालके ॥ १ ॥ गणकैर्नैव कर्तव्यं पौष्टिकं मूलसार्पयोः ।" इति ॥

अश्लेषावृक्षस्थापना

शिखायां	४	स्वल्पायु	एवं मूलवृक्षाद्विपरीतोऽ-	शाखायां	९	मातृनाश
फले	[illegible]	राज्याप्ति	श्लेषावृक्ष शास्त्रान्तरीय-	त्वचि	५	भ्रातृनाश
पुष्पे	८	मन्त्री स्यात्	स्तत्रापि घटीक्रमोऽ	स्कन्धे	६	अर्थहानि
पत्रे	१०	मृत्यु	भ्यूह्यः मूलवृक्षवदेव	मूले	११	मूलनाश

ष्टकं वा, बालं पिता मूलविकारशान्त्यै । शतौषधीमूलमृदम्बुरत्नैः, स्नायाच्च हुत्वा सशिशुप्रसूकः ॥ १० ॥ कुलभान्यश्विनी पुष्यो मघा मूलोत्तरात्रयम् । द्विदैवतं मृगश्चित्राकृत्तिकावासवानि च ॥ ११ ॥ उपकुल्यानि भरणी ब्राह्मं पूर्वात्रयं करः । ऐन्द्रमादित्यमश्लेषा वायव्यं पौष्णवैष्णवे १२ पूर्वेषु जाता दातारः सङ्ग्रामे स्थायिनां जयः । अन्येषु त्वऽन्यसेवीर्त्ता यायिनां च सदा जयः ॥ १३ ॥ कुलोपकुलभान्यार्द्राऽभिजिन्मैत्राणि वारुणम् । फलन्त्येतानि पूर्वोक्तद्वयसाधारणं फलम् ॥ १४ ॥ गुर्वर्कार्कान्दवः कुल्या उपकुल्यः कुजः सितः । तमश्चाथ बुधो मिश्रस्तत्र नक्षत्रवत्फलम् ॥१५॥ *** मूर्धास्यांसभुजांकरोरउदरांधोभागजानुक्रमे- ष्वग्निद्विद्वियमद्विपञ्चकुकुदक्तर्केषु भेष्वर्कभात् । भूपः स्याद्वणनोऽसलोऽधिकबलश्चौरो धनी शीलवान् जारः स्यात्पथिकश्च भिक्षुरपि चोत्पन्नः क्रमाद् बालकः ॥ १६ ॥ स्याज्जातकर्म चरलघुमृदुध्रुवर्क्षेष्वमीषु नामापि । तच्चा-

---

1 श्रवणम् । 2 उपकुल्येषु । 3 जाता इति शेषः । 4 तमो राहुः । अथ वारलाभावेऽपि ग्रहप्रसङ्गादुच्चे । मिश्र कुलोपकुल । केचित्तिथिवारवेलाराशियोगेन कुल्यत्वमाहुः, तथाहि–"सूर्योदये कुजस्याह्नि नन्दा वृश्चिकमेषयो १ । कुलीरयुग्मकन्याना भद्रायामे बुधाहनि२ ॥ १ ॥" अत्र यामे इति प्रहरदिनघटनसमये इत्यर्थः । "चापसिंहघटाना च मध्याह्ने वाक्पतौ जया३ । वणिग्वृषभयो रिक्ता त्रियामान्ते भृगोर्दिने४ ॥ २ ॥" त्रियामान्ते इति तृतीयप्रहरप्रान्ते । "सूर्यास्ते शनिवारे तु पूर्णा स्यान्मकरमीनयो ५ । कुलजास्तिथयो वारे वेलाया राशिषु क्रमात् ॥ ३ ॥" एभिर्योगैर्जाता कुल्यास्तत एव चोत्तमाः स्युरित्याशयः ॥ 5 जातकर्म षष्ठीजागरादि । चरेत्यादि एषु चन्द्रयुक्तेषु ना एषामुदयसमये वा एतत्सम्बन्धिषु मुहूर्त्तेषु वा कार्यम् । अस्मिन् प्रकारत्रयेऽपि पूर्वपूर्वस्यालाभे उत्तरोत्तरः प्रकार आदरणीयो न त्वन्यथा । यदुक्तं व्यवहारप्रकाशे–"धिष्ण्याना मौहूर्त्तिकमुदयात् शितरश्मियोगाच्च अधिकबलं यथोत्तरमिति" । यदि च तदेव दिनभक्षणेऽपि च तस्यैव कार्यं क्रियते तदा शुभतरं यच्छौनकः–"नक्षत्रवत्क्षणाना बलमुक्तं द्विगुणितं स्वनक्षत्रे" । इति । एवं सर्वकार्येष्वेषु वाच्यं । अमीष्विति नामाप्येषु स्थाप्य । उभयोरिति प्रस्तावाद्दम्पत्योः गुरुशिष्ययोः स्वामिभृत्ययोश्चेत्याद्यूह्यम् ॥

* * *

मस्तके	३	राजा
मुखे	३	मिष्टाशी
स्कन्धयोः	२	स्कन्धिलः
बाह्वोः	२	बलवान्
हस्तयोः	२	चौर्यरतः
हृदये	५	धनवान्
नाभौ	१	सुशीलः
गुह्ये	१	परदाररतः
जान्वोः	२	विदेशगमनः
पादयोः	६	भिक्षाचरः

← रविनरस्थापना षोडशछंदर्वर्णिता

अर्काक्रान्तभं रविनरस्य मूर्ध्नि दत्वा क्रमाज्जातकस्य जन्मभं यावद्गण्यम् । बाहुद्वये स्थानभ्रष्टः स्यादित्यपि क्वचित् । विशेषस्तु 'शतं मूर्ध्नि मुखे स्कन्धे चाशीतिर्भुजहस्तयोः । सप्तसप्तति वर्षाणि हृन्नाभ्योरष्टषष्टिका ॥ १ ॥ गुह्ये षष्टिस्तथा जान्वोरष्ट षट्पादयोस्तथा । रविचक्रे क्रमेणैवमायुर्ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ २ ॥

विरुद्धमुभयोर्योनी[1]गणे[2]राशि[3]तारकाँवर्गैः[5] ॥ १७ ॥ उडूनां[1] योन्योऽश्वद्विपे[2]-
पशु[3]भुजङ्गा[4]हि[5]शुनकौ[6]तु[7]र्जा[8]मार्जारा[9]खुद्वय१०—११वृषभ[12]महि[13]व्याघ्र[14]महिषाः[15] तथा
व्याघ्रै[16]णै[17]ण[18]श्व[19]कपि[20]नकुलद्वन्द्व२१—२२कपयो,[23] हरि[24]र्वाजी[25] द[26]न्तावलरिपु- ३
(हस्तिरिपु)र[27]जः कुञ्ज[28]र इति ॥ १८ ॥ श्वैणं हरीभमहिबभ्रु पशुप्लवङ्गं
गोव्याघ्रमश्वमहमोतुकमूषकं च । लोकात्तथाऽन्यदपि दम्पति[4]भर्तृभृत्ययोगेषु
वैरमिह वर्ज्यमुदाहरन्ति ॥ १९ ॥ दिव्यो गणः किल पुनर्वसुपुष्य- ६
हस्तस्वात्यश्विनीश्रवणपौष्णमृगानुराधाः । स्यान्मानुषस्तु भरणी[4]कमलासन-
र्क्षपूर्वोत्तरात्रितय[5]शंकरदैवतानि ॥ २० ॥ र[6]क्षोगणः पितृभराक्षसवासवे- ८

---

1 योन्य इति उत्पत्तिस्थानानि, एताश्च गुरुशिष्यदम्पत्यादियोगार्थं पूर्वाचार्यैः कल्पिता एव, न तु पारमार्थिक्य इति रत्नमालाभाष्ये । पशुरऽजः । ओतुर्मार्जारः । द्वयेति मघापूर्वफल्गुन्योराखुः । एवमग्रेऽपि ॥ 2 व्याघ्रैणम् । श्वमार्जारमित्याद्यपि । 3 उपलक्षणत्वाद्गुरुशिष्यादियोगेऽपि । विशेषस्तु 'विहाय जन्मभं कार्ये नामभं न प्रमाणयेत् । जन्मभस्यापरिज्ञाने नामभस्य प्रमाणता ॥ १ ॥ द्वयोर्जन्मभयोर्मेलो द्वयोर्नामभयोस्तथा । जन्मनामभयोर्मेलो न कर्तव्यः कदाचन' ॥ २ ॥ एवमेव गणराश्यादिसर्वप्रकारेषु ज्ञेयम् । एतौ व्यवहारप्रकाशे । 4 रोहिणी । 5 पूर्वाणामुत्तराणां च त्रितयम् । 6 अभिजिद्विद्याधरगणे इति क्वचित् । विशेषस्तु मुख्यस्य वरादे रक्षोगणो गौणस्य च कन्यादेर्नृगणस्तदाप्युभयोः सद्राशिकूटत्वे१ तत्स्वामिमैत्र्ये२ योनिशुद्धौ३ नाडीवेधशुद्धौ च सत्यां सुयोग एव । यद्वर्गः—रक्षोगणो यदा पुंसः कुमारी नृगणा भवेत् । सद्भकूटं१ खगप्रीतिः२ योनिशुद्धस्तदा शुभम् ॥ १ ॥

न्द्रचित्राद्विदैववरुणाग्निभुजंगभानि । प्रीतिः स्वयोरति नरामरयोस्तु मध्या
वैर पलादसुरयोर्मृतिरन्त्ययोस्तु ॥ २१ ॥ राशेरोजान्मृतिः षष्ठे सर्वाः
२ स्युः सपदोऽष्टमे । राशौ द्विर्द्वादशे नैःस्व्यं स्वामिमैत्र्ये पुनः श्रियः ॥२२॥

शत्रु			प्रीति	
६	८	यत्र द्वयो राशी मिथ षष्ठाष्टमौ स्याताम्,	६	८
वृष	धनु	तयो. षडष्टमकाभ्या राशिकूटम्, एव	मेष	वृश्चिक
कर्क	कुंभ	द्विद्वादशनवपञ्चमादिष्वपि भाव्यम् ।	मिथुन	मकर
कन्या	मेष	मृतिरिति यत्रौजान्मेषमिथुनादित	सिंह	मीन
वृश्चिक	मिथुन	सकाशात् षष्ठो राशि स्यात्तत्किल	तुला	वृष
मकर	सिंह	शत्रुषडष्टमकम्, राशीनां मिथो वैर-	धनु	कर्क
मीन	तुला	सद्भावात् । यस्याष्टमो राशिस्तस्य	कुंभ	कन्या

मृत्यु स्यादिति रत्नमालाभाष्ये । सपद इति ओजादेव सकाशादष्टमे राशौ सति यत्स्यात्त-त्प्रीतिषडष्टमकम्, राशीशाना मिथ प्रीतिसद्भावात् । तदय भाव —मकरवृषमीनकन्या-वृश्चिककर्कटाष्टमे रिपुत्व स्यात् । अजमिथुनधन्विहरिघटतुलाष्टमे मित्रताऽनयम् ॥ १ ॥

---

1 नृरक्षसो । 2 ननु वैरमैत्र्यादिद्वयोर्जन्मलग्नयोर्विचारयितुमुचित, तस्यैव सर्वत्र बलवत्त्वात्, तत्किं जन्मराश्योरिहोक्तम्? उच्यते—"जन्मलग्नमिदमङ्गमङ्गिनां, मेनिरे मन इतीन्दुमन्दिरम् । सौहृद च मनसोर्न देहयोर्मेलकस्तदयमिन्दुगेहयो ॥ १ ॥ ननु यद्येव तदाऽस्तु राशिमैत्र्यादिविचार , परं स्थूलमान ह्यदस्ततो जन्मराशिस्थनवांशयोस्तद्विचारो युक्त "प्रभुरिह नवांश" इत्युक्ते , नैवम्, स्थूलस्यैवात्र पूर्वाचार्यै प्रमाणीकरणात्, नो चेत्कर्कस्थे मकरांशेऽपि गतोऽर्के किं नोत्तरायणीत्युच्यते? तथा यथोक्तदैवसिकनक्षत्र-विरहेऽपि तदुदये तन्मुहूर्तेषु वा जातकर्मक्षौरादिकार्याणीव करग्रहोऽपि किमिति नानु-मन्यते? अत स्थूलस्यैवात्र प्रामाण्यम् । नापि सूक्ष्मलग्नप्रमाणमेव । यत —"भिन्न-भिन्नफलभाग्भुवि भूयानेकधिष्ण्यदिनजोऽपि जनोऽयम् । सूक्ष्मतापि ननु तेन गरिष्ठा, किंतु मूलमनुरुध्य विधेया ॥ २ ॥" अत्र धिष्ण्यदिनेत्युपलक्षणम्, तेनैकलग्नजोऽपीत्यपि ज्ञेयम् । तदयमाशय —लग्ने किल नवांशद्वादशांशत्रिंशांशकलाविकलादीनि यथोत्तरं सूक्ष्माणि सन्ति तत —"अत्यन्तसूक्ष्म स कलैकदेशो येनाखिलाना भिदुरा फलर्द्धि । नास्मादृशा दृग्विषय स तस्मान्मूलानुकूल्या व्यवहारसिद्धि ॥ ३ ॥" इद विवाहवृन्दा-वने । अत्र मूलानुकूल्येति पूर्वाचार्यैर्यत्र यत्प्रमाणीकृत तत्तत्र मूलम्, ततो जन्मादिलग्नेषु फलादिक यावद्विचार्यते, इह तु राशेरेव मैत्री विचार्या, तथैव पूर्वाचार्यै प्रमाणीकरणात्, इत्यल प्रसङ्गेन ।

२	१२
मेष	मीन
मिथुन	वृष
सिंह	कर्क
तुला	कन्या
धनुः	वृश्चिक
कुंभ	मकर
एतानि षड् द्विद्शानि श्रेष्ठानि	

मैत्र्युपलक्षणत्वादेकस्वामित्वमपि ग्राह्यम्। सारङ्गस्तु प्रीतिरायुर्मिथो मैत्र्यां सुखं स्यात् सममित्रयोः। द्वयोः समत्वे न स्नेहो न सुखं समवैरिणोः॥ इत्याह

२	१२
कन्या	सिंह
इदमपि शुभम्	
वृश्चिक	तुला
मकर	धनुः
मीन	कुंभ
वृष	मेष
एतान्यशुभानि	
कर्क	मिथुन
इदमशुभतरम्	

श्रेयोमैत्र्यात् परे त्वाहुः[1] कलिकृन्नवपञ्चमम्[2]। एकऋक्षे च भिन्नांशे श्रेयः १

1 अत्राद्येषु पञ्चसु राशीशग्रहयोर्मिथो मैत्री, षष्ठे एकस्वामिकत्वं, सप्तमे त्वेकस्य माध्यस्थ्यमितरस्य मैत्री, तेनैतानि सप्त प्रीतिद्विर्द्वादशानि। शेषे त्वाद्यचतुष्के स्वामिनोर्मिथो माध्यस्थ्यं, पञ्चमे त्वेकस्य माध्यस्थ्यमन्यस्य वैरं "हिमांशुबुधयोर्वैरं" इति मते मिथो वैरं वा, तेनैतानि पञ्च शत्रुद्विर्द्वादशानि। त्रिविक्रमोऽप्याह—"सिंहवर्जविषमराशितो द्वितीयत्वे सति यानि द्विर्द्वादशानि स्युस्तान्यशुभानि, यानि तु समात्सिंहाच्च द्वितीयत्वे सति स्युस्तानि शुभान्येवेति"। केचिन्नाड्यादिचतुष्कानुकूल्ये सति मिथो माध्यस्थ्यमपि शुभमाहुः। यत्सारंगः—"नाडी १ योनि २ गण ३ स्तारा ४ चतुष्कं शुभदं यदि। तदौदास्येऽपि नाथानां भकूटं शुभदं मतम्॥ १॥" अत्रौदास्यमुदासीनता माध्यस्थ्यमिति यावत्। नाडीतारास्वरूपं त्वग्रे वक्ष्यते। सिंहद्विर्द्वादशं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाणि द्विर्द्वादशान्यशुभानीति तु व्यवहारप्रकाशे॥ 2 कलिकृदिति नवपञ्चमं स्वभावात् कलहहेतुः। विवाहे त्वपत्यहानिकरमिति व्यवहारसारे। श्रेयोमैत्र्यादिति अन्ये त्वाहुः—राशीशयोर्मिथो मैत्र्यां तु सत्यां श्रेष्ठमेव। यत्र त्वेकस्य मैत्री अन्यस्य तु माध्यस्थ्यं तन्मध्यमम्। स्थापना पृष्ठ ६७—विशेषस्तु—प्रीतिनवपञ्चमात् प्रीतिद्विर्द्वादशकमुत्तमं ततोऽपि प्रीतिषडष्टमकम्। तथा—"आसन्नस्तु वरो ग्राह्यो नासन्ना कन्यका पुनः। मृतैकमातापितरं संग्राह्यं नवपञ्चकम्॥ १॥" अस्यार्थः—यदि कन्याया राशितो गणने वरस्य राशिरासन्नो वरराशितश्च गणने कन्याया राशिर्दूरः एवं सति नवपञ्चमादीनि सर्वाणि शुभानि। मृतैकेति वरकन्ययोर्मध्ये एकस्य मातापितरौ मृतौ तदा नवपञ्चमं शुभमेवेति नारचन्द्रटिप्पण्याम्। एकऋक्षे चेति ऋक्षशब्दोऽत्र राश्यर्थे ततो द्वयोरपि यद्येक एव जन्मराशिस्तदा नवांशभेदाच्छुभमेव, द्वयोरप्येकं यदि जन्मभं तदा तु न शुभम्। यत्त्रिविक्रमः—"एकर्क्षं जायते यत्र विवाहे वरकन्ययोः। मूलवेधस्तु स प्रोक्तो महादुष्टफलप्रदः॥ १॥" लल्लोऽप्याह—"एकनक्षत्रजातानां परेषां प्रीतिरुत्तमा। दम्पत्योस्तु मृतिः पुत्रा भ्रातरो वाऽर्थनाशकाः॥ १॥" अपि च ऋक्षशब्दो नक्षत्रार्थेऽप्यस्ति,

१ शेषेषु च द्वयोः ॥ २३ ॥ चक्रे त्रिनाडिके धिष्ण्यमेकनाडिगतं शुभम् ।

तेनैकनक्षत्रेऽपि पादभेदाच्छुभमेव, एकपादत्वे तु न शुभम् । यदुक्तम्—"नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराश्योरभिन्नराश्योरपि भिन्नमृक्षम् । प्रीतिस्तदानीं निबिडा नृनार्योश्चेत्कृत्तिकारोहिणिवन्न नाडि ॥ १ ॥" अत्र कृत्तिकारोहिणिवदिति यथा कृत्तिकारोहिण्योर्मिथो नाडीवेधोऽस्ति तथा नाडीवेधो यदि स्यादित्यर्थः । तथा—"नाभिर्देहस्यात्मतनु यथा वा, द्रष्टा स्वदृष्टेन हि दर्शनीयः । एकांशकत्वे समतैव तद्वन् भर्तृभार्याव्यवहारसिद्धिः ॥ २ ॥ एकपादत्वेऽपि शुभमेवेत्यन्ये । यदुक्तम्—"पराशरः स्माह नवांशभेदादेकर्क्षराश्योरपि सौमनस्यम् । एकांशकत्वेऽपि वशिष्ठशिष्यो नैकत्र पिंडे किल नाडिवेधः ॥ ३ ॥" शेषेषु च द्वयोरिति शेषेषूभयसप्तमे १ दशमचतुर्थे २ तृतीयैकादशेषु ३ द्वयोरपि संबन्धिनो श्रेय एव राश्योरेवात्र मैत्रीत्यतो न तदीशयोर्मैत्री विचार्या । यद्गदाधरः—राशिकूटे शुभे लब्धे ग्रहमैत्रीं न चिन्तयेत् । अलाभे राशिकूटस्य ग्रहमैत्रीं तु चिन्तयेत् ॥ १ ॥" तत्रापि स्वामिमैत्र्ये एकस्वामिकत्वे च श्रेष्ठतरमेव । सर्वेषामेषां क्रमात् स्थापना पृष्ठ ६७—अत्रोभयसप्तमेषु तृतीयैकादशेषु च स्वामिमैत्र्यचिन्ता नास्त्येव । दशमचतुर्थेषु त्वाद्ये चतुष्टये मैत्री अन्त्यद्वयोरेकेशत्व, तेनैतानि षट् श्रेष्ठतराण्युक्तानि, शेषाणि षट् स्वभावादेव श्रेष्ठानि । विशेषस्तु—आदौ तावद्‌द्वयोर्न्यादिशुद्धिर्बलिनी, ततोऽपि राश्योर्वश्यत्वं वक्ष्यमाणं, ततोऽपि राशीशग्रहयोर्मैत्री, ततोऽपि राश्योः स्वभावमैत्री बलिनी । यदुक्तम्—"स्वभावमैत्री १ सरिता सपत्नौ २ वैश्यत्व ३ मन्योऽन्यभयोनिशुद्धिः ४ । परं परं पूर्वगमे गवेष्यो, हस्ते त्रिवर्गो युगपद्युतिश्चेत् ॥ १ ॥ परं तारामैत्री नाडीवेधशुद्धिश्च सर्वत्र विलोक्ये एवेति । ग्रामधारणागतिं केऽप्येवमाहुः—"जन्मराशिस्थितो ग्रामस्त्रिषष्ठसप्तमोऽपि वा । स्वकीयो द्रव्यनाशाय आपदा च पदे पदे ॥ १ ॥ चतुर्थोऽष्टमको ग्रामो द्वादशो यदि वा भवेत् । यत्रैवोत्पद्यते अर्थस्तत्रैवार्थो विलीयते ॥ २ ॥ पञ्चमो नवमो ग्रामो द्वितीयो यदि वा भवेत् । दशमैकादशश्चैव शुभदः स फलप्रदः ॥ ३ ॥

1 जन्मनोऽभिधानस्य वा । विशेषस्तु—सुतसुहृदादीनां नाडीवेधसद्भावे विरुद्धयोनिकभयोगोऽपि न दुष्यति । दम्पत्योर्नाडीवेधे तु फलमेवम्—"हृन्नाडीवेधतो भर्तुर्मध्यनाडीव्यधे द्वयोः । पृष्ठनाडीव्यधे नार्या मृत्युः साक्षान्न संशयः ॥ १ ॥ आद्यनक्षत्रसंगता या सा हृन्नाडी । "समासन्ने व्यधे शीघ्रं दूरवेधे चिरेण वा । वेधान्तरभमानेऽत्र वर्षे दुष्टं प्रजायते ॥ २ ॥" अपि च यदि नक्षत्रवेधस्त्यक्तुं न शक्यते तदाऽपि पादवेधस्त्याज्य एव । उक्तं च नरपतिजयचर्यायाम्—"एतच्चक्रं समालिख्य अश्विन्याद्यहिपङ्क्तितः । वेधो द्वादशनाडीभिः कर्तव्यः पतिकन्ययोः ॥ १ ॥ एवं निरन्तरो येषां दम्पतीनां भवेद्व्यधः । तेषां मृत्युर्न संदेहः सान्तरस्त्वन्तरद्युः सदः ॥ २ ॥" तथा तत्रैव ग्रन्थे दम्पतिवद्देवतामन्त्रयोर्गुरुशिष्ययोगे च नाडीवेधो दुष्ट इत्युक्तम् । तथाहि—"एकनाडीस्थिता यत्र गुरुर्मन्त्रश्च देवता । तत्र द्वेषं रुजं मृत्युं क्रमेण फलमादिशेत् ॥ १ ॥" सर्वेषां चैषां मैत्रीप्रकाराणां नाडीवेधो बलिष्ठः । यदुक्तम्—"सदा नाड्यबलेकनाडीसमाजो, भकूटादिकान् सर्वभेदान् अशस्तान्" ॥

९	५
मेष	सिंह
वृष	कन्या
मिथुन	तुला
सिंह	धनुः
तुला	कुंभ
वृश्चिक	मीन
धनुः	मेष
मकर	वृष

श्रेष्ठानि नवपंचमानि

९	५
कुंभ	मिथुन
मीन	कर्क
कर्क	वृश्चिक
कन्या	मकर

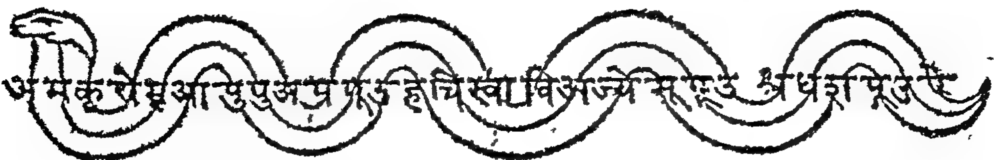
एतानि मध्यमानि

	३	११	३	११
शुभ	मेष	कुंभ	तुला	सिंह
	वृष	मीन	वृश्चिक	कन्या
	मिथुन	मेष	धन	तुला
	कर्क	वृष	मकर	वृश्चिक
	सिंह	मिथुन	कुंभ	धन
	कन्या	कर्क	मीन	मकर

उभयसप्तमं		दशमचतुर्थश्रेष्ठतरं		दशमचतुर्थश्रेष्ठं	
७	७	१०	४	१०	४
मेष	तुला	वृष	कुंभ	मेष	मकर
वृष	वृश्चिक	कर्क	मेष	मिथुन	मीन
मिथुन	धन	वृश्चिक	सिंह	सिंह	वृष
कर्क	मकर	मेष	तुला	तुला	कर्क
सिंह	कुंभ	कन्या	मिथुन	धनुः	कन्या
कन्या	मीन	मीन	धन	कुंभ	वृश्चिक

गुरुशिष्यवयस्यादेर्न वधूवरयोः पुनः ॥ २४ ॥ द्वयेपु गुरुशिष्यादेः

त्रिनाडीचक्रस्थापना



प्रीतिहेतोः परस्परम् । त्रिपञ्चसप्तमीं तारां सर्वत्र परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥
चत्वारोऽकचटा वर्गाः क्रमात्तपयशास्तथा । यत्नतो वर्जनीया स्युरितरे-
३ तरपञ्चमाः ॥ २६ ॥ नामादिर्वर्गाङ्कमथैकवर्गे, वर्णाङ्कमेव क्रमतोऽ-

---

1 पूर्वोक्तेन ताराणा नवकत्रयकल्पनविधिना गुरुशिष्यादितारासु त्रिपञ्चसप्तमत्व भाव्यम्, शिष्य च गुरुवरप्रभुप्रभृतीना तारा त्रिपञ्चसप्तमी न विलोक्यते। यदुक्त 'भीरुपादचल७ पद्म५ तृतीया३ शोकरविपदे धरतारा'। सर्वत्रेति सर्वेषु द्वयेषु। 'पुंस्त्रीराशीशयोर्मैत्र्या मेकेशत्वे च वश्यमे । षडष्टमादिष्वपि स्यात्तारामैत्र्या करग्रह' इति दैवज्ञवल्लभेऽपि तारा-प्राधान्यमुक्तम्। 2 वैनतेयौतु सिंहश्वाऽहिमूषकमृगोरणा । क्रमादकचटादीना स्वामिनोऽमी स्मृता बुधैरिति हर्षप्रकाशे । शुकसजातीयत्वाच्छुन उरणेन मेषेण सह वैरम्। विशेषस्तु योनि१ गण२ राशि३ ताराशुद्धि४ नाडिवेधा५ जन्मभे परिज्ञायमाने जन्मभेनैव विलोक्या अन्यथा तु नामभेनैव । वर्गमैत्री१ लभ्यदेयज्ञाने२ तु प्रसिद्धनाम्नैव विलोक्ये । 3 लभ्य च स्वोक्र वर्यम्, दातु लातु च सुशकत्वादिति नारचन्द्रटिप्पण्याम् । राशि१ ग्रहमैत्री२ गण३ योनी४ तारा५ वनाथता६ वश्यम्७ । स्त्रीदूरनाडी८ युति९ वर्ग१० लभ्य११ वर्ण१२ युनयो१३ द्वयेषूह्या ' इति गर्गोक्त सग्रहश्लोक । वधूराशिर्वरराशितो दूरग शुभ । वरराशिस्तु वधूराशित आसन्न शुभ । 'मीनायाश्चत्वारस्त्रिद्विजादिवर्णा' इति सारावल्याम्। यत्र वर्णाधिका नारी तत्र भर्ता न जीवति । यदि जीवति भर्ता स्यात्तदा पुत्रो न जीवति । इति महादेव । युजि प्रागुक्ता "पूर्वार्धयोगिपूडुस्त्रीणामतिवल्लभो भवेद्भर्ता" इत्यादिना । विशेषस्तु–मुनीना किल जिनबिम्बकारयितुस्त्वद्धारणागनिज्ञाने शैक्षस्य नामकरणे च भयोन्यादिभिर्विशिष्योपयोग , तत्र शैक्षस्य नाम्नि नाडीवेधो वर्य , जिनस्य तु नाम्नि त्याज्य एव । ताराविरोधश्च जिनबिम्बाधिकारे प्रायो न विचार्य । यदुक्तम्—"योनि१ गण२ राशिभेदा३लभ्य४ वर्गश्च५ नाडिवेधश्च६ । नूतनबिम्बविधाने षड्विधमेतद्विलोक्य सै ॥ १ ॥" तत्र यस्य धनिकस्य जिनस्येव जन्मभ ज्ञायते तस्य जन्मभेन योनिगणरा शायो नाडीवेधश्च विलोक्य , न तु वर्गलभ्ये, यतो वर्गयोर्मिथ पञ्चमत्व मिथो लभ्यदेय च जिनस्येव तस्यापि प्रसिद्धेनैव नाम्ना विलोक्येते, सर्वत्रापीय रीति । जन्मभापरिज्ञाने तु तस्य योन्याद्यपि सर्वं प्रसिद्धनामभेनैव विलोक्यम् । तत्र पूर्वं तावज्जिनधनिकयोर्योनिग-णवर्गाणा मिथो वैर त्याज्यमेव । वैरसद्भावेऽपि वा धनिकसत्का योन्यादयो देवसत्केभ्य स्तेभ्यश्चेद्बलिष्ठा स्युस्तदा ग्राह्या अपि । अय भाव –अल्पबलेन बलिष्ठो नाभिभूयते इत्यभिप्रायेण धनिकस्य ओत्वादिर्बलिष्ठो देवस्य चोन्दुरादिरल्पबल इत्येतावता न दोष । जातिवैराभावे च धनिकयोनिवर्गयोरबलत्वेऽपि न विशिष्य दोष , शास्त्रे योनिवर्गयोर्जा-तिवैरस्यैव वर्जनात्, लोकेऽपि च तथैवादरणात् । तथा यत्र देवराशितो धनिकराशिरा-सन्नो धनिकराशितस्तु देवराशिर्दूरे तत्प्रीतिषडष्टमकादि ग्राह्यम्, इतरत्तु न । तथा तादृक्-शुद्ध्यपरालाभे तु तदपि क्वचिद्ग्राह्यम् । देवराक्षसरूप गणवैरमप्येवमेव, यतो लोके वरकन्या

क्रमाच्च । न्यस्योभयोरष्टहृतावशिष्टेऽर्धिते विशोपाः प्रथमेन देयाः ॥२७॥
कर्णवेधोऽह्नि सौम्यस्य[1] मार्गे मैत्र्ये श्रुतिद्वये । हस्तचित्रोत्तरापौष्णाश्विना-
दित्यद्वये शुभः ॥ २८ ॥ आघाटनं[2] प्राथमकल्पिकस्य[3], मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु ३
भेषु । पूर्वाशनं[4] मासि शिशोश्च षष्ठे[5], भं वारुणं स्वातिमितश्च[6] मुक्त्वा ॥२९॥
पात्रभोगोऽश्विनीचित्राऽनुराधारेवतीमृगे । हस्ते पुष्ये च गुर्विन्दुवारयोश्च
प्रशस्यते ॥ ३० ॥ क्षौरं[7] शुभस्याहनि तारकाबले तिथौ च रिक्ताष्टमिषष्ठ्य- ६

देरपि शुद्धापरलाभे देवराक्षससरूपं गणवैरमप्याद्रियमाणा दृश्यन्ते । शिष्यनामकरणे तु गुरुशिष्ययोर्मिथस्ताराविरोधः शत्रुषडष्टमकादीनि च सर्वाणि त्याज्यानि । योनिविरोधोऽप्येवमेव । नाडीवेधसद्भावे त्वसौ न दुष्टः । उक्तं च हर्षप्रकाशे—"दुब्बारस नवपंचस छक्कट्ठग ति पण सत्तमी तारा । अन्नुन्नं गुरुसीसाणं नामकरणे विवज्जिज्जा ॥ १ ॥ गुरुसीसाण करिज्जा नामं न विरुद्धजोणिए रिक्खे । जइ हुज्ज न तं रिक्खं आरूढं एगनाडीए ॥ २ ॥" गणवर्गविरोधौ तु त्याज्यावेव । लभ्यदेयं च मिथो विलोक्यम्, मिथो राशिमैत्र्याद्यभावे राशीनां वश्यत्वं च ग्राह्यं, तद्भावे शत्रुषडष्टमकादीनामपि विशिष्टतरदौष्ठ्यासंभवात् । पुत्रादिनामस्वपि सर्व प्रायः शैक्षनामवज्ज्ञेयम् । एवं च सति—"जीवेन्द्वर्केषु वलिषु त्रिषु गोचरशुद्धितः । नामप्रथमवर्णस्य नृणां नाम विधीयते ॥ १ ॥" इति पूर्णभद्रः । अस्य श्लोकस्यान्वय एवं-नामाद्यवर्णस्य गोचरशुद्ध्या जीवेन्द्वर्केषु वलिषु सत्सु नृणां नाम विधीयते । अयं भावः—नामकर्तुराचार्यादेर्ये केऽपि वर्णा मैत्रीभाजः सन्ति तेषां वर्णानां मध्ये यस्य वर्णस्य जीवेन्द्वर्कगोचरशुद्ध्या वलिष्ठाः स्युरिष्टदिने तं वर्णमादौ न्यस्य शिष्यादीनां नाम देयम् ॥

1 बुधस्य । गुरावपीति व्यवहारसारे । 2 हिण्डनं गोचरचर्याभ्रमणं च । 3 बालस्य, शैक्षस्य । वारेऽनुक्तेऽपि कुजशनी सर्वत्र त्याज्यौ । अरिक्तिथाविति च सर्वत्राभ्यूह्यम् । 4 बोटणाख्यम् । 5 पुंसः षष्ठे मासि पुत्र्यास्तु पञ्चमे मासीति भोजः । मासनियमो न पुत्र्या इति हरिः । 'शशिशुक्रे च मन्दाग्निः, शनिभौमे वलक्षयः । बुधार्कगुरुवारेषु प्राशनं तु हितावहम्' । 6 पूर्वोक्तनक्षत्रेभ्यः शतभिषक्स्वाती त्यक्त्वा, चो भिन्नक्रमत्वात् स्वातिं चेत्येवं योज्यः । 7 क्षौरमिति बालानां प्रथमं यस्य मुंडनमिति नाम । शैक्षाणां तु प्रथमलोचः, शेषक्षौराणि तु वारभमात्रशुद्ध्यादिनाऽपि स्युः । शुभस्येति अक्रूरवारे । यतः—"क्षौरे मासं हुनोत्यर्को भौमोऽष्टौ सप्त सूर्यजः । षट् प्रीणातीन्दुरष्टौ ज्ञो गुरुर्नव भृगुर्दश ॥ १ ॥" इति व्यवहारसारे । तारकेति, उक्तं हि-"जन्माधानेत्यादि" । तारावलं च क्षौरेऽवश्यं ग्राह्यं, यतः-"तारासुद्धं खउरं" इति हर्षप्रकाशे । चन्द्रवलमप्यवश्यं ग्राह्यमिति व्यवहारप्रकाशे । अष्टमीति "ङ्यापो वहुलं नाम्नि" इति ह्रस्वः । अमा अमावास्या । चरं स्वात्यादि । ऐन्दवं मृगशिरः । तुल्यपताविति-यद्युक्तभानि नाप्यन्ते क्षौरं चावश्यं कार्यं तदोक्तभानां यः पतिः स एव यस्य क्षणस्य पतिः स्यात्तस्मिन् क्षणे क्षौरं कार्यं, क्षणश्च मुहूर्ता-

स्योऽह्नो रात्रेर्वा पञ्चदशोंऽश । तदीशास्त्वानदेवम्—"शिव१ भुजग२ मित्र३ पितृ४ वसु५ जल६ विश्व७ विरिञ्चि८ पङ्कजप्रभवा ९ । इन्द्रा१० ग्नीन्द्र११ निशाचर१२ वरुणा१३ र्यम१४ योनय१५ श्चाह्नि ॥ १ ॥ रुद्रा१ जा२ हिर्बुध्न्या ३ पूषा४ दस्रा५ न्तका६ ग्नि७ धातार ८ । इन्दु९ दिति१० गुरु११ हरि१२ रवि१३ त्वष्ट्र१४ नलाख्या १५ क्षणाधिपा रात्रौ ॥ २ ॥" क्षणनामानि पुनरेवम्—"आर्द्रा१ श्लेषा२ नुराधा३ च मघा४ चैव धनिष्ठिका५ । पूर्वाषाढो६ त्तराषाढे७ अभिजि८ द्रोहिणी९ तथा ॥ ३ ॥ ज्येष्ठा विशाखिका११ मूल१२ नक्षत्र शततारकम्१३ । उत्तर१४ पूर्वे फल्गुन्यौ१५ क्षणास्तिथिसमा दिने ॥ ४ ॥" एषा मध्ये च—"दक्खिणदिसि मुत्तु गम दिक्खपइट्ठागमागमाइऊय । ज त सव्व सुहय अभिजिमुहुत्तमि अट्ठमए ॥ ५ ॥" यत —"उप्पाय-विट्ठि-वइवाय-दड्ढतिहि पावगह विहिअदोसे । मज्झण्हगओ सूरो सव्वे ववणीय सुहखकरो ॥ ६ ॥" इति हर्षप्रकाशे । पूर्णभद्रोऽप्याह—"ग्रसते ग्रहचक्रमसौ रविरुदये यावदेव यामयुगम् । उद्वमति वमनकाले वान्त तद्विह्वलीभवति ॥ १ ॥ विह्वलतामुपगतवति तस्मिन् विजयाह्वयो भवति योग । यस्मिन् विहित कार्यं न चलति कथमपि युगान्तेऽपि ॥ २ ॥" लल्लोऽप्याह—"रवौ गगनमध्यस्थे मुहूर्तेऽभिजिदाह्वये । छिनत्ति सकलान् दोषांश्चक्रमादाय माधव ॥ १ ॥" केचित्तु—"दुपहरघडिआ ऊणे दुपहर घडिएग अहिअ मज्झण्हे । विजय नाम मुहुत्त पसाहग सव्वकज्जाण ॥ १ ॥" इत्याहु । साय सन्ध्यायामपि विजययोगो हर्षप्रकाशे उक्त । तथाहि—"इसि सझामइक्कतो किंचि उब्भिन्नतारओ । विजओ नाम जोगोऽय सव्वकज्जप्पसाहओ ॥ १ ॥" लल्लेन प्रातस्त्यसन्ध्यायामपि यात्रेष्टा, तथाहि—"आवश्यके तथा याने सौम्येऽस्ते निधनेऽपि वा । व्रजेदर्कोदये वाऽपि मध्याह्ने वाऽविशङ्कित ॥ १ ॥" अत्र सौम्येऽस्ते इति यद्यर्कोदयसमये मध्याह्ने वा तात्कालिकलग्नकुण्डलिकाया सप्तमेऽष्टमे वा भवने सौम्यग्रह स्यात्तदा नि शक प्रयाण कुर्यादिति । प्रातस्त्यसन्ध्याया उषानितारसंज्ञे अपि । यत्पूर्णभद्र —"उषाभिधान वरयोगमेव त्रितारमाहुर्मुनिवृन्दवन्द्या " इति । तथा–"उषा प्रशसयेद्गर्ग इति" । एव च सन्ध्यास्तिस्रोऽपि शस्ता इति तात्पर्यम् । तथा–"रुद्रावार्द्रो १ तथैवाष्टौ पूर्वभद्रपदादय ९ (क्रमात्) । आदित्य १० पुष्य ११ श्रुतयो १२ हस्ताद्याश्च त्रय १५ क्रमात् ॥ १ ॥ यस्मिन् धिष्ण्ये यच्च कर्मोपदिष्ट, तद्देवत्यैस्तन्मुहूर्तेऽपि कार्यम् । दिक्शूलाद्य चिन्तनीय समस्त, तद्वद्दण्ड पारिघश्च क्षणेषु ॥ २ ॥" अत्र दिक्शूलाद्यमिति नक्षत्रदिक्शूलकीलादिक वक्ष्यमाणस्वरूप मुहूर्तेष्वपि नक्षत्रवद्विचार्यं, यस्या दिशि च तदुत्पद्यमान स्यात् सा दिक् प्रयाणादौ त्याज्या । तथा चरस्थिरादय सप्त धिष्ण्यभेदा धिष्ण्यसबन्धिक्षणेष्वपि इष्टकार्यानुरूपतामपेक्ष्य विचार्या । पारिघश्चेति वक्ष्यमाणपरिघदण्ड मुहूर्तेष्वपि नक्षत्रवद्विचार्य यात्राद्य कुर्यादिति रत्नभाष्ये । पौराणिकक्षणास्त्वेवम्–"रौद्र १ श्वेतो २ मैत्र ३ श्चारभट ४ पञ्चमस्तु सावित्र ५ । वैराजो ६ गान्धर्व ७ स्तथाऽभिजि ८ द्रौहिण ९ वली १० च ॥ १ ॥ विजयो ११ ऽथ नैर्ऋतनाख्यो १२ माहेन्द्रो १३ वारुणो १४ भग १५ श्चैव । एते पुराणकथिता दिवस-

मोज्झिते । चित्राचरैन्द्राश्विनपुष्यरेवतीहस्तैन्दवैस्तुल्यपतौ क्षणेऽथवा
॥ ३१ ॥ अभ्यक्तस्नाताशितभूषितयात्रारणोन्मुखैः क्षौरम्[1] । विद्याऽऽदिनि-
शा[2]सन्ध्या[3]पर्वसु [4]नवमेऽह्नि च न कार्यम् ॥ ३२ ॥ [5]षट्कृत्तिकोऽष्टवैरंचस्त्रिमैत्र- ३
श्चतुरुत्तरः । पञ्चपैत्रः सकृन्मूलः क्षौरी वर्षं न जीवति ॥ ३३ ॥ श्म[6]श्रुकर्म
नरेन्द्राणां पञ्चमे पञ्चमेऽहनि । क्षौरभेषु नखोल्लेखो व्यर्के, क्रूरे विशेषतः
॥ ३४ ॥ विद्यां [7]सुराध्यापकराज[8]पुत्रसितार्कवारेषु समारभेत । पू[3]र्वाश्वि- ६
नीमूलकरत्रयेषु [9]श्रुतित्रये वा मृगपञ्चके वा ॥ ३५ ॥ नि[10]यमालोचनायो-
गतपोनन्द्यादि कारयेत् । मुक्त्वा तीक्ष्णोग्रमिश्राणि वारौ चाऽऽरशनैश्चरौ ८

मुहूर्त्तास्तथाऽभिजित्कुतुपः ॥ २ ॥” एषु—अभिजि १ द्विजयो २ मैत्रः ३ सावित्रो ४ बलवान् ५ सितः ६ । विराज ७ श्चेति सप्त स्युः क्षणाः सर्वार्थसाधकाः ॥ ३ ॥ रौद्रो १ गन्धर्वो २ ऽर्थप ३ श्चारणाख्यो ४, वायु ५ र्वह्नी ६ राक्षसो ७ धातृ ८ सौम्यौ ९ । ब्रह्मा १० जीवः ११ पौष्ण १२ विष्णू १३ समीरो १४, रात्रावेते नैर्ऋताख्यः १५ क्षणोऽन्यः ॥ ४ ॥” इत्युक्तो बहूपयोगित्वात्सप्रसङ्गः क्षणविचारः ॥

1 प्रारंभः । 2 तिस्रः । 3 दीपोत्सवादिः । 4 पूर्वक्षौरदिनात् । गृहप्रवेशादिष्वपि नवमदिवसो निषिद्धः । यल्लः—‘निर्गमान्नवमे चाह्नि प्रवेशं परिवर्जयेत् । शुभे नक्षत्रयोगेऽपि प्रवेशाद्वाऽपि निर्गमम् ॥ अमङ्गल्यक्षौराणि तु नवमेऽप्यह्नि स्युः । निरासनानामपि क्षौरं न कार्यमिति लल्लः । 5 यः षट् क्षौराणि संलग्नानि कृत्तिकायामेवाकारयत् स षट्कृत्तिकः । एवमन्येऽपि । गणिविद्यायां तु कृत्तिकाविशाखामघाभरणीष्वेव लोचकर्म निषिद्धं । विशेषस्तु—“सर्वदाऽपि शुभं क्षौरं राजाज्ञामृतिसूतके । बन्धमोक्षे मखे दारकर्मतीर्थव्रतादिषु ॥ १ ॥ सर्वदापीति सर्वेषु वारनक्षत्रेष्वित्यर्थः । दारकर्मेति कुलाचारोऽयं केषाञ्चित् । तथा च दुर्गसिंहः—“मुण्डयितारः श्राविष्ठायिनो भवन्ति वधूमूढाम्” । इति ॥ 6 क्षौरभेष्वित्यस्योभयतोऽपि योजनादयमर्थः—क्षौरभेषु त्रिपञ्चसप्तमताराद्यभावे क्रूरवारेष्वपि च शुभग्रहस्य कालहोरायां पञ्चमे पञ्चमे दिने श्मश्रुकर्म कार्यम्, नखोल्लेखोऽप्येवमेव, परं व्यर्के इत्युक्तेस्तत्र रविवारस्त्याज्यः, कुजशनी तयोर्होरा च विशिष्य ग्राह्याः ॥ 7 गुरुः । 8 बुधः । विद्यारम्भे नृणां वाराः कुर्वते भास्करादयः । आयु१र्जाड्यं२ मृतिं३ लक्ष्मीं४ बुद्धिं५ सिद्धिं६च पञ्चताम्७ ॥ इति व्यवहारसारे । 9 कैश्चिच्छ्रुतिरेव केवलोचे । 10 नियमाः सम्यक्त्वद्वादशव्रताद्याश्रिताः, आलोचना धर्मगुरूणामग्रे प्रायश्चित्तमार्गणाय स्वपापप्रकाशनं, योगाः श्रुताराधनतपोविधिविशेषाः तपः सिद्धान्तोक्तश्रेण्यादि षड्भेदम्, तेषां नन्दिः प्रतिपत्तिसमयक्रियमाणो विधिविशेषो जैनर्षिप्रसिद्धः । आदेरन्यदपि धर्ममयोत्सवकार्यं गृह्यते । विशेषस्तु—“शान्तिकं पौष्टिकं कार्यं ज्ञेज्यशुक्रार्कवासरे । कन्याविवाहनक्षत्रे पुष्याश्विश्रवणे तथा ॥ १ ॥” इति त्रिविक्रमः ॥

॥३६॥ मौञ्जीबन्धोऽष्टमे गर्भाज्जन्मतो वाऽग्रजन्मनाम् । राज्ञामेकादशे च स्याद्वत्सरे द्वादशे विशाम् ॥३७॥ शाखाधिपे बलोपेते केन्द्रस्थेऽह्नि च तस्य वा । बले सूर्येन्दुजीवानां वर्णनाथे बलीयसि ॥ ३८ ॥ माघादौ पञ्चके मासां पौष्णाश्विन्योः करत्रये । श्रुतिद्वये मृगादित्यपुष्येपूपनयः श्रिये ॥३९॥ युग्मम् ॥ पराजितेऽरिवेश्मस्थे नीचस्थेऽस्तगते गुरौ । सितेऽपि चोपनीतः स्यात् श्रुतिस्मृतिबहिष्कृतः ॥ ४० ॥ क्रमादशेषु सूर्यादेः क्रूरो मन्दोऽतिपातकी । षड्कर्मा च यज्वा च मूर्खश्चोपनयाद्भवेत् ॥ ४१ ॥ चतुष्टयेऽर्कादिषु राजसेवी, स्याद्वैश्यवृत्तिः क्रमतोऽस्त्रवृत्तिः । अध्यापकः कर्मसु पट्सु विद्वान्, विद्यार्थयुक्तोऽन्त्यजसेवकश्च ॥ ४२ ॥ लग्ने गुरौ त्रिकोणे सिते सितांशे विधौ च वेदज्ञः । भवति यमांशे गुरुसितलग्नेषु जडो विशीलश्च ॥ ४३ ॥ विधुगुरुशुक्रैः सार्कैर्धनगुणहीनः कुजान्वितैः क्रूरः । सबुधैर्युवः सशौरैः स्यादुपनीतोऽलसो विगुणः ॥ ४४ ॥ चन्द्रे षष्ठाष्टमे मृत्युर्मूर्खत्वमथवा वटोः । व्रतमोक्षेऽथ केशान्ते चौले चैवविधो विधिः ॥ ४५ ॥ वह्नेः परिग्रह प्राहुः कृत्तिकारोहिणीमृगैः । उत्तरात्रितयज्येष्ठापुष्यपौष्णद्विदैवतैः ॥ ४६ ॥ केन्द्रोपचयधीधर्मेष्वर्केन्दु ज्ञसुरार्चितैः । शेषैस्त्रिषड्दशायस्थैराधाज्जातवेदसम् ॥ ४७ ॥ उदयेऽथ नवांशे वा राशीनां जलचारिणाम् । उदयस्थे च शीतांशौ वह्निरह्नाय शाम्यति ॥४८॥ क्रूराः कुर्युर्धने निःस्वमाढ्य सन्तोऽन्नद विधुः । हन्युश्छिद्रे ग्रहाः सर्वे लग्ने च ज्ञयमौ द्विजम् ॥ ४९ ॥ जितैरस्तमितैर्नीचशत्रुक्षेत्रगतैरपि । सोमभौमसुराचार्यैराहिताग्निर्न नन्दति ॥ ५० ॥ चन्द्रेऽर्के वा त्रिशत्रुस्थे लग्ने धनुषि वा गुरौ । मेषस्थेंऽशांस्तगे वारे यज्वा स्यादात्तपावकः ॥५१॥ [1]नववाससः प्रधान वासवपौष्णाश्विनादितिद्वितये । करपञ्चकध्रुवेषु च

---

1 नववासस परिधान प्रधान स्यादिति योग । वासवेत्यादि यदुक्तम्—"नष्टप्राप्ति १ स्तदनु मरण२ वह्निदाहो३ऽर्थसिद्धि४–श्चाग्गोर्भीति५र्मृति६रथ धनप्राप्ति७रर्थागमश्च८ । शोको ९ मृत्यु १०र्नरपतिभय ११ संपद १२ कर्मसिद्धि १३–र्विद्याप्राप्ति १४ सदशन १५ मथो वल्लभत्व जनानाम् १६ ॥ १ ॥ मित्राप्ति१७रम्बरहृति १८ सलिलप्लुतिश्च१९, रोगो २०ऽतिमिष्टमशन २१ नयनामयश्च २२ । धान्य २३ विषोद्भवभय २४ जलमी-२५र्धन च २६, रत्नाप्ति२७रम्बरधृते फलमश्विभात् स्यात् ॥ २ ॥" न च केवल श्वेतस्यैव

बुधगुरुशुक्रेषु परिधानम् ॥ ५२ ॥ योषिद्भजेत [1]करपञ्चकवासवाश्विपौष्णेषु वक्रगुरुशुक्रदिनेशवारे । मुक्ताप्रवालमणिशङ्खसुवर्णदन्तरक्ताम्बराण्यविधवात्वमतिः सती चेत् ॥ ५३ ॥ वासः प्राप्तं विवाहादौ राज्ञा दत्तं च यन्मुदा । विरु[2]द्धेऽपि हि वारर्क्षे तद्व[3]सीताविशङ्कितः ॥ ५४ ॥

देव	असुर	देव
मनुज	राक्षस	मनुज
देव	असुर	देव

कृतनवभागे वाससि कोणेषु सुरास्तथान्तयोर्मनुजाः । असुरास्तु मध्ययोः स्युर्मध्यतमो राक्षसो भागः ॥ ५५ ॥ सुर[1][4]नर[2]दनुज[3]पलादाः[4] श्रेष्ठतम[1]श्रेष्ठ[2]हीन[3]हीनतमाः[4] । अन्ताः सर्वेऽप्यशुभा एवं [5]शयनासनाद्येऽपि ॥ ५६ ॥ क्षिते दग्धेऽथ लिप्तेऽस्मिन् गोमयाञ्जनकर्दमैः । अभुक्ते [6]भूरि, भुक्तेऽल्पं फलमेतच्छुभाशुभम् ॥ ५७ ॥ [7]सुलभं स्वं भवेन्न्यस्तं निखातं दत्तमेव वा । मृदुश्रुतित्र-

---

यद्रक्तस्यापि वस्त्रस्य भोगे एतान्येव भानि शुभानीति व्यवहारप्रकाशे । रक्तवस्त्रभोगे पुंसामपि तान्येव भानि शुभानि यानि योषितो वक्ष्यन्ते, इमानि तु श्वेतवस्त्रमेवाश्रित्योक्तानीति तु व्यवहारसारे । बुधेत्यादि, यदुक्तम्—"नवाम्बरपरीभोगे कुर्वन्त्यर्कादिवासराः । जीर्णं १ जलार्द्रं २ शोकं ३ च धनं ४ ज्ञानं ५ सुखं ६ मलम् ७ ॥ १ ॥" कम्बलभोगे रविरपि शुभः तत्र तस्योक्तत्वात् । केऽप्याहुः–'व्यापार्यते रवौ पीतं बुधे नीलं शनौ शिति । गुरुभार्गवयोः श्वेतं रक्तं मङ्गलवासरे ॥ १ ॥

1 विशिष्य च–'पुष्यं पुनर्वसुं चैव रोहिणी चोत्तरात्रयम् । कौसुम्भे वर्जयेद्वस्त्रे भर्तृघातो भवेयतः ॥ १ ॥ उपलक्षणत्वात्प्रवालरक्तांबरहेमशङ्खादिष्वपि पुष्यादिभानि त्याज्यानि । 2 उपलक्षणत्वाच्चन्द्रादिप्रातिकूल्येऽपि । 3 परिदधीत 4 रुग्राक्षसांशेष्वथवापि मृत्युः पुंजन्मतेजश्च मनुष्यभागे । भागेऽमराणामथ भोगवृद्धिः, प्रांतेषु सर्वत्र भवत्यनिष्टम् ॥ १ ॥ अत्र राक्षसशब्देन असुरा अपि संगृहीताः, अत एव रुगथवा मृत्युरित्युक्तम् । असुरांशे रुग्, राक्षसांशे तु मृत्युरित्यर्थः । श्रीकल्पाख्यछेदग्रंथवृत्तौ तु श्रीगुरुगच्छयोग्यवस्त्रैषणार्थनिर्गतसाधूनामादौ तादृग्वस्त्रलाभे एवमेव नवभागकल्पनया निमित्तज्ञानमुक्तं तथाहि-देवेसु उत्तमो लाभो माणुसेसु अ मज्झिमो । असुरेसु अ गेलन्नं मरणं जाण रक्खसे । 5 शय्यादिष्वपि नवभागैरेवमेव फलमूह्यमित्यर्थः । 6 बहु । विशेषस्तु 'छेदाकृतिः श्रिये स्याच्छत्रादिसमागताऽपि रक्षोंऽशे । काकोलूकादिसमा न देवभागाश्रिताऽपि पुनः' । 7 न्यस्तं स्थापनिकायां वाणिज्यव्यवसायादौ वा मुक्तम्, निखातं भूम्यादौ, दत्तं व्याजेनार्पितम्, नष्टमज्ञानाद्गतं तदपि वाशब्देन संगृहीतम् । शुभेऽहनीति कुजशनिवर्जवारे । विशेषस्तु—"ऋणदानमथादानं क्षिप्रधिष्ण्यैर्विधीयते" । तथा—"निधिलब्धिधनविवर्धनमादित्याद्ब्राह्मणः करात् पौष्णात् । द्वितये श्रवणत्रितयोत्तरासु मित्राधिदेवे च ॥ १ ॥"

यादित्यलघुभेषु शुभेऽहनि ॥ ५८ ॥ नष्टं चतुर्भिरन्धाद्यैर्गच्छेत् पूर्वादिषु क्रमात् । तत्राप्यते सुखाद् यत्नोत्तद्वार्तैवं न साऽपि च ॥ ५९ ॥ रेवत्या-

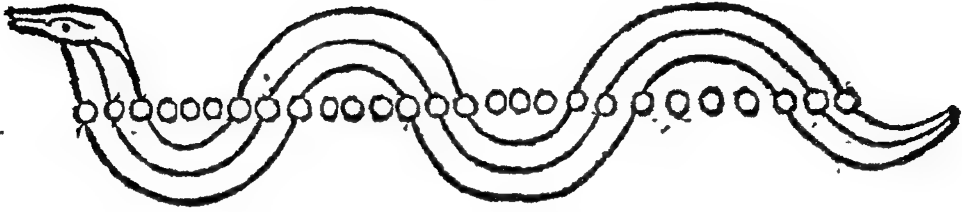
अष्टाविंशतिनक्षत्रनामानि								दिशा	फल
आंधला	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उत्तरा फाल्गुनी	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	पूर्व	शीघ्रमले
काणों	अश्विनी	मृगशिर	अश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उत्तराषाढा	शतभिषक्	दक्षिण	यत्नथीमले
चिबा	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पूर्वाभाद्रपद	पश्चिम	खबरमिले
देखतो	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूर्वाफाल्गुनी	स्वाति	मूल	श्रवण	उत्तराभाद्रपद	उत्तर	खबरपण न मळे

दिचतुष्केषु नामानि प्रतिभ जगुः । अन्धं मोकेकर[1] चिबं[2] सुलोचनं[3]-मिति क्रमात् ॥ ६० ॥ न प्रेतकर्म कुर्वीत यमले संत्रिपुष्करे । क्रूरमिश्र-ध्रुवाद्रांसु तथा मूलानुराधयोः ॥ ६१ ॥ मृते साधौ पञ्चदशमुहूर्त्तैर्नैवं[4] पुत्रकः । एकत्रिंशन्मुहूर्त्तैस्तु क्षेप्य· शेषैस्तु भैरुभौ ॥६२॥ सर्पदष्टः सुपर्णेन रक्षितोऽपि न[5] जीवति । मूलार्द्राभरणीयुग्ममघाश्लेषाद्विदैवतैः ॥ ६३ ॥ जातरोगस्य पूर्वार्द्रास्वातिज्येष्ठाहिभैर्मृतिः । भवेन्नीरोगता रेवत्यनुराधासु कष्टतः ॥ ६४ ॥ मासान्मृगोत्तराषाढे विंशत्यहा मघासु च । पक्षेण तु

1 काणम् । 2 चिप्पटाक्षम् अत्र दिनशुद्धेर्गाथा ११० विलोक्या । 3 पचके तु तद्वर्जन प्रागप्यूचे, रविकुजवारौ चात्र त्याज्याविति दिनशुद्धौ 'पुष्याश्विनीस्वातिहस्ता ज्येष्ठा श्रवणरेवती । एषु प्रेतक्रिया कार्या रविवारं विना बुधे ' । 4 अभिजित्यपि न कार्य पुत्रक 'अवहुअभिई न कायव्वो' इत्युक्ते । 5 न जीवतीति शेषेषु जीवतीत्यर्थ । मूलेत्यादि, विवेकविलासे त्वेवम्—"मूलाश्लेषामघा पूर्वात्रय भरणिकाश्विनी । कृत्तिकार्द्रा विशाखा च रोहिणी दष्टमृत्युदा ॥ १ ॥" तथा—"तिथय पञ्चमी षष्ठ्यष्टमी नवमिका तथा । चतुर्दश्यप्यमावास्याऽहिना दष्टस्य मृत्युदा ॥ २ ॥ दष्टस्य मृतये वारा भानुभौमशनैश्चरा । प्रात सन्ध्यास्तसन्ध्या च सङ्क्रान्तिसमयस्तथा ॥ ३ ॥" इत्यादि ॥ 6 अभिजिज्जातरोगस्य मासद्वयेन मृत्युरारोग्य चेति वृद्धा ।

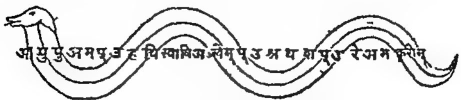
द्विदैवत्ये धनिष्ठाहस्तयोस्तथा ॥ ६५ ॥ भरणीवारुणश्रोत्रचित्रास्वेकादशाहतः । अश्विनीकृत्तिकारक्षोनक्षत्रेषु नवाहतः ॥ ६६ ॥ आदित्यपुष्याहिर्बुध्न्यरोहिण्यार्यमणेषु तु । सप्ताहादिह तारा[1]या यदि स्यादनुकूलता ॥६७॥ ३

भुजङ्गस्थापना



1 ताराया इति "शुक्रेऽप्यासूत्थिते रोगे" इत्युक्तेः ॥ अत्र प्रसङ्गान्मृत्युज्ञानं लिख्यते—"आइच्चाइ धरे विभु अंगह, पनरहमाहि ठवे विणु अंगह । बारह बाहिरितस्स य दिज्जइ, जीवियमरण फुडं जाणिज्जइ ॥ १ ॥" रव्याक्रान्तभमादौ दत्त्वा भुजङ्गस्थापना कार्या तत्र ये ये ग्रहा येषु येषु भेषु स्युस्ते ते तेषु तेषु भेषु देयाः, ततोऽर्कभाद्रोगिनामभं यावद्गण्यते, यद्याद्यनाडीमध्ये प्रथमं १ नवमं ९ त्रयोदशं १३ एकविंशं २१ पञ्चविंशं २५ वा स्यात्तदा मरणं । यदि द्वितीयनाडीमध्ये द्वितीयं २ अष्टमं ८ चतुर्दशं १४ विंशं २० षड्विंशं २६ वा स्यात्तदा बहुक्लेशः । यदि तु तृतीयनाडीमध्ये तृतीयं ३ सप्तमं ७ पञ्चदशं १५ एकोनविंशं १९ सप्तविंशं २७ वा स्यात्तदाऽल्पक्लेशः । शेषद्वादशभेषु आरोग्यम् । शुभाशुभग्रहवेधाच्च विशिष्य शुभाशुभं वाच्यम् । यतिवल्लभे त्वेवमेव चक्रमार्द्रामादौ दत्त्वा स्थाप्यमूचे—"आर्द्राद्यैः पञ्चदशभिस्त्रीणि त्रीण्यन्तरा त्यजन् । त्रिनाडिचक्रे चन्द्रा १ र्क २ जन्म ३ वेधे न जीवति ॥१॥" त्रिनाडिकचक्रस्थापना यथा—(समीपस्थपत्रे विलोक्या) चन्द्रार्कजन्मेति, अयं भावः—'सूर्येन्द्वोर्भं रोगिणश्चैकनाड्यां चेत्स्यान्मृत्यू रोगकाले नरस्य" इति । दिनशुद्धिग्रन्थे तु त्रयत्रयत्यागं विनाऽप्यार्द्रादिचक्रस्थापनं फलं चैवमूचे, तथाहि—"आई अद्दा मिगं अंते मज्झे मूलं पइट्ठिअं । रविंदूजम्मनक्खत्तं तिविद्धो न हु जीवई ॥ १ ॥" एतत्सूचितत्रिनाडिकचक्रस्थापना (समीपस्थपत्रे विलोक्या) ततश्च—"रविंदूजम्मनक्खत्तं एकनाडीगया जया । तया दिणे भवे मच्चू नन्नहा जिणभासिअं ॥ २ ॥" केऽप्यत्रैवमप्याहुः—"रोगिणो जन्मऋक्षस्य एकनाड्यां यदा रविः । यावदृक्षं रवेर्भोग्यं तावत्कष्टपरंपरा ॥ १ ॥ रोगिणो जन्मऋक्षस्य एकनाड्यां यदा शशी । तदा पीडां विजानीयाद्दष्टप्राहरिकीं ध्रुवम् ॥ २ ॥ क्रूरग्रहास्तदाऽन्ये तु यदि तत्रैव संस्थिताः । तदाऽकाले भवेन्मृत्युः सत्यमीशानभाषितम् ॥ ३ ॥ एतैरन्यैश्च प्रकारैर्विभाव्य क्रूरग्रहदशेन्दुप्रातिकूल्यतिथ्यादिच्छेदादिभिर्यथाम्नायं रोगिणो मृत्युसमयो निर्णेयः ॥

यतिवल्लभे त्रिनाडीचक्रस्थापना



दिनशुद्धौ त्रिनाडीचक्रस्थापना



भैषज्यमिष्टं मृगवारुणानुराधाधनिष्ठाश्रुतिरेवतीषु । पुष्याश्विनीराक्षसहस्तचित्रापुनर्वसुस्वातिषु देहपुष्ट्यै ॥ ६८ ॥ स्नानमुल्लाघनस्येष्टं वारयोर्नेन्दुशुक्रयोः । ब्राह्मपौष्णोत्तराश्लेषादित्यस्वातिमघासु च ॥ ६९ ॥ अभ्यगमर्कक्कुजजीवसितेषु पर्वसंक्रान्तिविष्टिषु विवर्जितयोगयुग्मे । कुर्याद् द्विपैड्भुजगदिक्तिथिगर्कविश्वसंख्ये तिथौ च न कदाचन भूतिकामः ॥ ७० ॥ भुञ्जीतान्नं नवं दत्त्वा शुभेऽह्नि ध्रुवचान्द्रभे । पुनर्वसुकरश्रोत्ररेवतीनां द्वयेषु च ॥ ७१ ॥ राजावलोकनं कुर्यान्मृदुक्षिप्रध्रुवोडुभिः । वासवश्रवणाभ्यां च सुधीः सर्वार्थसिद्धये ॥ ७२ ॥ गज-वाजिकर्म नेष्टं रौद्रे पूर्वोत्तराविशाखासु । भरणित्रितयाश्लेषाद्वितयज्येष्ठाद्वयेषु तथा ॥ ७३ ॥ गवां स्थानं च यानं च प्रवेशश्च न शस्यते । तिथौ भूताष्टदर्शाख्ये श्रोत्र-

---

1 भैषज्य रसायनादि । वारविशेषेऽनुक्तेऽपि सर्वत्र सौम्यवारा ग्राह्या , इह त्वर्कोऽपि, भैषज्यस्य तत्रोक्ते 1, एवं हय १ गजकर्म २ पशुविधि ३ नाटक ४ वापी ५ कूपा ६ ऽऽरामा ७ बालनामस्थापन ८ वेश्मकरण ९ हयवाहन १० बीजोप्ति ११ नगरादितोरणो च्छ्रय १२ सुरपूजादि १३ सर्वमाङ्गल्यकर्मस्वपि विशेषानुक्ते सौम्यवारा रविवारश्च ग्राह्या इत्यूह्यम् । 2 नीरुजीकरणस्य । पौर्णभद्रे बुधगुरू हर्षप्रकाशे शनिश्च त्याज्या उक्ता । 3 स्वास्थ्ये सति । 4 व्यतिपातवैधृत्यो । व्रणमुक्तस्य तु व्यतिपातविष्ट्योरपि न स्नाननिषेध उक्तं च 'रविमन्दारवारेषु विष्टौ वा व्यतिपातके, स्नातव्यं व्रणमुक्तेन शशिन्यशुभतारके' । 5 एवमष्टौ भानि । 6 यो यस्य स्वामी । 7 शान्तिकदन्तकर्तनादि । 8 शान्तिकनीराजनादि । सामान्योक्तेऽपि चाय विशेषो दृश्य । अश्विनी–पुनर्वसु–पुष्य–हस्तत्रयेषु गजानाम्, तथाऽश्विनीमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तस्वातिधनिष्ठाशतभिषग्रेवतीष्वश्वानां च कर्म कार्यमिति । 9 पशूनां । 10 बन्धनार्थं । 11 गोचरादौ । 12 गृहादौ । 13 चतुर्दशी ।

चित्राध्रुवे च भे ॥ ७४ ॥ क्रयविक्रयौ न हि गवां हस्तज्येष्ठाश्विनीधनिष्ठाभ्यः । अन्यत्र पौष्णवारुणराधादित्यद्वयेभ्यश्च[1] ॥ ७५ ॥ हलस्य वाहनारंभं न हि कुर्वीत कर्हिचित् । पूर्वासु कृत्तिकासार्पज्येष्ठार्द्राभरणीषु च ३
॥ ७६ ॥ हलचक्रेऽर्कमुक्ताद्भात्रयं नेष्टं शुभं त्रयम् । त्यजेन्नव शुभाय स्युः कृषौ भानि त्रयोदश ॥ ७७ ॥ वीजोप्तौ प्रतिषिद्धानि पूर्वाभरणी-

श ध श्र लक्ष्मीः



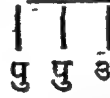
रे उ पू स्वामिनो भयम्   लक्ष्मी अउपूमूज्ये

अ | अश्विनीं भुक्तभं प्रकल्प्य | भरणीस्थार्क- | ज्ये वि स्वा | गवां हानिः

दंडिका, भ कृ र कल्पनया हल- | चक्रस्थापना | दंडिका

गवां हानिः रो मृ आ   मपूउहचि

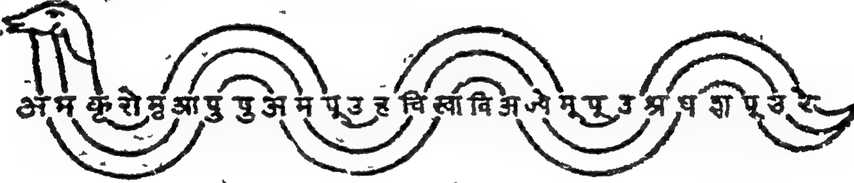
लांगल स्वामिनो भयम्   लक्ष्मी योत्र



पु पु अ

यूप लक्ष्मी

द्वयम् । सार्पादित्यश्रुतिज्येष्ठाविशाखावारुणान्यपि ॥ ७८ ॥ ६



त्रिनाडीकसर्पस्थापना।

कृषिरूचे सूर्यर्क्षादिषु कुरसेन्द्वग्निभूरसेन्दुयुगैः । असुखसुखमध्यलाभारतिरतिम-
ध्यार्थदुःखकृत्क्रमशः ॥ ७९ ॥ जलाशयं ९
न कुर्वीताश्विनीभरणिमिश्रभैः । अजपाद[2]-
श्रुतिस्वातिभाग्य[3]दारुण[4]भैस्तथा ॥ ८० ॥ ११

कृषिपुरुषः

मुखे	५	असुखं
दक्षिणकरे	१	सुखं
पादद्वये	६	मध्यमं
वामकरे	१	लाभः
उदरे	३	अरतिः
मस्तके	१	रतिः
नेत्रद्वये	६	मध्यमं
गुदे	१	लक्ष्मीः
गुह्ये	४	दुःखं

1 'तीक्ष्णेषु पशुं दमयेत् दारु(र)ण्यं न ध्रुवेषु संग्राह्यम् । पशुपोषणं विधेयं चरेषु दीक्षारतं मृदुषु' । इति लल्लः । 2 पूर्वभद्रपदा । 3 भगदैवतं फल्गुनी । 4 आश्लेषादीनि ।

न वृक्षरोपण[1] कुर्यात्क्रूरार्द्राऽऽदित्यवह्निभैः । अश्लेषामारुतज्येष्ठाधनिष्ठाश्रवणैरपि ॥ ८१ ॥ नृत्त[2] मंत्रे स्वाद्धनिष्ठाद्वये वा, हस्तज्येष्ठापुष्यपौष्णोत्तरे[3] वा । सधानाय[4] नाचरेत्किं च मुक्त्वा, धिष्ण्य क्रूर दारुणं वारुणं वा ॥ ८२ ॥ इति कार्यद्वारम् ॥ ७ ॥ इति वार्तिकानुसारेण तृतीयो विमर्श समाप्त ।

॥ चतुर्थो विमर्शः ॥ ४

प्रस्थानमन्तरिह कार्मुकपञ्चशत्याः, प्राहुर्धनुर्दशकतः परतश्च भूत्यै । सामान्यमाडलिकभूमिभुजां क्रमेण, स्यात् पञ्च सप्त-दश चात्र दिनानि सीमा ॥ १ ॥ श्रुतौ तदहरन्येद्युर्धनिष्ठापुष्यपौष्णभे । तृतीये मैत्रमृगयोर्हस्ते तुर्येऽहनि व्रजेत् ॥ २ ॥ यात्रा दिनतिथितारावलशुद्धौ मृगकरानु-

---

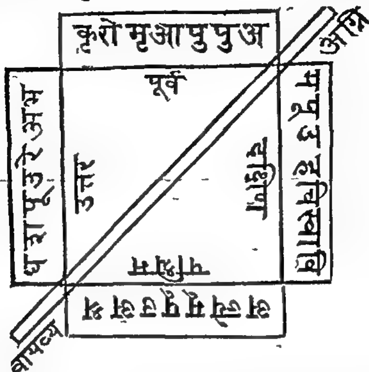
1 पुनर्वसु । 2 स्वाति । 3 नाटक कर्तुं 'खिलितु' वा प्रारभ्यते । 4 मदिरादिक । 5 न कार्यम् ॥ 'रित्ततिहि असुहजोगे कूरविलग्गाइकूरवारे अ । आयरह कसिणपक्खे असुहे अन्नत्थ विवरीअ' ॥ १ ॥ इति पूर्णभद्रोक्त शुभाशुभकार्यसक्षेप , न चैतेषु कश्चिल्लमस्याग्रह 'लम विवाहे दीक्षाया प्रतिष्ठाया च शस्यते' इति वक्ष्यमाणत्वात् । एतेष्वपि लमादरवता किञ्चित्प्रदर्श्यते । 'सौम्यैर्दशमोपगतैर्लमे चन्द्रारमजे गुरौ वापि । विद्याशिल्पारम्भो जीवे न्दुजवर्गगे चन्द्रे' ॥ 'बुधे विलमे शशिनि, क्षराशौ गुरुवीक्षिते । हिबुकस्थे शुभैर्नित्य काव्य चारभ्यते बुधै ॥' 'शीतांशौ बुधराशिस्थे शुभेषूदयवर्तिषु । मन्त्रादिग्रहण कार्यं हित्वा पापग्रहोदयम्' ॥ पित्र्येशयाम्यमूलेन्दुभेषु शुद्धेऽष्टमेऽपि च । वेतालसिद्धि पाताले मृगौ हि कुम्भलग्नगे' ॥ 'हिबुकेऽर्के गुरौ लग्ने धर्मारंभो रवेर्दिने । गुरुलमवर्गे वा शुभारंभास्तयोर्बले' ॥ धर्मारभनन्यादिका । 'मोक्षार्थिना च दीक्षा स्थिरोदये कर्मगे त्रिदशपूज्ये । पापैर्धर्मप्राप्तैर्बल्हीनै प्रव्रजितयोगे ॥' अत्र प्रव्रजितेति चतुरादिभिर्ग्रहैरेकस्थानस्थै प्रव्रज्यायोग । तथा जन्मनि यत्र राशौ चन्द्रस्तद्राशीशोऽन्यग्रहैरदृष्ट सन् शनि पश्येत्तदा प्रव्रज्यायोग । यदि वा तद्राशीश तथाविध शनि पश्येत्तदाऽपि प्रव्रज्यायोग ॥ 'व्ययनैधनसशुद्धौ सदृष्टोपचयोदये । सर्वारंभेषु ससिद्धिश्चन्द्रे चोपचयस्थिते ॥' "इष्टपुसो जन्मलमाज्जन्मराशेर्वोपचयस्था ये राशयस्तेषु लमस्थेषु' 'आय शुभा न शुभदा निधनव्ययस्था धर्मान्त्यधीनिधनके न्द्रगताश्च पापा । सर्वार्थसिद्धिषु शशी न शुभो विलमे सौम्यान्वितोऽपि निधनं न शिवाय लमम्" इष्टपुसो जन्मलमाज्जन्मराशितो वाऽष्टम लम क्वापि कार्ये न ग्राह्यमित्यर्थ । विस्तरस्तु वार्तिकादवलोक्य । 6 ससाध्यैका यात्रा वीर्योदवहीयते ग्रह सर्वे ' अत एतेन प्रस्थानेन एकैव यात्रा कार्या । 7 दिनेति "रयछन्न १ मब्भच्छन्न २ पयडपवण ३ तहा-सनिग्घाय ४ । सुरधणु-५ परिवेस ६ दिसादाहाइ ७ जुअ-दिणं दुट्ठ ॥ १ ॥" इति हर्षप्रकाशे । अत्र दुष्टमिति प्राड्ष विनेति सर्वत्राभ्यूह्य, एतद्रहितत्वे दिनशुद्धि स्यात् सौम्यवारेण वा । यदुक्त—"गमनेऽर्कादयो वारा क्रमश कुर्वते

राधासु । आश्विनपौष्णधनिष्ठाश्रुत्यादित्यद्वये श्रेष्ठा ॥ ३ ॥ मध्या तु ध्रुवपूर्वाज्येष्ठाद्वयवारुणेषु यात्रा स्यात् । निन्द्या[1]र्द्राभरणीद्वयचित्रात्रयसार्पपैत्रेषु ॥ ४ ॥ न[2] दिवाद्ये ध्रुवमिश्रैस्तीक्ष्णैर्मध्येऽथ लघुभिरन्त्येऽंशे । ३ अंशेष्विति रात्रेरपि मैत्रो[3]ग्रचरैर्न भैर्यात्रा ॥ ५ ॥ सर्वदिग्द्वार[3]कौ पुष्यहस्तौ मैत्राश्विनी युतौ । तावेव सर्वकालीनौ मृगश्रुतिसमन्वितौ ॥ ६ ॥ सप्त सप्त गमने वसुऋक्षादुत्त[5]राप्रभृति दिक्षु शुभानि । वह्निवायुपरिघोऽत्र ६

फलम् । नैःस्व्यं १ धनं २ रुजं ३ द्रव्यं ४ जयं ५ चैव श्रियं ६ वधम् ७ ॥ १ ॥" इति व्यवहारसारे । राजादीनां तु रविवारोऽपि शुभ इति व्यवहारप्रकाशे । तथा–"पडिवइनवमट्ठमिचउदसीसु गमणं करे न बुहवारे" इति हर्षप्रकाशे । यद्वा—"चैत्राद्या द्विगुणा मासा वर्तमानदिनैर्युताः । सप्तभिस्तु हरेद्भागं यच्छेषं तद्दिनं भवेत् ॥ १ ॥ श्रीदिनः १ कलह २ श्चैव नन्दनः ३ कालकार्णिका ४ । धर्मः ५ क्षयो ६ जयश्चेति ७ दिना नामसदृक्फलाः ॥ २ ॥" इति यतिवल्लभे । तिथीति पक्षच्छिद्रावमफल्गुदग्धक्रूराख्यतिथीनां त्यागात्तिथिशुद्धिः पूर्णिमाऽपि च त्याज्या । यतः–"पूर्णिमायां न गन्तव्यं यदि कार्यशतं भवेत्" इति व्यवहारसारे । तारेति, यदुक्तं—"जन्माधानान्विता" इत्यादि । तारावलं च यात्रायामवश्यं ग्राह्यं । श्रेष्ठेति अभिजित्यपि यात्रा श्रेष्ठैव । यल्लल्लः–"अभिजिति कृतप्रयाणः सर्वार्थान् साधयेन्नियतम्" । विशेषस्तु—"दसमि तेरसि पंचमि बीअगो, भिगुसुओ गमणेऽतिसुहावहो । गुरु पुणव्वसुपुस्सविसेसओ, सयभिसा अणुराह बुहे तहा ॥ १ ॥" इति दिनशुद्धौ । तथा चन्द्रसत्कगोचरादेः शिवभुजगेत्याद्युक्तदिनरात्रिमुहूर्त्तानां लग्नस्यापि च वलं संभवे ग्राह्यमेव । यदुक्तं—"पहि कुसलु लग्गि, तिहि कज्जसिद्धि, लाभं मुहुत्तओ होइ । रिक्खेणं आरुग्गं, चंदेणं सुक्खसंपत्ती ॥ १ ॥" इति दिनशुद्धौ । तथा–"तिथ्यादिगुणाः सर्वे शुमेन लभ्यन्ते" इति लल्लः ॥

1 कृतप्रयाणोऽष्टास्वेषु कदाचिन्न निवर्त्तते' इति व्यवहारसारे । नारचन्द्रे तु ज्येष्ठामूलयोः श्रेष्ठा, चित्रास्वातिश्रवणधनिष्ठासु मध्या, उत्तरात्रये तु निन्द्या यात्रा' इत्युक्तम्, विशेषस्तु 'अशुभे भे शुभे घस्रे दिवा यात्रादि साधयेत् । शुभे भे त्वशुभे घस्रे रात्रौ यात्रादिसाधयेत् ॥' यतः 'नक्षत्रं वलवद्रात्रौ दिने बलवती तिथिः' इति लल्लः । 2 धनहानिर्मृत्युर्वा नियतो भङ्गः पराजयश्चैव । यस्मादेभिः कालैः प्रायेण विवर्जयेत्तस्मात्' इति लल्लः । 3 एषु परिघो भदिक्शूलं च न स्यादित्यर्थः । 'श्रवणरेवत्यावपि सर्वदिग्द्वारके' इति नारचन्द्रे । 4 एषु 'नदिवाद्ये–' इत्यादि न प्रयोज्यम् । दिनशुद्धिकारस्तु 'सव्वदिसिसव्वकालं रिद्धिनिमित्तं विहारसमयम्मि । पुस्सस्सिणिमिगहत्थारेवइसवणा मुणेयव्वा' ॥ इत्याह । 5 विदिग्यात्रा तु 'यायात् पूर्वद्वारभैरग्निकाष्ठां प्रादक्षिण्येनैवमाशा विपूर्वाः' इति दैवज्ञवल्लभे । आशा विपूर्वा इति विदिश इत्यर्थः । विशेषस्तु 'स्वामिनः सप्त भौमाद्याः क्रमतः

न लंघ्यो, मध्यमानि तु मिथः स्वदिशो स्युः ॥ ७ ॥ उल्लंघ्यः परिघोऽपि



लग्नबलतः शूलं तु भानां सदा, हेयं तत्र पुनः सुरेश्वरदिशि ज्येष्ठाम्बुविश्वोडुभिः, । राधावैष्णववासवाजपदभैर्याम्या, प्रतीच्यां पुनर्ब्राह्मया मूलयुजा, तथोत्तरदिशि स्यादर्यमर्क्षेण च ॥ ८ ॥

कृत्तिकादिषु । प्राच्यादौ तत्सप्तनाथेषु तेषु यात्रा महाफला 'प्राच्यादिषु चरन् भानुः सप्तके कृत्तिकादिके । वितनोति दिशामस्त यात्रा तासु कृता श्रिये ॥' द्वावपि पूर्णभद्रस्य ।

1 उल्लंघ्य इति एकान्तिकेषु कार्येषु परचक्रागमादिषु शुद्धे यातव्यदिङ्मुखे ग्रहबलोपेते यात्रालग्ने सति परिघलंघनं न दोषायेत्यर्थः । सदेति शूलनक्षत्रेषु सत्सु लग्नशुद्धावपि न गच्छेत्, यतो भशूलदोषः शुद्धलग्नेनापि न टलति । उक्तं च—"त्यजेल्लग्नेऽपि शूलर्क्षे शूलर्क्षे नास्ति निर्वृतिः" इति व्यवहारप्रकाशे । सुरेश्वरदिशा पूर्वा, अम्बुविश्वोडुनी पूर्वोत्तराषाढे, याम्या दक्षिणा । "पुव्वाइ जिट्ठसाढा, धणिट्ठपुव्वभद्द दाहिणदिसाए । रोहिणिमूलवराए, विसाह पुव्वफग्गुणुत्तरओ ॥ १ ॥" इति तु पूर्णभद्रः । पुष्ये प्रतीच्यां हस्त उदीच्यां च भशूलमिति तु नारचन्द्रे । यतिवल्लभे तु नक्षत्रकीला उक्ता । तथाहि—"ज्येष्ठा १ भद्रपदा पूर्वा २ रोहिण्यु ३ त्तरफल्गुनी ४ । पूर्वादिषु क्रमात् कीला गतस्तैतेषु नागतिः ॥ १ ॥ औत्सुक्यायापि पूर्वोक्तदण्डलंघनवर्जने । असमर्थस्तदाऽवश्यं दिक्कीलान् वर्जयेदिमान् ॥ २ ॥ लोके त्वेवमपि—"उत्तर हत्था, दक्खिण चित्ता, पुव्वा रोहिणि, सुणिरे पुत्ता । पच्छिम सवणा म करसि गमणा, हरिहरबभपुरंदरमरणा ॥ १ ॥"

दिक्शूल कोष्टक		विदिक्शूल कोष्टक	
पूर्व	सोमशनि	अग्नि	रवि गुरु
दक्षिण	गुरु	नैर्ऋत्य	सोम शुक्र
पश्चिम	रवि शुक्र	वायव्य	मंगल शनि
उत्तर	मंगल बुध	ईशान	बुध

शूलं सोमे शनौ च प्राग्, गुरौ दक्षिणतस्त्यजेत् । रवौ शुक्रे च वारुण्यामुत्तरेण कुजज्ञयोः ॥९॥ आग्नेय्यादिविदिक्शूलं क्रमादादित्यजीवयोः[1] । शीतांशुशुक्रयो[2]र्भौममन्दयो[3]र्ज्ञस्यं[4] च त्यजेत् ॥ १० ॥ दिक्[1]शूलध्वंसि वन्देत चन्दनं दधि[2] मृत्तिकाम्[3] । तैलं[4] पिष्टं[5] च सर्पिश्च[6] खलं[7] वा(चा)र्कादिषु क्रमात् ॥ ११ ॥

योगिन्याः कोष्टकम्	
दिशा	तिथि
पूर्व	१–९
उत्तर	२–१०
अग्नि	३–११
नैर्ऋत्य	४–१२
दक्षिण	५–१३
पश्चिम	६–१४
वायव्य	७–१५
ईशान	८–३०

मतान्तरे योगिन्याः कोष्टकम्		
दिशा	कृष्णपक्षनीतिथी	शुक्लपक्षनी
पूर्व	१–६–११	१–६–११
दक्षिण	२–७–१२	२–७–१२
पश्चिम	३–८–१३	३–८–१३
उत्तर	४–९–१४	४–९–१४
अधोदिशि	१०	५–१५
ऊर्ध्वदिशि	५–१५	१०

स्या[3]द्योगिनी शक्र[1]कुबेर[2]वह्नि[3]रक्षो[4]ऽन्त[5]काप्प्य[6]त्य[7]निलेशदिक्षु । यातुर्न भव्या प्रतिपन्नवम्यादितो विना पश्चिमवामभागौ ॥१२॥ पाशो मासस्येष्टस्तिथिरष्टहृतावशिष्ट ऐन्द्यादौ । तत्संमुखस्तु

1 विदिशोऽपि ग्राह्याः । 2 तिलकं कुर्यात् । 3 यदा च यद्दिशि योगिनी तदा दक्षिणपार्श्वस्थविदिशिकरे कर्त्रिका वामपार्श्वस्थविदिशिकरे तु कर्परं, तास्तिस्रोऽपि च दिशो युद्धादौ पृष्ठत एव शुभा इत्याहुः । उक्तं च व्यवहारप्रकाशे—"योगिनि(नी) देवी पृष्ठे दक्षिणवामे स्थिता विजयदात्री । संमुखसंस्था युद्धे पराजयं नाशमादत्ते ॥१॥" विशेषस्तु—अवश्यकर्तव्ये गमनेऽस्या दृगेव संमुखी त्याज्या, सा चैवं—"ऊर्ध्वे तिथि १५ मितनाड्यो दश चाधो १० वाम १० दक्षिणे पार्श्वे । घटिकाः पञ्चदशापि च १५ योगिन्याः संमुखी दृष्टिः ॥ १ ॥" इति नारचन्द्रे । तथा तत्कालयोगिन्यवश्यं त्याज्या, सा चैवम्–"दिणदिसि धुरि चउ घडिआ पुरओ पुव्वुत्तदिसिसु अणुक्कमसो । तक्काल जोइणी सा वज्जेअव्वा पयत्तेणं ॥ १ ॥" इति दिनशुद्धौ । अत्र दिणदिसि धुरि त्ति यदा यद्वर्तमानदिनं तस्य या या दिक् प्रोक्ता तस्यां तस्यां दिशि धुरि प्रभाते योगिनी वसति, तदनु यथाक्रमोक्तासु शेषदिक्षु भ्रमति, ततोऽयं भावः–प्रतिपदि प्राच्यां प्रथमं यामार्धं वसति शेषा-

कालः स[1] तु दक्षिण एव सौ[2]ख्याय ॥ १३ ॥

पाशस्थापना

पूर्व	आग्नेयी	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	ऊर्ध्व	अध
कृ ६	[illegible]	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३०
शु १	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५	कृ १	२	३	४	५

कालस्थापना

पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	पूर्व	आग्नेयी	दक्षिण	नैर्ऋत	अध	ऊर्ध्व
कृ ६	[illegible]	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३०
शु १	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५	कृ १	२	३	४	५

राहुर[3]ऽसमुखवामोऽष्टसु यामार्धे-
३ ष्वहर्निशं धुं[4]मुखात् । क्रमशः
षष्ठ्यां षष्ठ्यामिष्टः प्राच्यादिषु
प्रचरन् ॥ १४ ॥

* राहुचार स्थापना अहोरात्रे द्विरावृत्ति

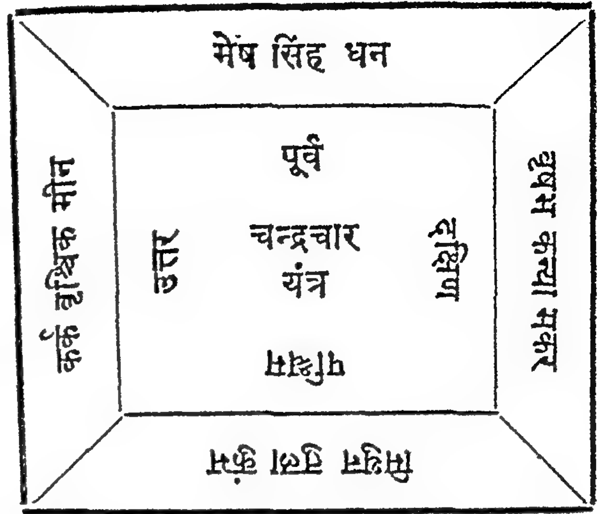
ईशान ४	पूर्व १	आग्नेयी ६
उत्तर ७	अर्धप्रहर	दक्षिण ३
वायव्य २	पश्चिम ५	नैर्ऋत्य ८

६ * जामद्धे राहुगई पू १ वा २ दा ३ ई ४ प ५ आ ६ उ ७ नै ८ दिसासु

सूत्तराग्नेय्यादियथोक्त क्रमाच्छेषाणि यामार्धानि । एवं द्वितीयायां प्रथमं यामार्धमुत्तरस्यां, शेषाण्याग्नेय्यादिप्राच्यन्तसप्तदिक्षु इत्यादि । एवं चाहोरात्रेण दिगष्टकेऽस्या द्विरावृत्ति ॥

1 काल । 2 पाशस्तु वामे । 'कुम्भा विहारि वामो पासो कालो अ दाहिणओ' इति दिनशुद्धौ । वास्तुविद्याविदस्त्वाहु –"शुक्लप्रतिपदादितिथिचतुष्के पूर्वाग्नेय्यादिदिक्चतुष्के पाश , पञ्चम्यामूर्ध्वम् । ततः षष्ठ्यादितिथिचतुष्के पश्चिमवायव्यादिचतुर्दिक्षु पाश , दशम्या त्वध । पुनरेकादश्यादितिथिचतुष्के पूर्वाग्नेय्यादिचतुर्दिक्षु राकायां तूर्ध्वम् । पुन कृष्णप्रतिपदादितिथिचतुष्के पश्चिमवायव्यादिचतुर्दिक्षु पाश , पञ्चम्या त्वध । एवमेव तृतीयाऽप्यावृत्तिर्वाच्या । तत्सम्मुखश्च सदापि काल इति अत एव पूर्णातिथिषु प्रासादादे स्तातध्वजारोपादि तैर्नेष्यते, अध ऊर्ध्वं वाऽप्यस्य कालस्य वाऽवश्यसंभवादिति" । तथा– "दिणवारं पुव्वाईकमेण सहारि जत्थ ठाणि सणी । कालं तत्थ वि आणसु तस्समुहु पास भणइ इगे ॥ १ ॥" इति ज्योतिषसारे । अत्रेशानवर्ज गणनीय, ईशगृहत्वेन तत्र कालस्य प्रवेशाभवनादिति ते प्राहु । एषां मते वारप्रतिबद्धावेव कालपाशौ, न तिथिप्रतिबद्धौ ॥ 3 याता पृष्टतो दक्षिणतश्च । 4 प्रभातात् ।

चन्द्रश्च[1]रति पूर्वादौ क्रमात्त्रिदिक्-चतुष्टये । मेषादिष्वेव यात्रायां संमुखस्त्व[2]तिशोभनः ॥ १५ ॥



रवि[3]र्द्वौ द्वौ तु पूर्वादौ यामौ रात्र्यन्त्ययामतः । यात्रास्मिन् दक्षिणे वामे ४

---

1 दिनशुद्धौ त्वस्य शुक्रवत्रिविधमपि संमुखत्वं ग्राह्यमुक्तं यथा 'उदयवसा १ अहवा दिसि २ दारभवसओ ३ हवइ ससी समुहो । सो अभिमुहो पहाणो गमणे अमियाइं वरिसंतो ॥' 2 उक्तं च नारचन्द्रे 'जयाय दक्षिणो राहुर्योगिनी वामतः स्थिता । पृष्ठतो द्वयमप्येतच्चन्द्रमाः संमुखः पुनः' अतिशब्दाद्दक्षिणोऽपीन्दुः शुभः यथा नारचन्द्रटिप्पनके 'संमुखीनोऽर्थलाभाय दक्षिणः सर्वसंपदे । पश्चिमः कुरुते मृत्युं वामश्चन्द्रो धनक्षयम्' ॥ 3 रात्र्यन्त्येति रात्रेरन्त्यं दिनस्य प्रथमं यामं चार्कः प्राच्यां तिष्ठति, दिनमध्यमयामौ तु दक्षिणस्याम्, दिनान्त्ययामं रात्र्याद्ययामं चापरस्याम्, रात्रेर्मध्यमयामौ तूदीच्याम् । नारचन्द्रे तु सर्वग्रहाणामुदयसमयादारभ्य भ्रमणवशादष्टदिक्स्पर्शनमूचे । तथाहि— "स्वस्योदयस्य समयात्पूर्वयामादितः क्रमात् । संचरन्ति ग्रहाः सर्वे सर्वकालं दिगष्टके ॥ १ ॥" यात्रेति दक्षिणेऽर्के यात्रा कृता शुभा । यल्लः—"न तस्याङ्गारको विघ्नं शनैश्चरजं भयम् । व्यतीपातो न दुष्येच्च यस्यार्को दक्षिणस्थितः ॥ १ ॥" नक्षत्रसमुच्चयेऽप्यत एवोक्तम्—"पूर्वाह्णे चोत्तरां गच्छेत् प्राच्यां मध्यंदिने तथा । दक्षिणामपराह्णे तु पश्चिमा-मर्धरात्रके ॥ १ ॥" एवं गमनेऽर्को दक्षिण एव स्यादिति भावः । लल्लः पुनरपि चन्द्रार्कवारानुकूल्यमेवमाह—"रविशशिकरप्रदीपां मकरादावुत्तरां च पूर्वां च । यायाच्च कर्कटादौ याम्यामाशां प्रतीचीं च ॥ १ ॥ अयनानुकूलयानं हि तमर्केन्द्वोर्द्वयोरसंपत्तौ । द्युनिशं प्रगृह्य यायाद्विपर्यये क्लेशवधबन्धाः ॥ २ ॥" अनयोरर्थः—यदाऽर्केन्दू मकरादि-षट्के उत्तरायणे स्तः तदा पूर्वामुत्तरां च सर्वदा गच्छेत् । यदा च तौ कर्कादिषट्के दक्षिणायने स्तस्तदा दक्षिणां पश्चिमां च सर्वदा गच्छेत् । सर्वदेति कोऽर्थः ? दिवा रात्रौ चेति । अर्केन्द्वोरेकायनासंभवे तु यथासंख्यं दिवानिशं गच्छेत् । अयमर्थः— यदाऽर्को मकरादौ तदा दिने उत्तरां पूर्वां च गच्छेत्, यदा कर्कादौ तदा दिने दक्षिणां पश्चिमां च गच्छेत् । एवं चन्द्रे मकरादिस्थे रात्रावुत्तरां पूर्वां च गच्छेत्, कर्कादिस्थे तु रात्रौ दक्षिणां पश्चिमां च गच्छेदिति । विपर्यये त्वशुभं कोऽर्थः ? रवीन्द्वोर्मकरादि-

प्रवेशः पृष्ठगे द्वयम् ॥ १६ ॥ [1]हंसेऽन्तरा विशति दक्षिणतोऽथ पृष्ठे,
कृत्वा रविं प्रवहनाडिपद पुरश्च । सिद्ध्यै व्रजेदथ विजेतुमना विपक्ष-
३ पक्ष स्वतस्तु विदधीत विना न पक्षम् ॥ १७ ॥ [2]शुक्रस्तु यत्रोदयति

स्थयोर्दक्षिणापश्चिमे यदि गच्छेत् कर्कादिस्थयोश्चोत्तरापूर्वे यदि गच्छेत्, तदा सूर्ये मकरादिस्थे दिवा दक्षिणापश्चिमे यदि गच्छेद्, चन्द्रे वा कर्कादिस्थे रात्रावुत्तरापूर्वे यदि गच्छेत्तदा यातुर्वधबन्धादिदोषा ॥

1 अध्यात्मशास्त्ररीत्या हंस प्राणवायुस्तस्मिन् विशति सति न तु नि सरति सति । यदाहुराध्यात्मिका —"षट्शताभ्यधिकान्याहु सहस्राण्येकविंशतिम् । अहोरात्रे नरे स्वस्थे प्राणवायोर्गमागम ॥ १ ॥" प्रवहा प्रविशत्पवना पूर्णा नाडी नासारन्ध्ररूपा यस्य स्यात्तत्पद वाम दक्षिण वाऽङ्घ्रिं पुर कृत्वा च सिद्ध्यै कार्यस्येति शेष । उक्त च विवेकविलासे—"दक्षिणे यदि वा वामे यत्र वायुर्निरन्तर । त पादमग्रत कृत्वा नि सरेन्निजमन्दिरात् ॥ १ ॥ न हानिकलहोद्वेगा कण्टकैर्नापि भिद्यते । निवर्तते सुखेनैव क्षुद्रोपद्रववर्जित ॥ २ ॥ दूरदेशे विधातव्य गमन तुहिनद्युतौ । अभ्यर्णदेशे दीप्ते तु तरणाविति केचन ॥ ३ ॥" अत्र तुहिनेति वामदक्षिणनाड्यो क्रमाच्चन्द्रसूर्य-सञ्ज्ञेयम् । विशेषस्तु—"दक्षिणनाड्या पूर्णायां विषमपदे १–३–५–७–९ गन्तव्यम्, प्रतीचीदक्षिणयोश्च न गन्तव्यम् । वामायां तु पूर्णाया समपदै २–४–६–८–१० गन्तव्यम्, पूर्वोत्तरयोश्च न गन्तव्यमिति" स्वरोदयविद । व्रजेदिति प्रस्तुतहंसचाराविशुद्धौ नत्वा जिन प्रदक्षिणीकृत्य व्रजतो निश्चिप्य सर्वार्थसिद्धि स्यात् । उक्त च यतिवल्लभे—"प्राणप्रवेशे वहनाडिपाद, कृत्वा पुरो दक्षिणमर्कबिम्बम् । प्रदक्षिणीकृत्य जिन च याने, विनाप्यह शुद्धिमुशन्ति सिद्धिम् ॥ १ ॥" उपलक्षणत्वाच्च प्रवेशेऽप्ययमेव विधि । यदुक्त दिनशुद्धौ—"पुन्ननाडिदिसापाय अग्गे किच्चा सया विऊ । पवेस गमण कुज्जा कुणतो साससगह ॥ १ ॥" अथ विजेतुमना इति अरिं जिगीषु सन् अर्थात्तमेव स्वत सकाशात् आनो वायुस्तस्य पक्ष पार्श्वं विना, एतावता शून्यपार्श्वे कुर्यात् । केचित् वितानपक्षे इति पेठुस्तत्र वितानशब्द शून्यार्थ । कोऽर्थ [2] रिक्तेऽङ्गे रिपु कार्यो, न तु पूर्णे, यथा सुखाज्जीयते अर्थाच्चेष्टवर्ग पूर्णाङ्गे कार्ये । उक्त च विवेकविलासे—"शत्रुचौराधमर्णाद्या अन्येऽप्युत्पातविग्रहा । कर्तव्या खलु रिक्ताङ्गे जयलाभसुखार्थिभि ॥ १ ॥ गुरुबन्धुनृपामात्या अन्येऽपीप्सितदायिन । पूर्णाङ्गे खलु कर्तव्या कार्यसिद्धि-मभीप्सता ॥ २ ॥" दक्षिणतोऽथ पृष्ठे कृत्वा रविमित्येतदत्रापि योज्यम् । यदुक्त यतिवल्लभे—"वहनाडिगतो वाच्यो दक्षिणेऽर्केऽर्थलब्धये । रिक्तनाडीगत शत्रुर्जीयते पृष्ठगे रवौ ॥ १ ॥" 2 शुक्रो यत्रेति यस्या दिशि प्राच्या प्रतीच्यां वोदेति तद्दिशि याता सम्मुख स्यादित्यग्रे योज्यम् । भ्रमन् चेति यथा रवेर्भ्रमणवशाच्चतुर्दिक्स्पर्शनमूचे तथा शुक्रोऽपि भ्रमन् यस्या प्राच्यादिदिशो या दिश याति यद्वा मेषाद्याश्चत्वारश्चत्वार पूर्वाद्या-

भ्रमन् वा, यां याति यद्द्वारकमेति भं वा। इत्थं त्रिधा तद्दिशि संमुखः स्यात्याज्यस्तु तत्रोदयसंमुखीनः॥ १८॥ प्रतिशुक्रं[1] त्यजन्त्येके यात्रायां त्रिविधं बुधाः। तस्मात्प्रतिकुजं कष्टं ततोऽपि प्रतिसोमजम्॥ १९॥ ३

श्वतस्रश्चतस्रो दिश इति तेषु भ्रमन् प्राप्त इत्यर्थः। यद्द्वारकमिति परिघचक्रोक्तरीत्या यद्दिग्द्वारकं भं समेतीति त्रिधा संमुखत्वभवनेऽपि शुक्रस्योदयदिगेव प्राची प्रतीची वा संमुखी त्याज्या। विशेषस्तु-दक्षिणोऽपि शुक्रस्त्याज्यः। यदुक्तं नारचन्द्रे—"अग्रतो लोचनं हन्ति दक्षिणो ह्यशुभप्रदः। पृष्ठतो वामनश्चैव शुक्रः सर्वसुखावहः॥ १॥" केचित्—"पौष्णाश्विनीपादमेकं यदा वहति चन्द्रमाः। तदा शुक्रे(क्रो) भवदन्धः संमुखं गमनं शुभम्॥ १॥" इत्याहुः। अस्य पूर्वार्ध—"अश्विन्या वह्निपादान्तं यावच्चरति चन्द्रमाः" इत्येके पठन्ति। तथा "काश्यपेषु वशिष्ठेषु भृग्वत्र्याङ्गिरसेषु च। भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रं न विद्यते॥ १॥ एकग्रामे पुरे वापि दुर्भिक्षे राष्ट्रविभ्रमे। विवाहे तीर्थयात्रायां वत्सशुक्रौ न चिन्तयेत्॥ २॥ स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विभ्रमे तथोद्वाहे। नववध्वागमने च प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति॥ ३॥" इति लल्लः। अत्र स्वभवनेति स्वभावेन गृहप्रवेशमात्रे, न तु नव्यगृहप्रवेशोऽत्र ग्राह्यः, तत्र प्रतिशुक्रं त्याज्यमिति वक्ष्यमाणत्वात्। तथा शुक्रस्य बाल्यवार्धकत्वनीचत्वास्तमितत्ववक्रगामित्वग्रहपराजितत्वादिष्वपि सत्सु यात्रा दुष्टा, "याने शुक्रः सबलोऽन्वेष्य' इत्युक्तेः। तथा च रत्नमालायाम्—"नीचगे ग्रहजितेऽथ विलोमे, भार्गवे कलुषितेऽस्तमिते वा। प्रस्थितो नरपतिः सबलोऽपि, क्षिप्रमेव वशमेति रिपूणाम्॥ १॥" शुक्रस्योदयास्तदिनसंख्या चौत्सर्गिक्येवं नारचन्द्रटिप्पनके— "प्राच्यां भृगुर्जलधितत्त्व २५४ दिनानि तिष्ठेत्, तत्रास्तगस्तु नयनाद्रि ७२ दिनान्यदृश्यः। तिष्ठेच्च षोडशकृतिं २५६ दिवसान् प्रतीच्यामस्तंगतस्त्विह स यक्ष १३ दिनान्यदृश्यः॥१॥" तथा स्वजन्मनक्षत्रनाथेऽप्यस्तमिते यात्रा दुष्टेति दैवज्ञवल्लभे॥

[1] संमुखोऽप्यनिष्टत्वात् प्रतिकूलशुक्रः प्रतिशुक्रः, एवमग्रेऽपि। त्रिविधमिति इदमपि मतं ग्रन्थकृतः संमतं, तेन यत्प्रागुक्तं त्याज्यस्तु तत्रोदयसंमुखीन इति तदैकान्तिककार्यविषयं सौस्थ्ये तु यथाशक्ति त्रिविधमपि संमुखत्वं त्याज्यमिति द्रष्टव्यम्। तथा चोक्तं दैवज्ञवल्लभे—"धनिष्ठादिकमश्लेषापर्यन्तं भगणं भृगुः। यदा चरति नोदीचीं न प्राचीं च तदा व्रजेत्॥ १॥ मघादिश्रवणान्तानि भानि शुक्रो यदा चरेत्। नापाचीं न प्रतीचीं च तदा गच्छेज्जिजीविषुः॥ २॥" तस्मात् प्रतिकुजमिति शुक्रादपि भौमः संमुखः कष्टदत्त्वात्कष्टः, तमपि त्रिविधं त्यजन्तीति योगः। तस्मादपि सोमजो बुधः संमुखः कष्टः। उक्तं च दैवज्ञवल्लभे—"प्रतिशुक्रेऽपि निर्गच्छेदनुकूलो बुधो यदि। गतः प्रतिबुधेनान्यैः शक्यते रक्षितुं ग्रहैः॥ १॥" शुक्रवद्भौमबुधयोरपि संमुखत्वं दक्षिणभुजस्थत्वं च त्याज्यमिति त्रिविक्रमः। बुधः संमुख एव त्याज्य इति तु रत्नमालाभाष्ये॥

वत्सः प्राच्यादिपूदेति कन्यादित्रित्रिगे रवौ । प्रवासवास्तुद्वारार्चाप्रवेशाः २समुखेऽत्र न ॥ २० ॥ [1]समुखोऽय हरेदायुः पृष्ठे स्याद्धननाशनः । वाम-

पूर्व

५ ५	१०	१५	३०	१५	१०	५ ५

कन्या तुल वृश्चिक

मिथुन कर्क सिंह — वत्सचार तथा वत्सनी — स्थितिनु चक्र — धन मकर कुंभ

उत्तर | १० | १५ | ३० | १५ | १० | — दक्षिण | ३० | १५ | ३० | १५ | १० |

५ ५	१०	१५	३०	१५	१०	५ ५

पश्चिम

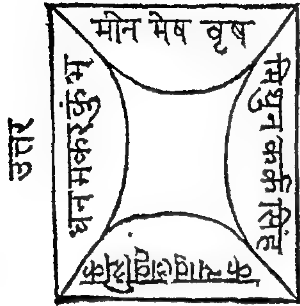
---

1 प्रवासो दूरदेशयात्रा, वास्तु गृहादि, तस्य द्वार न निवेश्यते, अर्च्यते इत्यर्चा जिनादिप्रतिमा तस्या प्रवेशो धनिकगृहानयनम् । अत्रेति वत्से । नारचन्द्रटिप्पनके वत्सरूपमेव प्रोचे—"वपुरस्य शत हस्ता शृङ्गयुग पष्टिसयुता त्रिशती । पञ्चाभिपुच्छ शिरसा भूप १६ नव ९ त्रि ३ शर ५ करमानम् ॥ १ ॥" स्थापना पृ० ८७ । विशेषस्तु—"पञ्च १ दिक् २ तिथि ३ सर्निश ४ तिथि ५ दिक् ६ शरवासरान् ७ । वत्सस्थितिर्दिक्चतुष्के प्रत्येक सप्तभाजिते ॥१॥" तथैव स्थापनाऽस्मिन्पृष्ठे, इद ज्योतिषसारे । केचिद्वत्सस्य वास्तुसज्ञामाहु ॥ 2 इह प्रसङ्गात् शिवचक्र लिख्यते यथा—मेषेऽर्कादुत्तरादौ दिशि विदिशि शिवो मासमेक तथा द्वौ, सहत्या सस्थितो द्विर्भ्रमति भृशमहोरात्रमध्ये तु सृष्ट्या । अध्यर्धे नाडिके द्वे दिशि विदिशि घटीपञ्चके चैष तिष्ठन्, चन्द्रादे प्रातिकूल्य हरति किरति श दक्षिण पृष्ठगोऽसौ ॥ १ ॥ अत्र चन्द्रादेरित्यादिशब्दात्ताराणामवस्थाना चेत्यूह्यम् । शिवचारस्थापना पृ० ८७ । इय च स्थापना स्थूलमानेन । सूक्ष्मेक्षिका पुनरेवम्—"सक्रान्तेराद्यघस्रे स्वदिशि शर ५ पलान्येष भुक्त्वा भ्रमाभ्या, पश्चात्सृष्ट्या तटस्था दिशमटति दशैव पलान्यन्यघस्रे । वृद्धि पञ्चोत्तरैव प्रतिदिवसमहो तावदेतस्य यावत्, सक्रान्तेरन्त्यघस्रे स्थितिरधिककुभ सार्धनाडीद्वय स्यात् ॥ २ ॥" अत्र भ्रमाभ्यामिति अहोरात्रेण तावत् शिवो द्विर्भ्रमति । तत्र प्रथमभ्रमणे सार्धपलद्वय स्वदिशि तिष्ठति, द्वितीयभ्रमणेऽपि पुनरपरं सार्धपलद्वय, एव पलपञ्चक सक्रान्ते प्रथमदिने भ्रमणद्वयेन स्वदिशि शिव स्थित्वा तत सृष्ट्याऽन्यदिशि याति, एव द्वितीयदिनेऽपरं पलपञ्चकमिति दश-

हस्ताः १००	३६०	१६	९	३	५
देहः	शृंगे	पदाः	नाभिः	पुच्छं	शीर्ष

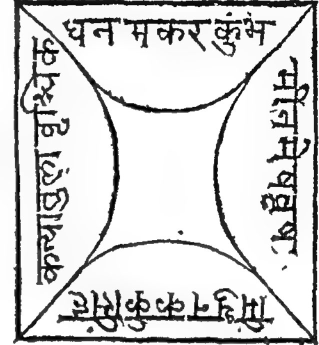
दक्षिणयोः किंतु वत्सो वाञ्छितदायकः ॥ २१ ॥ उत्सवमशनं स्नानं १

रविचार चक्र
पूर्व

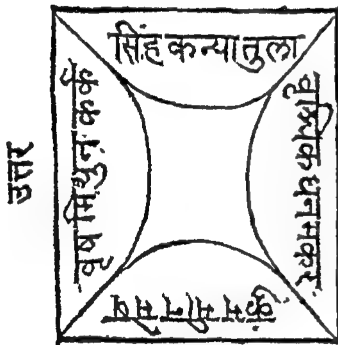


अन्येऽर्कादिसर्वग्रहाणां वत्सवद्गृहाण्येवमाहुः 'मीनादित्रयमादित्यो वत्सः कन्यादिकत्रये धन्वादित्रितये राहुः शेषाः सिंहादिकत्रये'। अत्र पूर्वादिदिक्षु वसन्तीति शेषः।

राहुचार चक्र
पूर्व



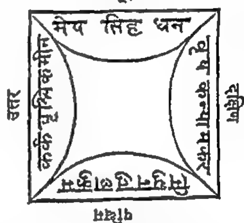
चन्द्र मंगळ बुध गुरु
शुक्र शनिचार चक्र
पूर्व



ईशान घडी २॥ / ईशान घडी २॥	पूर्व मकरेऽर्कः घडी २॥	अग्नि घडी २॥ / अग्नि घडी २॥
उत्तर मेषेऽर्कः घडी २॥	शिवचार चक्र	दक्षिण तुलार्के घडी २॥
घडी २॥ वायव्य / वायव्य घडी २॥	कर्केऽर्कः घडी २॥ पश्चिम	नैर्ऋत्य घडी २॥ / नैर्ऋत्य घडी २॥

पलानि स्थितिः। एवमेव तृतीयदिने पञ्चदश पलानि। एवं प्रत्यहं पञ्च पञ्च पलानि तावद्वर्धनीयानि यावत्संक्रान्तेश्चरमे त्रिंशे दिने सार्धशतपलैः सार्धं घटीद्वयं पूर्ण शिवस्य स्वदिशि स्थितिः स्यात्। तदनु पुनः संहारेण द्वितीयदिश्यप्यागतस्यायमेव क्रमो ज्ञेयः। "विवादे शत्रुहनने रणे झगटके तथा। द्यूते चैव प्रवासे वा पृष्ठे मुष्टौ शिवे जयः॥ ३ ॥ स्वराश्च शकुना दुष्टा भद्रा ग्रहबलं तथा। दिग्दोषा योगिनीमुख्या अभयाः स्युः शुभे शिवे॥ ४॥" तथा—"सूर्यराश्यादितः सव्ये लग्नं तत्कालसंभवम्। पृष्ठदक्षिणगं कृत्वा जयेद्युद्धे न संशयः॥१॥ अस्यार्थः-यत्र राशावर्कोऽस्ति तत्पूर्वस्यां दत्त्वा तत आरभ्य सृष्ट्या गण्यते, ततश्च तदानीं यद्वर्तमानं लग्नं स्यात्तत् पृष्ठतो दक्षिणतो वा कृत्वा युद्धादि कुर्वन् जयी स्यात्॥

प्रगुणं चोपेक्ष्य मङ्गलमशेषम् असमापिते च सूतकयुगेऽङ्गनर्त्तौ च नो यायात् ॥ २२ ॥ अवमन्य माननीयान्निर्भर्त्स्य स्त्रीं च कमपि सताड्य । बालमपि रोदयित्वा जिजीविषुर्नैव निर्गच्छेत् ॥ २३ ॥ क्षुतगृहकलह-ज्वलनौतुयुद्धदुर्वचनवमनसङ्गाद्यम् । अशुभं यात्रावसरे शुभमपि शकुना-गमाद्विन्द्यात् ॥ २४ ॥ आकालिकीषु विद्युद्गर्जितवर्षासु वसुमतीनाथः । उत्पातेषु च भौमान्तरिक्षदिव्येषु न प्रसवेत् ॥ २५ ॥



यातव्यं दिग्मुखे लग्ने सिद्ध्यै शीर्षोदये तथा । एतद्विलोमयोर्जातु यात्रा यातुर्न सिद्धये ॥२६॥ जन्मलग्ने शुभा यात्रा जन्मराश्युदये तु न । तयोश्चोपचयस्थेषु राशिष्विष्टा परेषु न ॥ २७ ॥

---

1 प्रगुणत्व सर्वेषु योज्यम् । उत्सव कौमुद्यादि । स्नानमुखघनस्य सामान्येन वा । मङ्गल विवाहपुनामप्राशनादि । सूतकयुग जातमृतसूतकभेदात् ॥ 2 अत्रैतदपि लल्लोक्त लक्ष्यम्—"प्रमत्तो व्याधितो भीत श्रान्त क्रुद्धो बुभुक्षित । अध्वान न प्रपद्येत क्लीबवेपस्तथैव च ॥ १ ॥ रात्रौ तु मैथुन कृत्वा प्रभाते योऽभिगच्छति । यात्राकालेऽथवा प्राप्ते मैथुन यो निषेवते ॥ २ ॥ यो वा प्रस्थानके गत्वा पुनर्गृहमुपागत । इत्येवमादि-चेष्टाभि सिद्धिर्नास्त्यभिगच्छत ॥ ३ ॥" 3 आकालिक्योऽकालजा गर्भं वर्षाकाल वा विना सजाता इत्यर्थं । वसुमतीनाथ इति उपलक्षणत्वात्सामन्तादेराचार्यादीनां च ग्रहणम् । उत्पातेषु चेति चकारद्वाहुयोगिन्यावपि चिन्तयेदिति रत्नभाष्ये । भौमेत्यादि भौमो भूमिकम्पघटहृदादि । यच्च चराणा स्थिरत्व स्थिराणा वा चरत्व पुष्पफलादिवैकृत वा स सर्वोऽपि भौम उत्पात । आन्तरिक्षा उल्कानिर्घातपवनगन्धर्वपुरशक्रचापरोहितैरावत परिवेषदण्डपरिघादय । दिव्याश्चन्द्रार्कोपरागादिग्रहर्क्षवैकृतकेतुदर्शनादय । ललाट धनुरैन्द्र न शुभश्चदन्यत्र शस्तफलमिति तु लल्ल । न प्रवसेदिति आ सप्ताहादिति दैवज्ञ वल्लभे । एकाह तु त्याज्यमेवेति सारंग । दृष्ट केतु षोडशाह विवर्ज्यथैन्ने वैशाखे च दृष्ट शुभोऽसौ इति तु वराह ॥ 4 यात्राया लग्न प्राधान्येनैव ग्राह्यम् । 5 'अनिष्टद दिक्प्रतिलोमलग्न पृष्ठोदये वाञ्छितकार्यनाश ।' इति लल्ल । 6 जन्मलग्ने इति यात्राकर्तु-

पापैरस्ताम्बुगैर्दृष्टे[1] युते[1] वा जन्मलग्नभे । सौम्यग्रहैस्तु नैवं चेत्तदा यातुः पराभवः ॥२८॥ अष्टमं स्वेन्दुलग्नाभ्यां ताभ्यां षष्ठमथ द्विषः[2] । तद्राशिनाथयुक्तं वा लग्नं यातुरनर्थकृत् ॥ २९ ॥ कर्कवृश्चिकमीनानामुदयेऽंशे[3] च न व्रजेत् । मूर्त्तिस्थे[4]ऽह्वबले रात्रौ रात्रिवीर्येऽह्नि च ग्रहे ॥३०॥ सिद्ध्यै[5] सौम्येश-

---

नृपादेर्यज्जन्मलग्नं तस्मिन् लग्ने यात्रा शुभा, एवमग्रेऽपि भाव्यम् । अनेन चेदं सूचयति-आदौ तावज्जनुर्लग्ने ज्ञाते सति यात्रालग्नं देयं, नान्यथा, यतो जन्मलग्ने ज्ञाते सति दशायुर्ग्रहबलान्यवलोक्य दत्तं यात्रादिमुहूर्त्तं फलदं स्यात् । "अज्ञातजन्मनोऽप्यन्यैर्यानं योज्यमिति स्मृतम् । प्रश्नलग्ननिमित्ताद्यैर्विज्ञाते सदसत्फले ॥ १ ॥" इति रत्नमालायाम् । अत्र यानं योज्यमिति यात्रालग्नं देयमित्यर्थः । जन्मराशीति जन्मनि यत्रेन्दुः स जन्मराशिः स एवोदयो लग्नं तत्र यात्रा न शुभा । रत्नमालायां तु जन्मराशिलग्नेऽपि शुभा यात्रेत्युक्तम् । तयोरिति जन्मलग्नजन्मराश्योरपेक्षया ये उपचयस्थास्त्रिषड्दशैकादशा राशयः परेषु द्वयोरप्यनुपचयस्थराशिषु यात्रा नेष्टा । विशेषस्तु–राशेर्जन्मराशेर्जन्मलग्नं वा तदधिपौ वा तत्काललग्नाच्चतुर्थे सप्तमे वा स्थानके भवतस्तदाऽपि यात्राकर्तुर्जयः । यदि च शत्रुसत्कजन्मराशिजन्मलग्नयोरुपचयगृहाणि चतुर्थे सप्तमे वा स्युस्तदापि जय एवेति रत्नमालायाम् ॥

1 यात्रालग्नकुण्डल्याम् । विशेषस्तु यात्रासमये जन्मकुण्डलिकसंबधिनी अष्टमषष्ठभवने क्रूरसौम्यग्रहाधिष्ठिते अशुभे । यदुक्तं दैवज्ञवल्लभे 'वधः प्रयातुस्त्वरिभिः प्रसूतौ रन्ध्रादिभे क्रूरशुभान्विते चेत्' । 2 षष्ठमस्यापि । 3 नवांशे । आद्ययोःकीटत्वेन यात्रायामक्षमत्वाद्वर्जनम् । मीने तु प्रस्थितो वक्रेण पथा भ्रान्त्वा भ्रान्त्वाऽसिद्धकार्यः समेति । 4 यात्रालग्नस्थे । 5 सिद्ध्यै इति कार्येष्विति शेषः । नौयानमिति जलचरलग्ने, उपलक्षणत्वाज्जलचरनवांशे वा नौयात्रासिद्धिः । प्रवहणपूरणे च निर्विघ्नतालाभौ स्यातां । वश्यतामिति, उक्तं हि दैवज्ञवल्लभे—"चतुष्पदा द्व्यंह्रिवशा विसिंहाः, सरीसृपश्चाम्बुचरास्तु भक्ष्याः । सिंहस्य वश्या विसरीसृपाः स्युरूह्यं जनोक्तव्यवहारतोऽन्यत् ॥ १ ॥ स्थलाम्बुसंभूतसरीसृपाख्या, भवन्ति वश्या बलिनां स्वकानाम् । समा द्युसंस्था विषमान् भजन्ते, वश्या रजन्यां विषमाः समानाम् ॥ २ ॥" अनयोरर्थः–अजवृषसिंहा धनुरपरार्धं मकराद्यार्धं च चतुष्पदाः, मिथुनकन्यातुलाकुंभा धनुराद्यार्धं च मनुष्याः, कर्कमीनौ मकरपश्चार्धं च जलचराः, सरीसृपो वृश्चिक इति । ततश्च सिंहं विनाऽन्ये मेषवृषवृश्चिककुंभा मानुषाणां वश्याः, जलचराः कर्कमकरमीना मनुष्याणां भक्ष्याः, सिंहस्य वृश्चिकं विना सर्वे वश्याः । अन्यदिति वृश्चिकस्य सिंहोऽपि वश्यः । सर्वे पुंराशयः कन्याया वश्याः, धनुषः सर्वोऽपि वश्य इत्यादि । स्थलाम्बुसंभूतेति यदि द्वावपि राशी स्थलजौ जलजौ सरीसृपौ वा तदा द्वयोर्मध्ये यो बलिष्ठस्तस्येतरो वश्यः,यथा वृषस्य मेषो वश्यः, मकरस्य मीनकर्कौ वश्यौ, वृश्चिकस्यापरो वृश्चिको बलहीनत्वे सति वश्यः स्यात्, मेषद्वयवृषद्वयादीनां संभवेऽपि च

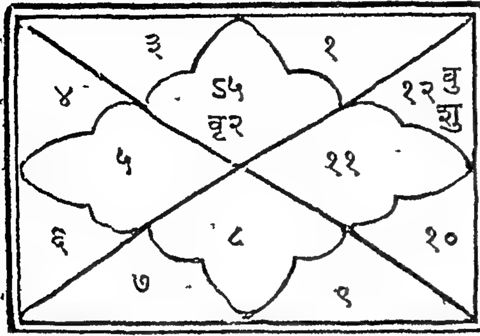
लग्नानि नौयानं जलभेष्वपि । जानीयाल्लोकतश्चात्र राशीना वश्यतां मिथः ॥ ३१ ॥ जन्मकाले शुभैर्युक्ता द्वितीयास्तरणेश्च ये । निष्क्रूरा निर्विकाराश्च
३ ते लग्ने राशयः शुभाः ॥३२॥ यँच वश्य स्वलग्नेन्द्वोर्न च वश्यं द्विपस्तयोः । शत्रोरेवाष्टमं ताभ्या लग्न यातुर्जयावहम् ॥ ३३ ॥ विमुक्ताक्रान्तभोग्यानि राश्यर्धान्युष्णरश्मिना । ऊर्ध्वतिर्यगधोमुख्यो होरा॰ स्युरुदयावधि ॥३४॥ जयमूर्ध्वमुखी होरा विपदस्तिर्यगानना । अधोमुखी रणे यातुर्भङ्ग दिशति
७ लमगा ॥ ३५ ॥ द्रेष्काणः फलरत्नाढ्यः शुभनाथः शुभेक्षितः । शुभोऽ-

---

वृश्चिकवदेव बलाधिक्य विचार्य वश्यता भावनीया । समा द्युसस्था इति इष्टलग्न किल दिवा स्याद्रात्रौ वा, तत्र दिवा समराशयो विषमराशीना वश्या , रात्रौ तु विषमराशय समराशीना वश्या इति । अस्य प्रयोजन तु "यच्च वश्य स्वलग्नेन्द्वो " इति (३३ छदसि) वक्ष्यति ॥

1 सूर्याद्द्वितीयमृक्ष वेशि ' इति जातके सज्ञा । 2 क्रूरभुक्तराशि सविकार , चन्द्रेण भुक्तस्तु निर्विकार । 3 यानालग्नम् । 4 या होराऽर्केण भुक्त्वा मुक्ता सा ऊर्ध्वमुखी, भुज्यमाना तिर्यङ्मुखी, भोक्ष्यमाणा त्वधोमुखी, पुनस्तदग्रेतं यस्तिस्र क्रमादूर्ध्वतिर्यगधोमुख्य पुनस्तथैव तिस्र क्रमादूर्ध्वादिमुख्य , एव पुन पुनरुदयावधीति सूर्योदय यावत् । यद्वा उदयो लग्न तत्राधिकृता होरेत्यर्थ , त यावत् एव त्रिविधा होरा कल्प्या । एव चाहोरात्रे चतुर्विंशतिहोरात्मके त्रिविधहोराणामष्टाष्टावृत्तय स्यु ॥ 5 जयमिति एव कल्प्यमाने सत्यभीष्टा लग्नहोरा यद्यूर्ध्वमुखी स्यात्तदा जयदा ॥ 6 राशौ राशौ त्रयनयभावात् षट्त्रिंशद्द्रेष्काणा स्यु , तेषु य फलेन रत्नैरुपलक्षणत्वात्पुष्पैर्भाण्डैर्वाऽऽढ्य सौम्यस्वामिक सौम्येन पूर्णदृशा दृष्ट एव सौम्याकारो वा य स्यात्स यानालग्ने शुभ । अशुभस्त्विति यस्तु शस्त्रसर्पाभिर्युत , केचित् पावकस्थाने पाशक पठन्ति, तेन पाशैर्बन्धनैर्वा युत , तथा क्रूरदृष्ट उपलक्षणत्वात् क्रूरयुत क्रूरेश क्रूराकारो वा सोऽशुभ । उक्त च—"द्रेष्काणाकारचेष्टागुणसदृशफल योजयेद्वृद्धिहेतोर्द्रेष्काणे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते च । सौम्यैर्दृष्टे जय स्यात्प्रहरणसहिते पापदृष्टे च भङ्ग , साग्नौ दाहोऽथ बन्ध सभुजगनिगडे पापयुक्तेऽपि वाऽश्वी ॥ १ ॥" तेषा रूपाणि चैव बृहज्जातके—मेषे प्रथमद्रेष्काणो नरोऽभ्युद्यतपर्शुहस्त कृष्णो रक्ताक्षो रौद्र १ । अय द्रेष्काणो मनुष्य एव, विशेषानभिधानात् , एव येषु विशेषो न वक्ष्यते ते मनुष्या एव ज्ञेया । द्वितीय स्त्री शोणाम्बराऽश्वास्या दीर्घमुखोरुपादी (पदी) एकेनाङ्घिणोपलक्षिता, चतुष्पदोऽय, तत्तुल्यास्यत्वात्, एवमग्रेऽपि यथायोग भाव्यम् २ । तृतीयो नर क्रूर कपिलो रक्ताम्बरोऽभ्युद्यतदण्डहस्त ३ ॥१॥ वृषे आद्य स्त्री कुञ्चितलूनकेशी स्थूलोदराऽग्निदग्धवस्त्रा भूषणानीच्छति १ । द्वितीयो नरोऽजास्यो धान्यक्षेत्रवास्तुहलशकटकर्मणि दक्षश्चतुष्पदोऽयम् २ । तृतीयो नरो बृहत्कायपाद ३ ॥२॥ मिथुने आद्य स्त्री सुरूपा हीनप्रजा उच्छ्रित-

शुभस्तु सास्त्राहिपावकः पापवीक्षितः ॥ ३६ ॥ शँन्यर्केन्दुकुजाँस्त्यक्त्वा १



अत्र वृषे द्वितीयस्य कन्याद्रेष्काणस्य स्वामी बुधः सौम्यस्तस्य मीनमूर्तिस्थयोः शुक्रजीवयोश्च पूर्णा दृष्टिः, एवं पापस्वामिकत्वं पापदृष्टत्वं च भाव्यं । एवं वक्ष्यमाणे उदयास्तशुद्ध्यादौ नवांशादीनामपि सौम्यक्रूरदृष्टत्वं च भाव्यम् ॥

भुजा ऋतुमत्याभरणार्थे सादरा १ । द्वितीयो नरो गरुडास्य उद्यानस्थो वाणकवचधनुष्मान् खगोऽयम् २ । तृतीयो नरो रत्नमंडितः पंडितो वद्धतूणकवचो धनुष्मान् ३ ॥३॥ कर्के आद्यो नरो हस्तिसमाङ्गोऽश्वकंठः सूकरास्यः पत्रमूलभृत् चतुष्पदोऽयम् १ । द्वितीयः स्त्री यौवनस्था ससर्पा वनस्था २ । तृतीयो नरः सर्पवेष्टितो नौस्थः स्वर्णाभरणान्वितः ३ ॥४॥ सिंहे आद्यः शाल्मलिवृक्षोपरि गृध्रः शृगालः श्वा नरश्च मलिनवासाः अयं नरः खगश्चतुष्पदश्च १ । द्वितीयो नरोऽश्वाकृतिः कृष्णाजिनकम्वलभृत् दुर्धर्षो धनुष्मान्नताग्रनासः चतुष्पदोऽयम् २ । तृतीय ऋक्षास्यो वानरचेष्टो नरः कूर्ची कुञ्चितकेशो दंडफलामिषहस्तः चतुष्पदोऽयम् ३ ॥५॥ कन्यायामाद्यः स्त्री पुष्पपूर्णघटयुता मलिनाम्वरा गुरोः कुलं वाञ्छति १ । द्वितीयो नरो लेखिनीहस्तः श्यामो लोमशो वस्त्राङ्कितशिरा विस्तीर्णधन्वपाणिः २ । तृतीयः स्त्री गौरोच्चा सुधौताग्रदुकूलाच्छादिता कुंभकडुच्छुकहस्ता देवालयं प्रवृत्ता ३ ॥६॥ तुलायामाद्यो नरस्तुलाहस्तश्चतुष्पथस्थो मानोन्मानचतुरो भांडं विचिन्तयति १ । द्वितीयो नरो गृध्रास्यो घटान्वितः क्षुधितस्तृषितः खगोऽयम् २ । तृतीयो नरः फलामिषधरो हैमतूणवर्मभृद्वानररूपो रत्नचित्रितो धनुर्हस्तो वने मृगान् भीषयते चतुष्पदोऽयम् ३ ॥७॥ वृश्चिके आद्यः स्त्री नग्ना स्थानच्युता सर्पनिवद्धपादा मनोरमाब्धितः कूलमायाति १ । द्वितीयः स्त्री भर्तृकृते सर्पावृताङ्गी कूर्मकुंभाकृतिः स्थानसुखानि वाञ्छति २ । तृतीयो नरः सिंहरूपश्चिपिटकूर्मतुल्यास्यः अयं कूर्मश्चतुष्पदश्च ३॥८॥ धनुषि आद्यो नर आयतधन्वपाणिर्नृमुखोऽश्वकायः चतुष्पदोऽयम् १ । द्वितीयः स्त्री सुरूपाऽब्धिरत्नानि विघट्टयन्ती गौराङ्गी २ । तृतीयो नरो गौरो निषण्णो दण्डहस्तः कूर्ची कौशेयकचर्मवाही ३ ॥९॥ मकरे आद्यो नरो रोमशः सूकराकृतिः स्थूलदंष्ट्रो वन्धनभृत् रौद्रास्यः चतुष्पदोऽयम् १ । द्वितीयः स्त्री श्यामा सालङ्कारा लोहाभरणभूषितकर्णा २ । तृतीयो नरः किन्नराङ्गस्तूणी कवची धनुष्मान् सकम्वलः स्कन्धे रत्नचित्रितं कुंभं वहति ३ ॥१०॥ कुंभे आद्यो नरश्चर्मभृद्गृध्रास्यः सकम्वलः खगोऽयम् १ । द्वितीयः स्त्री मलिनाम्बरा शीर्षे भांडवाहिनी अग्निना दग्धे शकटे लोहानि गृह्णाति २ । तृतीयो नरः सिंहरूपश्च श्यामः सरोमकर्णः किरीटी त्वक्पत्रनिर्यासफलभृत् ३॥११॥ मीने आद्यो नरः स्रग्मौक्तिकशंखपाणिः साभरणो नौस्थोऽब्धिं तरति १ । द्वितीयः स्त्री गौराङ्गी नौस्थाऽब्धितः कूलं याति २ । तृतीयो नरो नग्नो भीरुश्चौराग्निभ्यां व्याकुलितः सर्पावृताङ्गो गर्तान्तिकस्थः अयं व्याकुलद्रेष्काणः ३ । इति १२ । एषां चिन्तानष्टादिप्रश्ने प्रयो-

शुभोऽन्येषां नवांशकः । लग्नवद्द्वादशांशस्तु त्रिंशांशस्तु नवांशवत् ॥३७॥
तनुः[1] कोशो[2] भटो[3] यान[4] मंत्रो[5]ऽरि[6]वर्त्म[7]जीवितर्म्[8] । मनः[9]कर्म[10]जिनो[11] मन्त्री[12] भावाः
३ स्युरुदयादयः ॥३८॥ हन्ति योधां[3]ऽऽयकर्मो[11]ऽन्यानऽसौम्यः, कर्म चासितः ।
सौम्योऽप्यरिम्, सितोऽध्वानम्, चन्द्रश्च तनुजीविते ॥३९॥ जन्मन्यनिष्टः
सौम्योऽपि न लग्नस्थः शुभो ग्रहः । तत्रेष्टदस्तु पापोऽपि यात्रालग्नस्थितः
शुभः ॥ ४० ॥ पापोऽप्यमीष्टदो जन्मलग्नर्क्षस्वामिनोः सुहृद् । मूर्तिस्थितः

जन्मकुडलिकाया शुभा ।	
रवि	३–६–११
चन्द्र	१–२–३–४–५–७–९–१०–११
मगल	३–६–११
बुध	१–२–३–४–७–९–१०–११
गुरु	१–२–३–४–५–७–९–१०–११
शुक्र	१–२–३–४–५–७–९–१०–११
शनि	३–६–११
राहु	३–६–११

सौम्योऽपि यो जन्मसमये मृत्युव्ययभवनस्थत्वादिना अशुभ स यात्रालग्ने मूर्तौ न शुभ । तत्रेष्टद इति यस्तु क्रूरोऽपि रिपु ६ लाभ ११ स्थत्वादिना जन्मनीष्टद स यात्रालग्ने मूर्तौ शुभ एव । जन्मशुभाशुभग्रहाश्च विस्तरतो जातकाज्ज्ञेया । समासेन त्वेवम्—"क्रूरास्त्रिषडायस्था सितेन्दुगुरवोऽन्तिमाष्टरिपुवर्जा । ध्यष्टान्तिमरिपुवर्जो बुध प्रशस्तो जननसमये ॥ १ ॥"

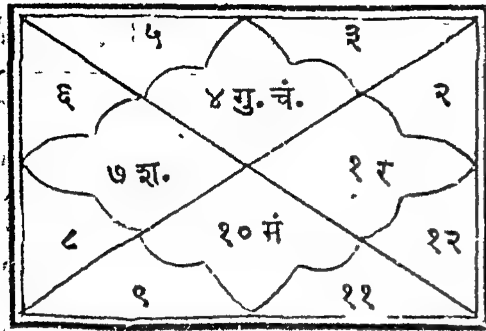
७ शुभोऽपि स्यादशुभोऽरातिरेतयोः ॥ ४१ ॥ सुहृद्दशापतेः सद्यः सफलो

जन "द्रेष्काणैस्तस्करा स्मृता" इति । रोगिप्रश्ने "गृध्रकोलोरगव्यस्थैरुदिते रोगिणो मृतिरिति" । बन्धमोक्षप्रश्ने "धृतोरगे ष्यशे सशृङ्खलपाशो बन्ध " इत्यादि । यात्रायां तु यथोपयोगस्तथोक्तमेव । शुभनाथ इति द्रेष्काणेशा प्रागुक्ता एव । शुभेक्षित इति यो द्रेष्काणो लग्नेऽधिकृतोऽस्ति तन्नामा राशिर्यानाकुडलिकाया यत्र तत्र स्थितो यदि शुभग्रहैर्दृश्येत तदा स द्रेष्काण शुभैर्दृष्ट इत्युच्यते ।

* 'लग्नेऽर्कस्य नवांशे वाहननाश कुजस्य वह्निभयम् । इन्दो प्रतापहानि शनेर्नवांशे मरणमेव' इति दैवज्ञवल्लभे ।

1 ख१०स्थशनिवर्जमुपचयगा क्रूरा सर्वगा शुभा सौम्या । हिलाऽस्ते सितमष्टमलग्नगशशिन च यात्रायाम् । 2 यात्राकाले यस्य ग्रहस्य दशाऽस्ति स दशापतिस्तस्य सुहृन्मित्रम् । विशेषस्तु—दशापतिरपि यानासमये सबलो विलोक्यते । यल्लल्ल—"यात्रा नैव दशापतावुपहते नैवास्तगे चाबले, नीचस्थे न च नैव वक्रिणि नृणा देया कदाचिद्बुधै ।" इति । दशाक्रमतत्प्रमाणतद्विभागादिस्वरूप च जातकादिभ्यो ज्ञेयम्, इह लग्नस्तुतत्वादतिविस्तरत्वाच्च न प्रतन्यते, स्थानाशून्यार्थं तु वार्षिक दिनदशाप्रमाण स्थूल दर्श्यते, तथाहि—"निजनामराशित प्रभृति गण्यते वर्तमानसक्रान्ते । गतदिवसान्ध्येत्र दिवस-

जनने बली । क्रूरोऽपि विविधो भद्रस्तनौ सौम्योऽपि नेतरः ॥ ४२ ॥
जन्मकाले विधोर्यद्वाऽन्योऽन्येनोपचयस्थिताः । तानाख्याः सौम्यवत्क्रूरा



ये ग्रहाः स्वर्क्षे स्वोच्चे स्वत्रिकोणे वा स्थिताः ३ केन्द्रेषु स्युस्ते सर्वेऽप्यन्योन्यं कारकसंज्ञाः, तेषां मध्ये दशमकेन्द्रस्थो ग्रहः शेषग्रहाणां विशिष्य कारकः, सर्वेषां चैतेषां चन्द्रयुतिष्ट्या बलवत्त्वम्, यथा कर्के लग्ने तत्स्थे चन्द्रेऽ-र्कारगुरुमन्दाः स्वस्वोच्चस्थाः सन्तो मिथः कारकाः स्युः ।

जातकोक्ताश्च कारकाः[1] ॥ ४३ ॥ जन्मलग्नेशयोस्तानः[2] कारको वाऽपि

दशाः स्युः क्रमादेताः ॥ १ ॥ रवी १ न्दु २ भौम ३ ज्ञ ४ शनी ५ ज्य ६ राहु ७ सकेतु ८ शुक्रेषु ९ नखाः २० खवाणाः ५० । अष्टाश्वि २८ षड्बाण ५६ रसाग्नि ३६ देव ३३ देवा ३३ तिशील्य ३४ भ्रहया ७० दशाहाः ॥ २ ॥" सर्वे दिनाः षष्ट्यधिका त्रिशती ३६० । "हानिं १ धनं २ रुजं ३ लक्ष्मीं ४ दैन्यं ५ लक्ष्मीं ६ च बन्धनम् ७ । भयं ८ श्रियं ९ चार्कादीनां दद्युर्दिनदशाः क्रमात् ॥ ३ ॥" अत्रायमाम्नायः—स्वनामराशौ यद्दिनेऽर्कः संक्रान्तस्तद्दिनादारभ्य वर्तमानदिनं यावद्दिना गण्यन्ते इयन्तो दिना गता इति, तत्राद्या विंशतिर्दिना रवेर्दिनदशा, अग्रे पञ्चाशद्दिना इन्दोरित्यादि, एवं गणने यस्य ग्रहस्य दिनदशा तदानीं समेति स दशापतिरिति । सद्यः सफल इति यस्तदानीं गोचरेण प्रतिकूलवेधेन वा शुभः स सद्यः सफलः, यस्तु गोचरेणानुकूलवेधेन वाऽशुभः स सद्योऽफलः । तथा जन्मपत्रिकायां यो बली, रूपवानित्यादिवदतिशायने मत्वर्थीयोऽयम्, ततो यः सर्वोत्कृष्टबल इत्यर्थः । इतर इति यो वर्तमानदशेशस्यारिः, यो वा तदानीमफलः, यो वा जन्मकाले निर्बल इति । ननु यदि जनने बलीत्युक्तं तदा जन्मनि सर्वोत्कृष्टबलोऽपि यो मृत्युस्थत्वादिनाऽनिष्टदस्तस्यापि मूर्तौ ग्राह्यत्वप्रसङ्गः । नैवम्, "जन्मन्यनिष्टः सौम्योऽपि" इत्यनेनैव तस्य निषेधभवनात् ॥

1 तथा लग्नस्थग्रहस्य दशमतुर्यस्थो ग्रहः सर्वोऽपि स्वगृहस्वोच्चस्वत्रिकोणेष्वस्थितोऽपि कारकाख्यः स्यात् । तथा लग्नं केन्द्रं वा विनाऽपि स्थितस्य ग्रहस्य यदि कश्चिद्ग्रहो दशमस्थाने स्वर्क्षोच्चत्रिकोणानामन्यतमस्थो निसर्गमैत्र्या तात्कालिकमैत्र्या च संपन्नः स्यात्तदा सोऽपि तस्य कारकाख्यः स्यात् । उक्तं च—"स्वर्क्षोच (र्क्षतुं)गमूलत्रिकोणगाः, कंटकेषु यावन्त आश्रिताः । सर्व एव तेऽन्योऽन्यकारकाः, कर्मगस्तु तेषां विशेषतः ॥ १॥" अत्रोदाहरणम्—"कर्कटोदयगते यथोडुपे, स्वोच्चगाः कुजयमार्कसूरयः । कारका निगदिताः परस्परं १, लग्नगस्य सकलोऽम्बराम्बुगः २ ॥ २ ॥" अत्र सकल इति स्वगृहोच्चत्रिकोणेष्वस्थितोऽपीति भावः । "स्वर्क्षकोणोच्चगः खेटः खेटस्य यदि कर्मगः । सुहृत्तद्गुणसंपन्नः कारकश्चापि संस्मृतः ॥ ३ ॥" 2 नायकाः स्युः प्रसूतौ ये रक्षका ये च वर्धकाः । ते क्रूरा अपि यात्रायां लग्नस्थाः शुभदा ग्रहाः' इति दैवज्ञवल्लभे, स्वरूपं चैषां बृहज्जातके ।

लग्नगः । असौम्योऽपि शुभाय स्याद्वस्तः सौम्योऽपि चान्यथा ॥ ४४ ॥ वक्री केन्द्रेऽथ तद्वर्गो लग्ने यातुर्जयापहः । गतिप्रमाणवर्णैर्वा विकृतश्च
१ नभश्चरः ॥ ४५ ॥ उत्तरान्तश्चरो भानोः शुभो नान्यस्तनौ ग्रहः । फलेन

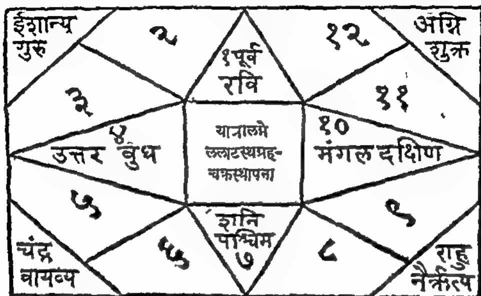
1 अर्केन्द्वोर्वक्रासम्भवाद्भौमाद्यन्यतरो यो ग्रहस्तदानीं वक्रगोऽस्ति स एकोऽपि यात्रालग्ने केन्द्रस्थो जय हन्ति, किं पुनर्द्वित्रा ? अथेति तस्यैव वक्रिणो ग्रहस्य वर्गो होराया असम्भवाद् गृहद्रेष्काणनवांशादिरूपश्चेल्लग्नेऽस्ति तदा सोऽप्यशुभ. । वक्रमार्गदिनसंख्या चेयं ज्योतिषसारे—"पणसट्ठि ६५ इक्वीसा २१ बारस अहिय सय च ११२ बावना ५२ । चउतीस सय च १३४ कमा वक्रदिणा मगलाईण ॥ १ ॥ सग सय पणाल ७४५ निणवइ ९२ चुआलसय १४४ पचसयचउवीसा ५२४ । दो अ सया चालीसा २४० मगलमाईण मग्गदिणा ॥ २ ॥" गतीत्यादि गत्यार्थविकृतोऽपि ग्रहो यात्रालग्ने मूर्तौ न शुभ , अतिचरितो ग्रहो गतिविकृत । अतिचारस्वरूप चैव श्लोकम्—"पक्ष १ दशाह २ त्रिपक्षी ३ दशाह ४ मासपट्तयी ५ । अतिचार कुजादीनामेष चारस्ति-तोऽपर ॥ १ ॥" प्रमाणेति पूर्वप्रमाणात् ह्रस्वो महान् वा खे लक्ष्यमाण प्रमाणविकृत , एव वर्णविकृतोऽपि भाव्य । लल्लस्त्वाह—"यस्य ग्रहस्य जन्मर्क्षं क्रूरग्रहोल्काद्यै पीडित स्यात्सोऽपि ग्रहो यात्रालग्ने मूर्तौ न शुभ । ग्रहजन्मर्क्षाणि चैव—"विशाखा १ कृत्तिका २ प्याति ३ श्रवणो ४ भाग्य ५ मित्र्यभम् ६ । रेवती ७ याम्य ८ मश्लेषा ९ जन्मर्क्षाण्य केत क्रमात् ॥ १ ॥" 2 इष्टेऽह्नि यत्रार्कोदयास्ते स्याता तत्स्थान सम्यग्निर्णीय चिह्नयितव्य, यत्र च विवक्षितग्रहस्योदयास्ते स्याता तदपि । एव च योऽर्कादुदीच्यामुदेत्यस्तमेति च स उत्तरचर । यश्चार्कस्थान एवोदेत्यस्तमेति च सोऽन्तश्चर । एतौ यात्रालग्ने मूर्तौ शुभौ । अन्य इति अर्काद्दक्षिणचरस्त्वशुभ । इद च मूर्तिग्रहस्वरूपमिह यद्यपि यात्रामुद्दिश्योक्तम्, तथापि विवाहादिसर्वकार्यलग्नेष्वपि योज्यम् । विशेषस्तु—"लग्नेऽर्कारौ शनेर्धाम्नि शुभावन्यत्र भङ्गदौ । शीतांशुरुदयप्राप्त सर्वकार्येषु नाशद ॥१॥ जीवशुक्रशनिस्थाने स्थितो लग्ने जयार्थद । स्थानेष्वर्केन्दुभौमानां शशिसूनुरनर्थद ॥ २ ॥ मन्दारबुधसूर्याणा स्थानेषु शुभदो गुरु । शुक्रेन्दुस्थानगो लग्ने धनयोधविनाशक ॥ ३ ॥ सौम्यस्थाने स्थित शस्तो लग्नस्थोऽन्यत्र नेष्टद । छायापुत्रो रविस्थाने प्रीतिदोऽन्यत्र नाशद ॥ ४ ॥ स्वस्थाने न शुभो मन्दो लग्नेऽन्यत्र शुभावह । यात्राया चन्द्रमा शस्तो दिग्बलेन विवर्जित ॥ ५ ॥" इति दैवज्ञवल्लभे । इत्युक्ता सार्धषट्श्लोकैर्मूर्तिस्थग्रहव्यवस्था । अथ यात्रालग्ने षड्वर्गं वारं च नियमयति–फलेनेति वर्ग षड्वर्गो यात्रादिने वारश्च तनुगो मूर्तिस्थो यो व्योमगो ग्रहस्तत्तुल्यफलो ज्ञेय । अथ भाव –जन्मन्यनिष्ट इत्यत आरभ्यैतच्छ्लोकपूर्वार्धं यावदुक्तया रीत्या यादृशो ग्रहो मूर्तौ शुभोऽशुभो वा निर्धारितस्तादृशस्यैव ग्रहस्य षड्वर्गो ग्रहहोरादिमूर्तौ शुभोऽशुभो वा ज्ञेय । यात्रादिने वारोऽप्येवमेव निर्धार्य । विशेषस्तु—"उपचयकरस्य वर्ग क्रूरस्यापि प्रशस्यते लग्ने । चन्द्रो वा तद्युक्तो न तु विपरीतस्य सौम्यस्य ॥ १ ॥ उपचयकरग्रहदिने सिद्धि-

वर्गो वारश्च तनुगव्योमगोपमः ॥ ४६ ॥ केन्द्रेषु[1] ग्रहशून्येषु लग्ने वीर्येण ।

क्रूरेऽपि यायिनां भवति । सौम्येऽप्यनुपचयकरे न भवति यात्रा शुभा यातुः ॥ २ ॥" इति लल्लः । तथा—"सौम्योऽपि न शुभं दत्ते रिपोर्वारे विलग्नपः । वारे मित्रस्य पापोऽपि भवेच्छुभफलप्रदः ॥ १ ॥ इति दैवज्ञवल्लभे । तथा येषां वारः शुभोऽशुभो वा तेषां कालहोराऽपि तथैव । तत्फलं चैवम्—"रूपं ग्रहस्य वर्गे स्वदिने द्विगुणं स्वकालहोरायाम् । त्रिगुणमरिवर्गयोगे फलस्य प्राप्यस्तृतीयांशः" ॥ १ ॥ इति शौनकः । तथा—"बलिनः कंटकसंस्था वर्षाधिपमासदिवसहोरेशाः । द्विगुणशुभाशुभफलदा यथोत्तरं ते परिज्ञेयाः ॥ १ ॥" इति लल्लः ॥

1 ग्रहशून्येष्विति प्रथमं तावदेकस्मिन्नपि केन्द्रे यदि कश्चित्सौम्यग्रहः स्यात्तदेव यात्रायामन्यकार्येषु च शुभं, न त्वन्यथा । सौम्यग्रहाभावे यद्येकमपि केन्द्रमुपचयकरेण क्रूरेणाप्यधिष्ठितं स्यात्तदापि शुभम् । सर्वकेन्द्राणां शून्यत्वं तु सर्वथाऽनिष्टम् । यदुक्तम्—"पापोऽपि कामं बलवान्नियोज्यः, केन्द्रेषु शून्यं न शिवाय केन्द्रम् ।' इति रत्नमालायाम् । विशेषस्तु-सौम्यग्रहाश्चेत्केन्द्रेषु पापग्रहयुताः स्युस्तदा महता कष्टेन यात्रा सिध्येत् । यल्लल्लः—"सौम्यैश्च पापैश्च चतुष्टयस्थैः, कृच्छ्रेण संसिद्धिमुपैति यात्रा ।" वीर्येणेति स्वामिसौम्यग्रहयुतिदृष्ट्यभावेन क्रूराणां तत्सद्भावेन च लग्नं निर्वीर्यं स्यात् । बलहीनैरिति अष्टादशधा किल ग्रहाणामबलता भुवनदीपकवृत्तावुक्ता, तथाहि—"स्व १ मित्रनीचगो २ वक्रः ३ स्वराश्यस्ता ४ ऽरिवर्गगः ५ । लग्नाद्‌द्वादशगः ६ षष्ठः ७ क्रूरैर्युक्तो ८ ऽथ वीक्षितः ९ ॥ १ ॥ याम्यो १० राह्वास्य ११ पुच्छस्थो १२ बालो १३ वृद्धो १४ ऽस्तगो १५ जितः १६ । मुथुशिले १७ मूशरिफे पापै १८ रित्यबलो ग्रहः ॥ २ ॥" अत्र नीचगा इति नीचगृहस्थो नीचांशस्थोऽपि च ग्राह्यः । वक्र इति वक्राभिमुखोऽपि वक्रवत् । स्वराश्यस्तेति स्वगृहराशेः सप्तमराशिस्थः । अरिवर्गगः शत्रोरधिशत्रोर्वा ग्रहस्य गृहहोरादिषड्कस्थः । याम्यः कर्कादिषड्करूपदक्षिणायनवर्ती । राह्वास्यपुच्छेति "यत्र ऋक्षे स्थितो राहुर्वदनं तद्विनिर्दिशेत् । मुखात्पञ्चदशे ऋक्षे तस्य पुच्छं व्यवस्थितम् ॥ १ ॥" बालः स्वल्पदिनोदितः । वृद्धोऽस्ताभिमुखः । अनेन ह्रस्वरूक्षविम्बो निर्दीप्तिकश्चेत्याद्यपि संगृहीतम् । अस्तगः रविरश्मिषु प्रवेशादस्तमितः । जितो यो ग्रहयुद्धे दक्षिणगामी, शुक्रस्तूत्तरगामी सन् जितः स्यादिति वराहः । मुथुशिले इत्यादि शीघ्रो ग्रहो मन्दगतिग्रहस्यैकांशे यदा मिलितोऽद्यापि पश्चात्स्थो वा तदा मुथुशिल इथिशालाऽपराख्यो योगः । यदा तु शीघ्रो ग्रहो मन्दगतिग्रहस्यैकांशे मिलित्वा तमंशमतिक्रम्याग्रतो याति तदा मूशरिफयोगो राश्यन्तं यावत् । यथा कल्पनया तृतीये त्रिंशांशे मन्दगतिर्गुरुरस्ति तत्रागतो रव्यादिः क्रूरग्रहो यावत्तमंशमतिक्रम्य न याति तावन्मुथुशिलः, यदा तु चतुर्थांशे गतस्तदा मूशरिफस्तावद्यावद्राश्यन्ते यातीति, एतौ च योगौ शीघ्रो ग्रहो यदि क्रूर आगत्य कुरुते तदा मन्दगतिर्ग्रहो निर्बलः स्यादिति । प्रश्नप्रकाशे तु नवधैव निर्बलत्वमुक्तं तथाहि—"पापः शीघ्रः १ शुभो वक्री २ बालो ३ वृद्धा ४ ऽरिभा ५ स्तगः ६ ।

वर्जिते । बलहीनैश्च सौम्यैः स्यादभिषेणयतो भयम् ॥ ४७ ॥ दिगीशः केन्द्रगः श्रेयान् दिग्बली मालगस्तु न । बलिनौ जन्मलग्नेशौ केन्द्रोपच- ३यगौ शुभौ ॥ ४८ ॥ सितेज्यौविन्दुरार्किज्ञतमोऽन्त्याः सूर्यमङ्गलौ ।



सौमादिसाधकाः केन्द्रोपचयेषु बलोत्कटाः ॥ ४९ ॥ पौर्वा ज्ञजीवमन्दाः स्युरपरे यायिनो ग्रहाः । सफला यायिभिर्यात्रा बलिभिः स्थितिरन्यथा ६॥ ५० ॥ चौराणां शकुनैर्यात्रा नक्षत्रैश्च द्विजन्मनाम् । मुहूर्त्तैः सिद्धयेऽ-

नीच ७ पापान्तरे ८ ऽष्टस्थ ९ इत्युक्तो बलवर्जित ॥ १ ॥ एवमन्यत्रापि यथासंभव दौर्बल्य भाव्यम् । अभिषेणयत इति सेनयाऽभिमुख प्रस्तावाद्वैरिणो विजयाय गच्छत ॥

1 दिगीश्वरो ललाटस्थो यदि वा दिग्बलान्वित । वधबन्धप्रदो यातु केन्द्रगस्तु शुभा- मह ' इति दैवज्ञवल्लभे । 2 ललाटग्रहफल चैवम्—"शस्त्राभिभय १ व्याधि २ धनक्षयो ३ बन्धन ४ मृति ५ र्व्याधि ६ । हारि ७ सैन्यविमर्दौ ८ भालगदिगधिपफल क्रमश ॥१॥" विशेषस्तु केतुरुदित सन् यातव्यदिकसमुखनताग्रो यात्रायां शुभ । तथा उपचयकरस्य ग्रहस्य दिश गच्छेत् न लपचयकरस्येति लल्ल । बलिनौ जन्मलग्नेशाविति जन्मेशलग्नेश योर्गंडान्तस्थत्व १ गोचरादिप्रातिकूल्य २ गतिप्रमाणवर्णवैकृत्य ३ सूर्यतो दक्षिणचारित्व ४ प्रागुक्ताष्टादशविधदुर्बल्लाना ५ मभावेन षड्विधबलसपन्नत्वनिर्जितरिपुत्वादीना भावेन च बलिष्ठत्व भावनीयम् । केन्द्रेति सामान्योक्तावपि सप्तमवर्जे एव केन्द्रे लग्नेश शुभ इति ज्ञेयम् । विशेषस्तु-"क्रूरावपि जन्मलग्नेशौ सौम्यवदेव व्यवहर्त्तव्यौ सर्वकार्येषु सबलत्वविधानेन" इति लल्ल ॥ 3 भाग्ये मैत्रे शीतरश्मौ सपुष्ये द्वादश्या वा शुक्रदृष्टे च लग्ने । अष्टम्यां वा तैतिलाख्ये प्रदिष्टा पूर्वाचार्यैरत्र संधानसिद्धि ' इति रत्नमालायाम् । 4 स्थायिन । 5 शान्तप्रदीप्तदिग्विभागानुरूपफलैर्मरुदेशीयवृद्धानामनुभवसिद्धैरागन्तुकशकुनै । 6 तेषां गुणे । 7 स्थिरभुजगादिभि शुद्धद्विघटिकारूपै ।

[1]न्येषां राज्ञां योगैश्च ते त्वमी ॥ ५१ ॥ [2]अर्कार्किशशिनः सिद्ध्यै राज्ञां लग्नारिमध्यगाः (१) । सितेज्यमन्दज्ञाराश्च लग्नास्तत्रिसुखारिगाः (२) ॥ ५२ ॥ [3]शुक्रज्ञार्काश्च लग्नस्वभ्रातृषु क्रमशः श्रिये (३) । लग्नारिगौ च जीवार्कौ जयदौ व्यष्टमे विधौ (४) ॥ ५३ ॥ [4]मन्दारौ त्र्यायषट्सु ज्ञसितेज्याश्चोत्कटाः श्रिये (५) । केन्द्रे च वलिनौ ज्ञेज्याविन्दौ त्वापोक्लिमेऽबले (६) ॥ ५४ ॥ [5]श्रिये विधुः सुखेऽस्ते तु सितज्ञौ (७) व्यत्ययेन वा (८) । याने त्रिकोणकेन्द्रस्थाः सौम्याः षट् आयगाः परे (९) ॥ ५५ ॥ [6]जयाय मूर्त्तौ मार्त्तण्डः सौम्यः स्वे सप्तमो विधुः (१०) । बृहस्पतिर्वा केन्द्रस्थः शेषेषु स्वायवर्तिषु (११) ॥ ५६ ॥ [7]यातुः प्राग्दक्षिणयोर्ज्ञसितान्तर्जयकरः सुखे चेन्दुः (१२) । गुरुरेकान्तर आर्के (१३) ज्ञो वा शुक्राच्च (१४) भौमाद्वा (१५) ॥ ५७ ॥ [8]गुरुर्जयाय लग्नस्थः क्रूरैर्लाभनभोगतैः (१६) । तथा चन्द्रेऽष्टमे षष्ठे शुक्रे लग्नगतो गुरुः (१७) ॥ ५८ ॥ सिद्ध्यै धीधर्मकेन्द्रेषु बुधवाक्पतिभार्गवैः । [9]योगोऽधियोगो योगाधियोगश्चैकद्विकत्रिकैः ॥५९॥ शुक्रं त्र्यायाम्बुगं पश्यन् जीवो यात्रासु केन्द्रगः । राज्ञां दत्ते जयं क्रूरैः

---

1 वैश्यशूद्रकार्वादीनाम् । तिथिवारभलग्नादिशुद्धिनिरपेक्षमपि । 2 अर्धद्वयेऽपि यथासंख्यं योजना ॥ 3 क्रमश इत्युत्तरार्धेऽपि योज्यम् । व्यष्टमे इति यदीन्दुरष्टमगृहे न स्यात् ॥ 4 उत्कटा इति यत्रतत्रस्था अपि वलिन इत्यर्थः । चन्द्रे आपोक्लिमस्थे निर्वले च सति ॥ 5 सितज्ञौ सुखे, चन्द्रोऽस्ते इति व्यत्ययः । याने इति यात्रायां श्रिये स्युरिति योगः । परे क्रूराः ॥ 6 स्वं द्वितीयं । शेषेषु क्रूरसौम्येषु सर्वेषु । एवं योगा एकादश ॥ 7 प्राच्यां दक्षिणस्यां वा चेद्यात्रा तदा ज्ञशुक्रयोर्मध्येऽन्तराले तिष्ठन्निन्दुः शुभः । परं यदि सुखे-तुर्यस्थाने स्यात्तदैव शुभः, नान्यथा । प्रतीच्युदीच्योस्तु यात्रायामयं योगो नापेक्ष्यः । तथा गुरुरेकान्तर इति शनितो गुरुरेकान्तरगृहे स्थित इत्येको योगः । ज्ञो वेति शुक्राद् बुध एकान्तरगृहे स्थित इति द्वितीयः । भौमाद् बुध एकान्तरगृहे स्थित इति तृतीयः । दैवज्ञवल्लभेऽप्युक्तम्—“भृगुजादथवा महीसुताद् बुध एकान्तरभे स्थितो यदा । रविजादथवा गुरुस्तदा, व्रजतो यान्त्यरयः क्षयं रणे ॥ १ ॥” तदेवमत्र श्लोके योगाश्चत्वारः । 8 एते सर्वे प्रत्येकयोगाः सप्तदश ॥ 9 योगेन यो याति नृपोऽरिदेशं सुखेन सोऽभ्येत्यऽधियोगयाता । आप्नोति कीर्त्तिं विजयं धनं च, योगाधियोगेन महीमशेषाम्' ॥ इति दैवज्ञवल्लभे । विशेषाम्नायस्तु सुधीशृङ्गारवार्त्तिकेऽवलोक्यः ।

कलत्रादित्रिकायन्त्यगैः ॥ ६० ॥ बुधो वपुःसुसद्वेष्विन्योर्मस्थो वीक्षितः शुभैः। जयाय राज्ञा पापेषु लग्नास्तव्ययवर्जितेषु ॥ ६१ ॥ इति सप्तरूपकार्थः सकलश्लोकत्रयेण चोक्तेषु। योगेषु, राजयोगेष्वपि शुभदा भूभुजां यात्रा ॥ ६२ ॥ मंकलेष्वपि कार्येषु यात्रायां च विशेषतः। निमित्तान्यप्यतिक्रम्य चित्तोत्साहः प्रगल्भते ॥ ६३ ॥ ऐन्द्र्यादिदिक्षु मातङ्गैरथैश्वैनरवाहनैः। व्रजेत्क्रमेण भूपालो दिक्पालोल्लासिमानसः ॥ ६४ ॥

॥ इति गमद्वारम् ॥ ८ ॥

वास्तु नव्यं विभूत्यायुःकीर्तिकामो निवेशयेत्। ज्ञात्वाऽऽयर्क्षव्ययांशांस्तु चन्द्रतारावले अपि ॥ ६५ ॥ ध्वजो धूमो हरिः श्वा गौः खरो हस्ती द्विकः क्रमात्। पूर्वादिवलिनोऽष्टाया विषमास्तेषु

"नृप सिंह गज चैव खेटकर्नटकोट्टयो। द्विप पुन प्रयोक्तव्यो वापीकूपमरस्सु च ॥ १ ॥ मृगेन्द्रमासने दद्याच्छयनेषु गज पुन। वृष भोजनपात्रेषु च्छनादिषु पुनर्ध्वजम् ॥ २ ॥ अमिवेश्मसु सर्वेषु गृहे वह्न्युपजीविनाम्। धूम नियोजयेत् किंचिच्छ्वान म्लेच्छादिजातिषु ॥ ३ ॥ खरो वेश्यागृहे शस्तो ध्वाक्ष शेषकुटीषु च। वृष सिंहो गजश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु ॥ ४ ॥' इत्यादि विवेकविलासे

काक ८ ईशान	ध्वज १ पूर्व	धूम्र २ अग्नि
गज ७ उत्तर	श्री	सिंह ३ दक्षिण
वायव्य खर ६	पश्चिम वृष ५	नैर्ऋत्य श्वा ४

1 वृत्तार्द्ध। 2 बृहज्जातकोक्तमेषामतिविस्तृतस्वरूपं वार्त्तिकादवसेयम्। 3 यद्यपि निमित्तं किल दैहिकं वामदक्षिणाङ्गस्फुरणादि। उक्तं हि दैवज्ञवल्लभे—"स्पन्दनं दक्षिणे पार्श्वे विधृष्टहृदये हितम्। वामपार्श्वे तु नारीणां मनसश्चानुकूलता ॥ १ ॥" अङ्गस्पर्शादि लिङ्गितम्, दुर्गादिश्च शकुनं, लग्नादि [illegible] ज्योतिषम्, तथाप्यत्राभेदरूपनया सर्वेषां निमित्तत्वमेवोचे। चित्तोत्साह इति "अङ्गिरा मनोत्साहं" इत्युक्ते प्रागविसंवादितयाऽनुभूतं प्रातिभज्ञानं लग्नादिभ्योऽपि बलवदित्यर्थः ॥ 4 इन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवायुकुबेरेशाना दिक्पतयः। 'ध्यायन्नाशाधीश्वरं हृष्टचेताः क्षोणीपालो निर्विलम्बं प्रयायात्' इति रत्नमालायाम्। 5 वास्तु गृहहट्टप्रासादादि। विभूतीत्यादि अनेनेदमसूचि—'कार्यसिद्धिसुखायूंषि निमित्तशकुनादिभिः। ज्ञात्वा प्रष्टुर्गृहारम्भे कीर्तयेत् समयं सुधीः ॥ १ ॥" अनादिशब्दादङ्गस्पर्शादि गृह्यते। ननु कथमङ्गस्पर्शनेन निर्णयः ? उच्यते—"शीर्षं १ मुखं २ बाहु ३ हृदयो ४ दराणि ५ कटि ६ वस्ति ७ गुह्य ८ संज्ञानि। ऊरू ९ जानु १० जंघे ११ चरणा १२ विति राशयोऽजाद्याः ॥ १ ॥" इति लघुजातके। अत्राजाद्या इत्युक्तं तथापि यत्तात्कालिकं लग्नं तदेव शिरः, ततोऽन्याङ्गानि। ततश्च—"कालपुंसो यदङ्गं तत्स्व(प्र)ष्टा स्पृशति चेच्छुभे। युक्तं विलोकितं वापि सद्मनिर्माणमादिशेत् ॥१॥" इति दैवज्ञवल्लभे॥

शोभनाः ॥ ६६ ॥ ध्वजः पदे तु सिंहस्य तौ गजस्य वृषस्य ते । एवं निवेशमर्हन्ति स्वतोऽन्यत्र वृषस्तु न ॥ ६७ ॥ आयो[1] दैर्घ्यान्ययोर्घातः फलमष्टहृतेऽधिकः । फलमष्टगुणं भाप्ते[२७] भं तत्राष्टहृते व्ययः ॥६८॥ फले[2] ३ व्ययेन वेश्माख्याक्षरैश्चाढ्ये त्रिभाजिते । अंशाः शक्रान्त[१]कक्ष्मापा[३]स्तेषु स्याद्धमो यमः ॥ ६९ ॥ ध्रुवं[3][१] धन्यं[२] जयं[३] नन्दं[४] खरं[५] कान्तं[६] मनोरमम्[७] । सुमुखं[८] दुर्मुखं[९] क्रूरं[१०] सुपक्षं[११] धनदं[१२] क्षयम्[१३] ॥ ७० ॥ आक्रन्दं[१४] विपुलं[१५] ६

---

1 यव ६ अंगुल=१ । २४ अंगुल=हाथ १ । चारहाथ=दंड १ । "न हस्तमानेन गुणान्वितं स्याद्यदा तदा तद्गणितोक्तयुक्त्या । प्रदाय हित्वा यदि वाङ्गुलानि, प्रसाधयेत्क्षेत्रफलं शुभायम् ॥ १ ॥" अत्र शुभायमित्युपलक्षणं, तेन नक्षत्रावपि यथा तस्मिन् गृहेऽनुकूलमुत्पद्यते तथा क्षेत्रफलं साध्यम् । नक्षत्रानुकूल्यप्रकारश्चाग्रे वक्ष्यते—"प्रारब्धं संमुखे चन्द्रे" (७१ पृष्ठे) इत्यादिना । विशेषस्तु—"गृहेषु कर्मिकहस्तेन मानं स्वामिकरेण वा । देवतानां तु धिष्ण्येषु कर्मिहस्तेन केवलम् ॥१॥" अत्र कर्मिहस्तः कांबिक (कार्मिक)-हस्त इत्यर्थः । तथा देवगृहे भित्तिबाहुल्यं क्षेत्रफलमध्ये गण्यते, अन्यत्र तु भित्तयः क्षेत्रफलात् पृथग्गण्याः । उक्तं च—"क्षेत्रफलान्तर्भित्तीर्देवगृहेऽपि प्रकारयेद्विद्वान् । आक्रम्य बाह्यभूमिं क्षेत्राद्भित्तीर्नृणां गेहे ॥ १ ॥" इति व्यवहारप्रकाशे । इत्युक्ता आयाः । अथ जन्मभम्—तत्र सामान्येन वास्तुनस्तावज्जन्मभं कृत्तिका । यदुक्तं व्यवहारप्रकाशे—"भाद्रपदतृतीयायां शनिदिवसे कृत्तिकाप्रथमपादे । व्यतिपाते रात्र्यादौ विष्ट्यां वास्तोः समुत्पत्तिः ॥ १ ॥" इष्टवास्तुनस्तु जन्मभानयनमेवम्—फलमष्टगुणमिति अधिकशब्दोऽग्रे सर्वत्र संबध्यते, फलाङ्कोऽष्टगुणो भाप्ते इति भैः सप्तविंशत्या भागे यदधिकं शेषं तिष्ठेत्तदिष्टवास्तुनो जन्मभम् । अस्मादेव भात् गृहाणां स्वामिना सह षडष्टमकादि चिन्त्यते । तत्राष्टेति । तस्मिन् भाङ्केऽष्टभिर्भक्ते शेषाङ्केन व्ययः स्यात्, अष्टभिर्भागाप्राप्तौ तु भाङ्क एव व्ययाङ्कः, व्ययश्च त्रेधा—पैशाच १ यक्ष २ राक्षस ३ भेदात् । यत्सारंगः—"पैशाचस्तु समायः स्याद्राक्षसश्चाधिके व्यये । आयात्तूनतरो यक्षो व्ययः श्रेष्ठोऽष्टधा लयम् ॥ २ ॥ शान्तः १ क्रूरः २ प्रद्योतश्च ३ श्रेयान ४ थ मनोरमः ५ । श्रीवत्सो ६ विभवश्चैव ७ चिन्तात्मको ८ व्ययोऽष्टमः ॥ २ ॥" अत्रैकशेषे शान्तो व्ययः, द्विशेषे क्रूरः यावत् शून्यशेषे चिन्तात्मक इति भावना ॥ 2 क्षेत्रफलाङ्के व्ययाङ्के तद्गृहनामाक्षरसंख्यां च क्षिप्त्वा त्रिभिर्भागे यच्छेषं सोऽंशः । तथाहि—एकशेषे इन्द्रांशः द्विशेषे यमांशः शून्यशेषे राजांशः ॥ 3 एताः किल ध्रुवादिसंज्ञाः सान्वर्थाः, तेन खर १ दुर्मुख २ क्रूर ३ क्षया ४ क्रन्दा ५ ख्यानि गृहाणि अशुभानि । तदुक्तं वास्तुशास्त्रे—"स्थैर्यं १ धनं २ जयः ३ पुत्रा ४ दारिद्र्यं ५ सर्वसंपदः ६ । मनोह्लादः ७ श्रियो ८ युद्धं ९ वैषम्यं १० बान्धवा ११ धनम् १२ ॥ १ ॥ क्षयश्च १३ मृत्यु १४ रारोग्यं १५ सर्वसंपदि १६ ति क्रमात् । ध्रुवादीनां फलं ज्ञेयं" इति । केचित्सुपक्षस्थाने विपक्षनामाहुः । पञ्चानि गृहाणि ॥

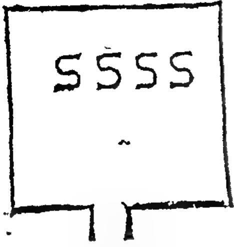
चैव विजय[१६] चेति षोडश। सम्प्रत्यमीषां पस्त्यानां प्रस्तारः प्रतिपाद्यते ७१ युग्मम्॥ गुरोरधो लघु न्यस्येत् पृष्ठे तस्य पुनर्गुरून्। अग्रतस्तूर्ध्ववदेयाद्यावत्सर्वलघुर्भवेत्॥ ७२॥ पूर्वादितो गृहद्वारादिक्ष्वलिन्दैर्लघूदितैः।

प्रस्तारस्थापना	१ SSSS	५ SSIS	९ SSSI	१३ SSII
	२ ISSS	६ ISIS	१० ISSI	१४ ISII
	३ SISS	७ SIIS	११ SISI	१५ SIII
	४ IISS	८ IIIS	१२ IISI	१६ IIII

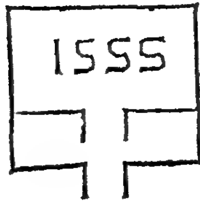
४ प्रदक्षिणस्थैर्वेश्मानि स्युर्ध्रुवादीनि षोडश॥ ७३॥ प्रारब्धं सम्मुखे चन्द्रे

1 यस्यां दिशि गृहद्वारम्। 'पूर्वादिदिग्विनिर्देश्या गृहद्वारव्यपेक्षया। भास्करोदयदिक्पूर्वा न विज्ञेया यथा क्षुते' इति विवेकविलासे। 'गृहस्य मुखतः प्राचीं प्रकल्प्य तत्प्रदक्षिणम्। पर्यटद्भिरलिन्दैः स्युः प्रस्ताराद्वेश्मनां भिदा' इति दैवज्ञवल्लभे। 2 परिघचक्रवत् कृत्तिकादीनि सप्त सप्त भानि चतुर्दिक्षु न्यस्य यत्र गृहस्योत्पद्यमानमस्ति तद्विचार्यते, यदि तच्च गृहस्य द्वारदिशि समेति तदा तस्य गृहस्य सम्मुखश्चन्द्रः स्यात्, स चाशुभः, यतोऽग्रतःस्थे चन्द्रे कर्तुस्तत्र न निवासः। यदि तु पश्चात्स्यभित्तिदिशि समेति तदेन्दुः पृष्ठस्थः स्यात्, सोऽप्यशुभः। यतः पृष्ठस्थेन्दौ चौरकृतानि खात्राणि बहुशः पतन्ति। यदि तूभयपार्श्वभित्तिदिशोः समेति तदा भव्यम्। प्रासादेषु तु सम्मुखेन्दुः शुभाय। उक्तं च वास्तुशास्त्रे–प्रासादनृपसौधश्रीगृहेषु पुरतः शशी"। अत एवात्र गृहीत्युक्तम्। इति चन्द्रबलम्। प्रीतिषडष्टमकादिकं राशिबलमपि तत्त्वतश्चन्द्रबलमेव। ताराबलं पृथग् लिह नोक्तं, परं नक्षत्रकथने तदपि सुज्ञातत्वात्सूचितं ज्ञेयम्। तथाहि–गुरुशिष्यादिवदत्रापि त्रिपञ्चसप्तमी तारा त्याज्या, केवलं तत्र मिथो गण्यते, इह तु गृहेशभाद् गृहभं यावद्गण्यं, गृहेशस्यैव प्रीतेरिष्टत्वात्। आह च सारंगः—"गणयेत् स्वामिनक्षत्राद्यावद्धिष्ण्यं गृहस्य च। नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं तारा प्रकीर्तिता॥ १॥ शान्ता १ मनोरमा २ क्रूरा ३ विजया ४ कलहोद्भवा ५। पद्मिनी ६ राक्षसी ७ वीरा ८ आनन्दा ९ चेति तारकाः॥ २॥ अथायाद्या उदाह्रियन्ते–यथा कस्यचिद् गृहस्य दैर्घ्ये सप्त हस्ता नवाङ्गुलानि च=हस्त ७ अंगुल ९। विस्तारश्च पञ्च हस्ताः सप्ताङ्गुलानि= हस्त ५ अं ७। द्वावपि हस्ताङ्कौ चतुर्विंशत्या सगुण्याङ्गुलानि मध्ये योज्यन्ते, जातो दैर्घ्याङ्कः सप्तसप्तत्यधिकं शतमङ्गुलानि १७७। विस्ताराङ्कस्तु सप्तविंशं शतं १२७। द्वयोरप्यङ्कयोर्मिथो घाते जातं द्वाविंशतिसहस्रा चतुःशत्येकोनाशीतिश्च २२४७९, इदं क्षेत्रफलम्। अस्याष्टभिर्भागे शेषं सप्त ७। सप्तमो गजायस्तस्य गृहस्येत्यागतम् १। अथ भ—क्षेत्रफलं २२४७९ मष्टभिर्गुणितं जातं लक्षमेकोनाशीतिसहस्रा अष्टशती द्वात्रिंशच्च १७९८३२। अस्य सप्तविंशत्या २७ भागे शेषं द्वादश १२। अश्विनीतो द्वादश भमुत्तर-

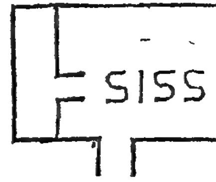
ध्रुव १



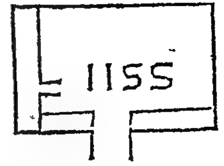
धन्य २



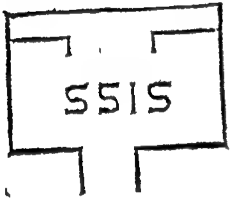
जय ३



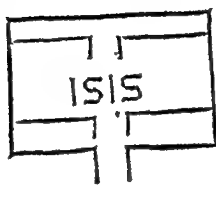
नन्द ४



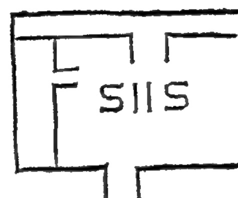
खर ५



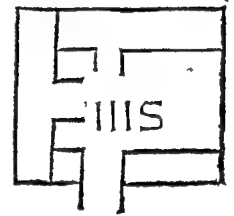
कान्त ६



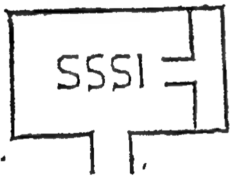
मनोरम ७



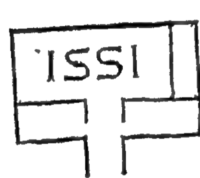
सुमुख ८



दुर्मुख ९



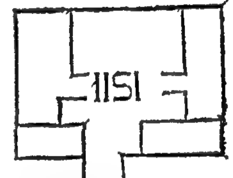
क्रूर १०



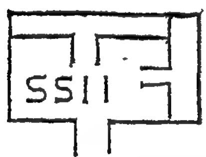
सुपक्ष
विपक्ष ११



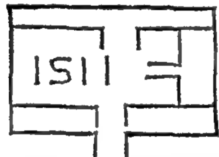
धनद १२



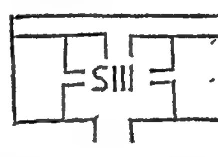
क्षय १३



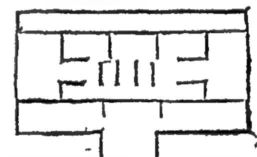
आक्रन्द १४



विपुल १५



विजय १६



न वस्तुं वास्तु कल्प्यते । पृष्ठस्थे खात(त्र) पाताय द्वयोस्तेन त्यजेद् गृही ॥ ७४ ॥ वैशाखे[1] श्रावणे मार्गे पौषे फाल्गुन एव च । कुर्वीत

फल्गुनी तस्य गृहस्येत्यागतम् । तच्च गृहं कल्पनया पूर्वाभिमुखं, तेनोत्तरफल्गुनी भं दक्षिणभित्तौ समागतत्वाद्व्ययम् २ । अथ व्ययः—भाङ्को द्वादश, तस्याष्टभिर्भागे शेषं चत्वारः ४, चतुर्थः श्रेयान् व्ययः ३ । अथांशः—तस्य गृहस्य कल्पनया ध्रुवसंज्ञा, तद्वर्णाङ्कौ द्वौ, व्ययाङ्कश्च चत्वारः, आभ्यां योजितं क्षेत्रफलं जातं २२४८५ । अस्य त्रिभिर्भागे शून्यशेषत्वाद्राजांशस्तद्गृहस्य ४ । चन्द्रबलं नक्षत्रोक्त्यवसरे उक्तम् ५ । राशिबलं लग्ने वक्ष्यते । ताराबलं त्वेवम्—गृहेशस्य जन्मभं कल्पनया धनिष्ठा, ततो गणने उत्तरफल्गुन्यष्टमी तारा ६ ॥

1 वास्तुप्रारंभमिति सूत्रपातखातादिकर्मकरणेनेत्यर्थः । न त्विति, यदुक्तं—"शोकं १ धान्यं २ मृत्युदं ३ पञ्चतां च ४, स्वार्तिं ५ नैःस्व्यं ६ संगरं ७ वित्तनाशम् ८ । स्वं ९ श्रीप्राप्तिं १० वह्निभीतिं ११ च लक्ष्मीं १२, कुर्युश्चैत्राद्या गृहारंभकाले ॥ १ ॥" इति दैवज्ञवल्लभे । नवरमेते शुक्लप्रतिपदाद्याश्चान्द्रमासा एव ग्राह्याः ॥

वास्तुप्रारभं न तु शेषेषु सप्तसु ॥ ७५ ॥ धामारभेत्रोत्तरदक्षिणास्यं, तुलालिमेषर्षभभाजि भानौ । प्राक्पश्चिमास्यं मृगकुम्भकर्कसिंहस्थिते द्व्यंगगते न किञ्चित् ॥ ७६ ॥ भाद्रादित्रित्रिमासेषु पूर्वादिषु चतुर्दिशम् । भवे-
४ द्वास्तोः शिरः पृष्ठ पुच्छं कुक्षिरिति क्रमात् ॥ ७७ ॥ [3]समाधिकव्यय

---

1 तुलालीत्याद्युक्तेऽपि पूर्वोक्तचान्द्रमासपञ्चके एव, न शेषमासेष्विति स्वय ज्ञेयम् । द्व्यगा द्विस्वभावा राशय । न किञ्चिदिति चतुर्दिग्मुखमपि नारभेतेत्यथ । 'मेषवृषसिंहस्थेऽर्के पूर्वामुखे गेहे कृते राजभय । वृषकन्यामकरस्थेऽर्के दक्षिणामुखे गेहे कृते पुत्रादिमृत्यु । मिथुनतुलाकुभस्थेऽर्के पश्चिमामुखे गेहे कृते सतापादि । कर्कवृश्चिकमीनस्थेऽर्के उत्तरामुखे गेहे कृते धुलक्षय" इति तु नारचन्द्रटिप्पनके ॥ 2 अत्र वास्तुनो दक्षिणपार्श्वोपपीड सुप्तस्य नागस्याकारेण स्थापना, ततो भाद्रपदादिमासत्रिके प्राच्या वास्तो शिर, दक्षिणस्या पृष्ठ, पश्चिमायां पुच्छ, उत्तरस्या कुक्षि । मार्गादिमासत्रिके दक्षिणादिचतुर्दिक्षु शीर्षादीनि, फाल्गुनात्रिके पश्चिमादिचतुर्दिक्षु, ज्येष्ठादिमासत्रिके तूत्तरादिचतुर्दिक्षु । अय भाव –कुक्षावेव प्रथम खननारभ कार्य, नान्यदिक्षु । यदुक्त—"शिर खनेन्मातृपितॄन्निहन्यात्, खनेच्च पृष्ठे भयरोगपीडा । पुच्छ खनेत्स्त्रीशुभगोत्रहानि, स्त्रीपुत्ररत्नान्नवसूनि कुक्षौ ॥ १ ॥" इति दैवज्ञवल्लभे । केचिद्वास्तोर्वत्सनामाहु । अनेन च वास्तोरङ्गादिक्कथनेन खातादौ दिग्नियम उक्त । विदिग्नियम पुनरेवम्—"ईशानादिषु कोणेषु वृषादीना त्रिके त्रिके । शेषाहेराननं त्याज्य विलोमेन प्रसर्पत ॥१॥" अस्यार्थ – सहारेण शेषस्त्रिभिस्त्रिभिर्मासैर्भ्रमति, ततो यदा मासत्रय तन्मुखमीशाने तदा आग्नेये मासत्रय नाभि, नैर्ऋते मासत्रय पुच्छ, वायव्य मुत्कल, श्रेय । यदा वायव्ये मुख तदैशाने नाभि, आग्नेये पुच्छ, नैर्ऋत मुत्कल, एव सहारेण शेषो भ्रमति । वृषादित्रिके । ईशाने मुखम्, सिंहादित्रिके वायव्ये, वृश्चिकादित्रिके नैर्ऋते, कुम्भादित्रिके त्वाग्नेये मुखम् एव च—"त्रिदिक्त्रय स्पृशंस्तिष्ठेत् खवक्त्र १ नाभि २ पुच्छकै ३ । शेषस्त्रितय त्यक्त्वा भूखातकार्यमाचरेत् ॥ १ ॥ नाभौ च म्रियते भार्या धन पुच्छे मुखे पति । इति मत्वा शिलान्यासे भूखाते तत्त्रय त्यजेत् ॥ २ ॥" इति वास्तुशास्त्रे ॥ 3 यत्रायेन समोऽधिको वा व्ययस्तद्गृह त्याज्यमिति सर्वत्र भाव्यम् । एतेन व्ययादधिक आय श्रेष्ठ, सोऽपि विषमोऽतिश्रेष्ठ. स्थिरत्वात् । यदुक्त —"कुर्यात् स्थिराधिकाय स्वयोनिम शुद्धताराशम्" । इति । यस्य गृहस्य नाम कर्तुर्नाम्ना समम् । यत्र यमाशोत्पत्ति । यस्य राशिना सह स्वामिराशे शत्रुषडष्टमक द्विद्वादशादिकमुत्पद्यते । यस्य च तारा स्वामितारातस्त्रिपञ्चसप्तमी स्यात् । चकाराद्यस्य भ रक्षोगणे स्वामिभयोन्या सह विरुद्धबलिष्ठयोनिक वा, तद्गृह त्याज्यम् । यदुक्त —"आयविरुद्धे भवने न सुख षडष्टके स्थिते मरणम् । न धन द्विद्वादशके नवपञ्चमके त्वपत्यमृति ॥ १ ॥ निधन सप्तमतारे पञ्चमतारे च तेजसो हानि । विपदस्तृतीयतारे यमाशके गृहपतेर्मृत्यु ॥ २ ॥" नाडीवेधस्तत्र

कर्तुः समनामयमांशकम् । विरुद्धराशितारं च विनाऽन्यद्वेश्म शोभनम्
॥ ७८ ॥ क्रमाद्विप्रादिवर्णानां विषमायैर्ध्वजादिभिः । धीमद्भिर्धाम
निर्दिष्टं प्रतीच्यादिमुखं क्रमात् ॥ ७९ ॥ ये गृहेऽलिन्दनिर्यूहनिर्गमाद्या- २
श्चतुर्दिशम् । न तेष्वायादिकं योज्यं बाह्यभूपासु वास्तुनः ॥ ८० ॥
सूत्रस्य सिद्धिर्वसु[1]नाथहस्तमैत्रस्थिरस्वातिशतर्क्षपुष्यैः । न्यासः शिलायाः
करपुष्यमार्गपौष्णध्रुवेषु श्रवणे च शस्तः ॥ ८१ ॥ चरादन्यत्र[2] लग्नेन्द्वोः ६
शुभैः संयुक्तदृष्टयोः । [१०]कर्मस्थितेषु सौम्येषु गेहारंभः शुभावहः ॥ ८२ ॥
केन्द्र[3]त्रिकोणगैः सौम्यैः क्रूरैः शत्रुत्रिलाभगैः । शुभाय भवनारंभोऽष्टमः ८

श्रेष्ठ एव, तद्भावे योनिविरोधादिदोषाणामप्यदुष्टत्वसंभवात् । नन्वस्त्वेवं, परं यत्र गृहे द्विपादं त्रिपादं वा भं स्यात्तत्र कथं गृहस्य राशिः कल्प्यते, तत्कल्पनां च विना कथं षडष्टमकादिर्विचार्यते ? उच्यते–तदा भपाद आनीयते । तथाहि—"क्षेत्रफले रद ३२ गुणिते भक्ते वस्वभ्रभूमिभिः १०८ शेषात् । व्येकान्नवभिः शेषं पादो लब्धं वृषाद्भगणः ॥ १ ॥" इति व्यवहारप्रकाशे । उदाहृतगृहस्य भमुत्तराफल्गुनीति त्रिपादं, ततस्तत्रैवास्यार्थो भाव्यते–प्रागानीतं क्षेत्रफलं २२४७९, इदं द्वात्रिंशता गुणितं जातं सप्तलक्षा एकोनविंशतिसहस्रास्त्रिशत्यष्टाविंशतिश्च ७१९३२८ । एषामष्टशतेन भागे शेषमष्टचत्वारिंशत् ४८ । व्येकं ४७ । तस्य नवभिर्भागे लब्धं पञ्च । वृषात् पञ्चमो राशिः कन्या । शेषं च द्वौ । उत्तरफल्गुनीभस्य द्वितीयः पादः तस्य गृहस्येत्यागतम् । ततश्च धनिकस्य धनिष्ठोत्तरार्धजन्वा जन्मराशिः कुंभः, स च विषमः तस्मादष्टमस्य कन्याराशेः प्रीतिषडष्टमकं "ओजात्स्यादष्टमे प्रीतिः" इत्युक्तेः ॥

1 धनिष्ठा। तिथिवारशुद्धिस्तु रिक्तादिवर्जनात्स्फुटैव। रविवारस्त्विष्टः। 2 स्थिरे द्विस्वभावे वा लग्ने। चन्द्रेऽपि च स्थिरद्विस्वभावकराशिस्थे। 3 मृत्यवे इति गृहस्वामिन इति शेषः। विशेषस्तु—"गुरुर्लग्ने जले शुक्रः स्मरे ज्ञः सहजे कुजः । रिपौ भानुर्यदा वर्षशतायुः स्याद्गृहं तदा ॥ १ ॥ सितो लग्ने गुरुः केन्द्रे खे बुधो रविरायगः । निवेशे यस्य तस्यायुर्वेश्मनः शरदां शतम् ॥ २ ॥ त्रिशत्रुसुतलग्नस्थैः सूर्यारेज्यसितैर्भवेत् । प्रारंभः सद्मनो यस्य तस्यायुर्द्वे समाशते ॥ ३ ॥ व्योम्नि चन्द्रः सुखे जीवो लाभे भौमशनैश्चरौ । यस्य धाम्नः समाशीतिं स्थितिस्तस्य श्रिया युता ॥ ४ ॥ स्वोच्चस्थे लग्नगे शुक्रे १ हिबुकस्थेऽथवा गुरौ २ । स्वोच्चे मन्देऽथवा लाभे ३ धाम्नः सश्रीः स्थितिश्चिरम् ॥ ५ ॥" चिरमिति अमितायुरित्यर्थः । येऽमी गृहारंभलग्ने विशेषा उच्यमानाः सन्ति ते जिनालयादिप्रारंभलग्नेष्वपि योज्याः । तथा—"स्वर्क्षे चन्द्रे विलग्नस्थे जीवे कंटकवर्तिनि । भवेल्लक्ष्मीयुते धाम्नि भूरिकालमवस्थितिः ॥ ६ ॥ स्वमित्रोच्चगृहांशस्थैस्तद्वंश्याश्चिरमासते । खगैरन्यगतैरन्ये नीचगैश्चापि निर्धनाः ॥ ७ ॥ अनस्तगैः सितेज्येन्दुजन्मराशिविलग्नपैः । स्वोच्च-

क्रूरस्तु मृत्यवे ॥ ८३ ॥ वर्णेशो दुर्बलः कुर्यादानर्पोऽन्यहस्तगम् । एको-
ऽपि धूनैकर्मस्थः परांशे स्याद्यदि ग्रहः ॥ ८४ ॥ गृहप्रवेशं सुविनीतवेषः,
२ सौम्येऽयने वासरपूर्वभागे कुर्याद्विधायालयदेवतार्चां, कल्याणधीभूतबलि-
क्रिया च ॥ ८५ ॥ प्रविशेद्वेश्म वारेषु हित्वार्कक्षितिनन्दनौ । भैश्च
पुष्यध्रुवस्वातिधनिष्ठामृदुवारुणैः ॥ ८६ ॥ विधाय वामतः सूर्यं पूर्णकुम्भ-
६ पुरस्सरः । गृहं यद्दिङ्मुखं तद्दिग्द्वारधिष्ण्ये विशेषतः ॥ ८७ ॥
जन्मराशिविलग्नाभ्यां प्रथमोपचयस्थितम् । लग्नं स्थिरं तदंशाश्च प्रवेशे
८ सद्भिरिष्यते ॥ ८८ ॥ ॥ इति वास्तुद्वारम् ॥ ९ ॥ इति वार्त्तिकानुसारेण
चतुर्थो विमर्शः समाप्तः ।

स्वक्षेत्रभागस्थभवेन्द्रीसांख्यद गृहम् ॥ ८ ॥ गृहिर्णान्दो गृहस्थोऽर्के गुरौ सौख्यं सिते धनम् । विपत्ते नाशमायाति नीचगेऽस्तगतेऽपि च ॥ ९ ॥" इति दैवज्ञवल्लभे । तथा— "गृहेषु यो विधिः कार्यो निवेशनप्रवेशयोः । स एव विदुषा कार्यो देवतायतनेष्वपि ॥ १ ॥" इति व्यवहारप्रकाशे ।

1 परकीयनवांशे । 2 उत्तरायने । 3 चन्द्रे गोचराष्टकवर्गविधिनाऽनुकूलेऽरक्ततिथौ निष्कमादियोगाभावे चेति स्वयमूह्यम् । 4 रोगरक्तप्रकोपकारित्वात् । 5 "विशाखासु राजीसुतो दारुणेषु, प्रणाशं प्रयात्युग्रभेषु क्षितीशः । गृहं दह्यते वह्निना वह्निधिष्ण्ये, चरे क्षिप्रधिष्ण्येश्च भूयोऽपि यात्रा ॥१॥" इति दैवज्ञवल्लभे । 6 पूर्णकुम्भेति जलकलशानमत कृत्वेत्यर्थः । गृहं यद्दिङ्मुखमिति अयं भावः—पूर्वाभिमुखे गृहे पूर्वद्वारकेषु कृत्तिकादिसप्तभेषु प्रवेष्टुमधिकारः, तेन पूर्वोक्तगुणयुतमपि प्रवेशभं यदि गृहाभिमुखदिग्द्वारकं स्यात्तदाऽतीव शुभं । विशेषस्तु—"सर्वग्रहैर्विमुक्तं प्रवेशभं शस्यते प्रयत्नेन । कैश्चित्सौम्यसमेतं शुभप्रदं कीर्तितं मुनिभिः ॥ १ ॥" इति लल्लः । तथा नव्यगृहप्रवेशे शुक्रः संमुखस्त्याज्यः । यत् त्रिविक्रमः—"त्यजेत् कुमारीः प्रस्थाने शुक्रज्ञौ गृहवेशके । यानासु च नवोढस्त्रीवर्जं संमुखदक्षिणौ ॥ १ ॥" अत्र गृहवेशके इति नव्यगृहप्रवेशे ॥ 7 प्रथमं जन्मराशिजन्मलग्नरूपमेव लग्नं प्रवेशे श्रेयः । यल्लः—"स्वनक्षत्रे स्वलग्ने वा स्वमुहूर्ते स्वके तिथौ । गृहप्रवेशमङ्गल्यं सर्वमेतत्तु कारयेत् ॥ १ ॥" क्षुरकर्म विवादं च यात्रां चैव न कारयेत् ।" ताभ्यामुपचयस्थोऽपि राशिर्लग्ने शस्तः । यल्लः—"आरोग्यदो १ धनहरो २ धनदः ३ सुखघ्नः ४, पुत्रान्तको ५ ऽरिगणहा ६ ऽथ नितम्बिनीघ्नः ७ । प्राणान्तकृत् ८ पिटकदो ९ ऽर्थं १० धनौघ ११ भीदो १२, जन्मर्क्षतस्तदुदयाच्च विलग्नराशिः ॥ १ ॥" स्थिरमिति सामान्योक्तेऽपि ग्राम्यं स्थिरं ग्राह्यं, न त्वारण्यम् । अनेन वृषकुम्भयोरन्यतरे लग्ने तन्नवांशे च प्रवेशः श्रेष्ठः, तयोरेव ग्राम्यत्वादिति भावः । तदंशाश्चेति चकाराद्द्विस्वभावात्रपि लग्नादौ प्रवेशो दुष्टो न । चराणामेव लग्नांशानां दोषोक्तेः, तथाहि—"पुनः प्रयाणं मेषे स्यान्मृत्युः कर्के तुले रुजः । धान्यनाशो मृगे लग्नैरंशैश्च फलमीदृशम् ॥ १ ॥"

दीक्षा शुक्रास्तेऽपि न दुष्टेति दिक्शुद्धिग्रंथे

ग्रहसंस्थेयं गृहनिवेशप्रवेशयोः—

चतुर्थविमर्शोक्ता
ज्योतिषसारोक्ता

	उत्तम	मध्यम	अधम
रवि	३-६-११	९-५	८-१-४-७-१०-१२-२
चन्द्र	१-४-७-१०-९-५-३-११	८-२-६-१२	०
मंगल	३-६-११	९-५	८-१-४-७-१०-१२-२
बुध	१-४-७-१०-९-५-३-११	८-२-६-१२	०
गुरु	१-४-७-१०-९-५-३-११	८-२-६-१२	०
शुक्र	१-४-७-१०-९-५-३-११	८-२-६-१२	०
शनि	३-६-११	९-५	८-१-४-७-१०-१२-२
राहु	३-६-११	९-५	८-१-४-७-१०-१२-२

॥ पञ्चमो विमर्शः ॥ ५

लग्नं विवाहे दीक्षायां[1] प्रतिष्ठायां[2] च[3] शस्यते[4] । रवौ मकरकुंभस्थे मेषादित्रयगेऽपि च ॥ १ ॥ माघफाल्गुनयो राधज्येष्ठयोश्चापि[5] मासयोः । २

1 उपस्थापनायामपि । 2 जिनबिम्बप्रासादादीनाम् । 3 राज्याभिषेकसूरिपदाभिषेकयोरपि । 4 अवश्यादरणीयतया बहुमन्यते । तथा 'पाकस्वामिनि लग्नगे सुहृदि वा वर्गस्य सौम्येऽपि वा प्रारब्धा शुभदा दशा त्रिदशषड्लाभेषु वा पाकपे । मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदने पाकेश्वरस्य स्थितश्चन्द्रः सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा' ॥ अत्र पाकस्वामिनीति दशापतौ । अपि च प्राणिनां जन्मलग्नमशुभमपि तत्कालविवाहादिलग्नबलाच्छुभम् । 5 राधो वैशाखः । एते शुक्लप्रतिपद्याश्चान्द्रमासा एव ग्राह्याः । ज्येष्ठयोरिति, ननु ज्येष्ठे तावन्मिथुनसंक्रान्तिः स्यात् सा च प्रागपि ग्राह्योक्ता, ततः किमिति पुनर्ज्येष्ठोपन्यासः ? उच्यते—आषाढमासे मिथुनसंक्रान्त्यामपि सत्यां सर्वथा निषेधार्थम् । कैश्चिन्मिथुनसंक्रान्तौ सत्यामाषाढस्य शुक्लदशमीं यावदाद्यस्त्रिभाग आदृतोऽपि । तथा च त्रिविक्रमः—"कैश्चिदिष्टस्त्र्यंशः शुचेरपीति" । कार्तिकेति कार्तिकमार्गशीर्षयोर्मध्यमत्वात् हीनजातिविवाहः स्यादिति भावः, परं कार्तिकशुक्लैकादश्यनन्तरमेवेत्यूह्यम् । यदुक्तम्—"कार्तिकमासे शुद्धिर्गुरोर्विलोक्या रवेश्च चन्द्रबलम् । अक्रूरयुते धिष्ण्ये देवोत्थानाद्दशाहं स्यात् ॥ १ ॥" इति व्यवहारप्रकाशे । एतेन शेषेषु षट्सु चान्द्रमासेषु लग्नं न ग्राह्यमेवेत्यर्थः । पाकश्रीकारस्त्वाह—"चतुर्षु कार्तिकादिमासत्रिकेषु क्रमाच्चत्वारि स्थिरराशिलग्नान्यमृतस्वभावानि, तथाहि—कार्तिकादिमासत्रये वृषलग्नं शुभम्, माघादिमासत्रये सिंहलग्नम्, वैशाखादित्रये वृश्चिकलग्नम्, श्रावणादित्रिके कुंभलग्नं च । एषां वर्गोत्तमस्य मध्यमांशस्योदये सर्वकार्यसिद्धिः ॥

लग्न श्रेयः परे त्वाहुस्तद्वत्कार्तिकमार्गयोः ॥ २ ॥ जीवे सिंहस्थे धन्वमीनस्थितेऽर्के विष्णौ निद्राणे चाधिमासे च लग्नम्। नीचेऽस्तं वाप्ते लग्नार्थेऽज्ञपे वा, जीवे शुक्रे वास्तगते वापि नेष्टम् ॥ ३ ॥ जीर्णः शुक्रोऽहानि पञ्च प्रतीच्या प्राच्यां वालस्त्रीण्यहानीह हेयः। त्रिन्नान्येव तानि दिग्वैपरीत्ये, पक्ष जीवोऽन्ये तु सप्ताहमाहुः ॥ ४ ॥ ॥ इति लग्नद्वारम् ॥ १० ॥ लग्ने गुरोर्वरस्याथ ग्राह्य चान्द्रबलं बुधैः। शिष्यस्थापक-

---

1 बहवोऽप्येन्न जगदु सिंहारूटोऽपि ग्रन्थत्रुगुरु । समनिकान्तमघर्क्षौ न विरुद्ध सर्वकार्येषु ॥ सिंहस्थेज्यानुसिंहाशाज्जाह्नवीतीरयोर्द्वयो । न दुष्टो गगयोर्मध्यदेशेषु तु स दु यद ॥ भागीरथ्युत्तरे तीरे गोदावर्योश्च दक्षिणे। निवाहो व्रतवधो वा सिंहस्थेज्ये न दुष्यति ॥ सिंहट्ठियजीवो महभुत्त होइ अह रवि मेसे। ता कुणह निव्विसकं पाणिगहणाई कल्लाण। प्रतिष्ठादीक्षादिशेषकार्येष्वप्येवमेव ॥ झषो न निंद्यो यदि फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निंद्य । मघाश्रितौ द्वावपि वर्जनीयौ, मृगस्तु पौषेऽपि गतो न निंद्य " केचिदत्र अजस्तु चैत्रेऽपि गतो न निन्द्य इत्याहु । 'असंक्रान्तिमासोऽधिमास स्फुट स्यात् द्विसंक्रान्तिमास क्षयाख्य कदाचित्। क्षय कार्तिकादित्रये नान्यत स्यात् ततो वर्षमध्येऽधिमासद्वय स्यात्। रविकिरणमध्यवर्ती चरति सदा रविसुमडले शशिज । तस्मान्न दोषदृष्ट स्यात् सोऽस्त यातोऽपि भाशपति ॥ छस्सयसत्त ३६० छत्तीसा ३६ निक्खियहुत्तर ३७२ दुएगपन्नासा २५१ तिन्निवयाल ३४६ अगारयमाई उदयदिवस कमा ॥ सुनरवि १२० सोल १६ दसणा ३२ नद ९ वयालीस ४२ पच्छिमत्थदिना । सोमाई तह पुव्वे सुह त्तिय बत्तीस ३६ सगसयरी ७७ ॥ 2 गुरुरपि त्र्यह बाल पञ्चाह वृद्ध इत्येके। 3 सप्तर्ष्यांदा उभयोरपि गुरुशुक्रयोरुभयोरपि दिशोरुदयेऽस्ते च बाल्य वार्द्धक च सप्ताहमेवाहु । अत्तिगय नीए वक्के अत्थमिए लग्गरासि निसिनाहे । अबले रविगुरुसुक्के सामिअदिट्ठ चयह लग्ग ॥ 4 लग्ने इति लग्नसमये । गुरोरिति दीक्षाप्रतिष्ठालग्नयोर्गुरो निवाहलग्ने तु वरस्य । चान्द्रबलमिति प्रागुक्तविधिना राशिगोचर १ नक्षत्रगोचर २ऽष्टवर्गशुद्धि ३ शुभतारा ४ शुभावस्था ५ वामवेध ६ शुक्लेतरपक्षप्रारभ ७ मित्राधिमित्रगृहस्थिति ८ सौम्यगृहस्थिति ९ मित्राधिमित्राशस्थिति १० सौम्याशस्थिति ११ मित्राधिमित्रग्रहयुति १२ सौम्यग्रहयुति १३ मित्राधिमित्रग्रहदृष्टि १४ सौम्यग्रहदृष्टि १५ प्रकाराणामन्यतमेनापि प्रकारेण चन्द्रानुकूल्यबल ग्राह्यमेव । यदुक्त—"सर्वत्राम्रतरद्वर्मेर्बल प्रकल्प्यान्यखेटज पश्चात्। चिन्त्य यत शशाके बलिनि समस्ता ग्रहा सबला ॥ १ ॥" शिष्येति—शिष्यो दीक्षणीय पदे स्थाप्यमानो वा, स्थापको य श्राद्धादिर्द्रव्य व्ययति। जीवेन्द्वर्केति एतान्यवश्यग्राह्याणि । यदुक्त—"रविशशिजीवै सबलै शुभद स्याद्गोचर" इति। ग्रहाणा बलतारतम्यादिविभागश्चैवम्—"पूर्ण २० खेटाष्टकलग्नन पादेन १५ गोचरं प्रोक्तम्। वेधोत्थमर्धमान १० पादबल ५ दृष्टित सचरे

कन्यानां जीवेन्द्वर्कबलानि च ॥ ५ ॥ ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे मासि स्यात्पाणिपीडनम् । न पुनस्त्रय[1]मप्येतन्मासाहर्भेषु जन्मनः[2] ॥ ६ ॥ सादिमं[3] ग्रहणस्याहः सप्ताहं च तदग्रतः । त्यजेत्त्रिंशांशमेकैकं प्राक् पश्चाच्चापि संक्रमात्[4] ॥ ७ ॥ भद्रार्धयामगण्डान्तकुलिकोत्पातदूषितम् । दिनं तपसि[5] ४

॥ १ ॥" इदं सामान्येन सर्वग्रहानाश्रित्योक्तम् । चन्द्रस्य तु विशिष्याह—"एणांके गोचरबल १ मष्टक २ तारोत्थ ३ वेध ४ पक्षभवम् ५ । क्रमशस्तारा १ वेधज २ पक्षभवानी ३ह गौणानि ॥ २ ॥" क्रमश इति एतानि बलानि यथोत्तरं न्यून १ न्यूनतर २ न्यूनतमानि ३ । आद्यबलयोस्तु स्वरूपमाह—"ग्रहगोचरा १ ष्टवर्गौ २ तुल्यबलौ शुद्धिकारणादनयोः । एकेनापि बलेन प्राप्तेन भवेत्सुशुद्धिरिह ॥ ३ ॥ चेद्गोचरान्न हि भवेत्तदाऽष्टवर्गाद्विलोक्यते शुद्धिः । गोचरतोऽष्टकवर्गो बलवानुद्वाहदीक्षादौ ॥ ४ ॥ तस्मादष्टकशुद्धिर्गुरोर्विलोक्या रवेश्च चन्द्रस्य । निधना ८ न्त्या १२ऽम्बु ४ गतेष्वपि रेखाधिक्यात्सुशुद्धिः स्यात् ॥ ५ ॥ समशुद्धिरपि श्रेष्ठा शुद्धिपतेर्यदि भवेच्छुभा रेखा । शुद्धीशस्य न रेखा यदा तदा षड्विधादिवीर्यवतः ॥ ६ ॥ मित्रग्रहस्य रेखा समरेखां शुद्धिमुत्तमां कुरुते । तामन्तरेण मुनिभिर्न ह्यधिकाऽपि प्रशस्यते रेखा ॥ ७ ॥ समशुद्ध्यामष्टकतः शुद्धिपते रेखिकामृते वेधात् । शुभदे ग्रहे सति शुभा शुद्धिः स्यात् प्रोच्यते विबुधैः ॥ ८ ॥ तथा—नवमद्विपञ्चमगतः समरेखोऽप्यधिकशुभफलः सूर्यः । संक्रमकालेन्दुबलात् समोऽपि सर्वत्र शुभदोऽर्कः ॥ ९ ॥ तथा—दशमादूर्ध्वं केवललग्नबलेन स्त्रिया विवाहः स्यात् । शुद्धिर्नैवालोक्या रवीज्ययोः पूजयोद्वाहः ॥ १० ॥" अत्र दशमादिति वर्षादिति शेषः । इतीदं सर्वं व्यवहारप्रकाशे । "जन्मद्विपञ्चनवमद्युनगः खरांशुः, पूजां च वाञ्छति न चाष्टचतुर्व्ययस्थः । जीवस्त्रिजन्मदशमारिगतस्तु पूजामिच्छेत्कदाचिदपि नाष्टचतुर्व्ययस्थः ॥ १ ॥" इति तु व्यवहारसारे । अत्र न चेति यत्रस्थः पूजां नेच्छति तत्रात्यन्तमशुभत्वात् पूजयाऽप्यनुकूलो न स्यादिति भावः । गर्गस्त्वाह—"गोचरविरुद्धे जीवे वैधव्यमेव, पूजा त्वप्रमाणम् ॥

1 दीक्षाप्रतिष्ठोद्वाहरूपम् । 2 जन्ममासिविपरीतपक्षयोर्व्यत्यये दिननिशोर्जनुस्थितौ । जन्मभेऽपि किल राशिभेदतः पाणिपीडनविधिर्न दुष्यति । जन्मतिथेरर्वाक्तिथिग्रहणेऽपि न दोषः । नो जन्मभं च कार्यं बलिनि शुभं केन्द्रगे सौम्ये ॥ 3 त्रयोदशीतो दशाहं सूर्येन्दुग्रहणे त्यजेदिति केचित् । सर्वग्रस्तेषु सप्ताहं पंचाहं स्याद्दलग्रहे । त्रिद्व्येकार्धाङ्गुलग्रासे दिनत्रयं विवर्जयेत् । राहौ दृष्टे शुभं कर्म वर्जयेद्दिवसाष्टकं । त्यक्त्वा वेतालसंसिद्धिं पापदम्भमयं तथा । 4 एकान्तिककार्ये तु दिनत्रयस्य त्यक्तुमशक्यत्वे प्राक् पश्चात् षोडशावश्यं त्याज्या नाड्योऽर्कसंक्रमात् इत्यपि बहूनां मतम् । 5 न तु प्रतिष्ठायाम् । तेजस्विनी १ क्षेमकृद् २ अग्निदाहविधायिनी ३ स्याद्वरदा ४ दृढा ५ च । आनन्दकृत् ६ कल्पनिवासिनी च ७ सूर्यादिवारेषु भवेत् प्रतिष्ठा । एषां लग्ने षड्वर्गेऽप्ययमेव फलम् ।

राकां च स्थापने च कुजं त्यजेत् ॥ ८ ॥ उद्वाहे मृगपैत्रर्क्षे प्रतिष्ठाया तु
ते उभे । आदित्यपुष्यश्रवणधनिष्ठाभिः समं शुभे ॥ ९ ॥ दीक्षाया
३ त्वाश्विनादित्यवारुणश्रुतयः शुभाः । त्रिषु मैत्रंकरः स्वातिर्मूलः पौष्ण-
ध्रुवाणि च ॥ १० ॥ स्त्रियः प्रियत्वमुद्वाहे मूलाहिर्बुध्न्यवैश्वभैः । पौष्ण-

जैनप्रतिष्ठाया	रो	मृ	पु	पु	म	उ फा	ह	स्वा
दीक्षायां	अश्वि	रो	पुन	उ फा	ह	स्वा	अनु	मू
विवाहे	रो	मृ	म	उ फा	ह	स्वा	अनु	मू

जैनप्रतिष्ठायां	अनु	मू	उ षा	श्र	ध	उ भा	रे
दीक्षायां	उ षा	श्र	श	उ भा	रे	०	०
विवाहे	उ षा	उ भा	रे	०	०	०	०

ब्राह्मसृगैः पुंसा मिथः शेषैस्तु पञ्चभिः ॥ ११ ॥ वर्णकाद्य विवाहर्क्षे
६ कुमार्या वरणं पुनः । स्वातिपूर्वानुराधाभिर्वैश्वत्रयहुताशभैः ॥ १२ ॥
लग्नादर्वाग्न कुर्वीत त्रिषष्ठनवमे दिने । कुसुम्भमण्डपारम्भवेदीवर्णयवार-
८ कान् ॥ १३ ॥ नान्ये प्रतिष्ठां जन्मर्क्षे दशमे षोडशे च भे । अष्टादशे

---

1 दीक्षोद्वाहराज्याभिषेकादिष्वपि त्याज्य । 2 प्रस्तावाज्जैनबिम्बादे । 3 एषामेवैकादशभाना वैवाहिकत्वाच्छेषभाना न परिगणनम् । 4 जन्मर्क्षे इति प्रतिष्ठाप्यस्य प्रतिष्ठाकारयितुश्च जन्मभे, तदपरिज्ञाने नामभे वा, तस्माद्दशमादिषु च भेषु प्रतिष्ठा न कार्या । श्रीहरिभद्रसूरिभिस्त्वेवमूचे–"कारावयस्स जम्मण रिरक दस सोलस तहट्ठारं । तेवीस पचवीस बिंबपइट्ठाइ वज्जिज्जा ॥ १ ॥" विशेषतस्तु एषा भाना सज्ञा इमा –"जन्माद्य दशम कर्म सघात षोडश पुन । अष्टादश समुदय त्रयोविंश विनाशभम् ॥ १ ॥ मानस पञ्चविंश भमिति पञ्चोऽखिल पुमान् । जातिदेशाभिषेकैश्च नव धिष्ण्यानि भूपते ॥२॥" तत्र जातिधिष्ण्यान्येवम्–"विप्राणा कृत्तिकापूर्वा ३ राज्ञा पुष्यस्तथोत्तरा ३ । सेवकाना धनिष्ठेन्द्रचित्राभ्रगशिरांसि च ॥ १ ॥ उग्राणा भानि वायव्यमूलार्द्राशततारका । कर्षकाणा मघा पौष्णमनुराधाविरञ्चिभम् ॥ २ ॥ वणिजामश्विनी हस्तोऽभिजितादित्यमेव च । चण्डालाना श्रुति सार्पं यमदेव द्विदैवतम् ॥ ३ ॥" देशभानि तु यथा पद्मचक्रे । राज्याभिषेकभ त्वभिषेकर्क्षम् । ननु जन्मर्क्षादीना त्याग कस्मात् क्रियते? उच्यते–प्रायो भानि क्रूरग्रहाद्यै पीड्यन्ते, यदि चेष्टपुसो जन्मर्क्षादीनि प्रतिष्ठादिष्वधिक्रियन्ते तदा तेषु क्रूरग्रहाद्यैः पीडितेषु सत्सु तस्य पुसोऽनिष्ट स्यात्, यदि तु नाधिक्रियन्ते तदा तानि पीडितान्यपि नानिष्टफल दातुमलम् । कथमेवमिति चेदुच्यते यथा—"विलग्नस्थोऽष्टमो राशिर्जन्मलग्नात् सजन्मभात् । न शुभ सर्वकार्येषु लग्नाच्चन्द्रस्तथाऽष्टम ॥ १ ॥" इत्यादि दैवज्ञवल्लभे । एवंविधाश्च लग्नादियोगा बहुशोऽपि मिलन्ति, न च किमप्यनिष्टफल दद्यु ।

त्रयोविंशे पञ्चविंशे च मन्वते ॥ १४ ॥ क्रूरेण[1] मुक्तमाक्रान्तं भोग्यं ।

यदि तु यात्रादिष्वधिक्रियन्ते तदाऽनिष्टफलदाः प्रायः स्युरेव, तथाऽत्रापि जन्मर्क्षादीनां पीडा तत्फलं चैवम्—"केत्वर्कार्किभिराक्रान्तं भौमवक्रभिदाहतम् । उल्काग्रहणदग्धं च नवधाऽपि न भं शुभम् ॥ १ ॥" ततश्च—देहविनाशो जन्मर्क्षपीडने कर्मणश्च कर्मर्क्षे । उत्सवबान्धवनाशौ समुदयसंघातयोर्हतयोः ॥ २ ॥ स्वतनुविनाशो वैनाशिके हते मानसे मनस्तापः । कुलदेशस्त्रीनाशो जातिभदेशाभिषेकेषु ॥ ३ ॥ राज्याभिषेकदिवसेऽभिषेकधिष्ण्यं च देशनक्षत्रम् । पद्मविभागे ज्ञेयं प्रादक्षिण्येन भूमध्यात् ॥ ४ ॥" पद्मचक्रस्थापना चैवम्—

"कर्णिकाष्टदलैराढ्ये पद्मे नाभौ दलेषु च । प्राच्यादिस्थेषु भानीह न्यस्याभिभ- त्रयादितः ॥ ५ ॥" तथाहि—ततश्च— "त्रितयैराग्नेयाद्यैः क्रूरग्रहपीडितैः क- मेण नृपाः । पाञ्चालो १ मागधिकः २ कालिंगश्च ३ क्षयं यान्ति ॥ ६ ॥ आ- वन्त्यो ४ ऽथानर्तो ५ मृत्युं चायाति सिन्धुसौवीरः ६ । राजा च हारहूरो ७ मद्रेशो ८ ऽन्यश्च कौणिन्दः ९ ॥ ७ ॥" अत्र क्षयं यान्तीति एषां देशानां कर्णि-



कायां पूर्वाग्न्याद्यष्टदिक्पत्रेषु च स्थितत्वादिति भावः । दिङ्मात्रं चेदं देशेशानां नामपरिगणनं, तेन नवखंडकल्पितोर्व्यां यत्र खंडे ये ये देशाः स्थिताः स्युस्ते ते देशास्तत्तद्भेषु पीडितेषु पीड्यन्ते इत्यूह्यम् । नरपतिजयचर्यायां तु पद्मस्थाने कूर्मस्थापनयाऽयमेवार्थो वर्णितः । अन्ये जन्मभवदेकोनविंशमाधानभमपि क्रूरग्रहपीडितत्वे सति प्रवासदायित्वाद्वर्जयन्ति । सर्वमिदं लल्लकृते रत्नकोशे ॥

1 क्रूरेणेति क्रूरत्वमत्र स्वाभाविकं ग्राह्यम्, न त्वौपाधिकम्, यथा क्षीणत्वेनेन्दोः पापयुतत्वेन बुधस्य चेति । ततोऽयमर्थः—यद् भं क्रूरेण रविकुजशनिराह्वन्यतरेण भुक्त्वा मुक्तम्, आक्रान्तं तेनैव भुज्यमानम्, भोग्यं तु तदनन्तरमेव भोक्ष्यमाणम् । एषां फलानि त्वेवम्—"क्रूराश्रितक्रूरविमुक्तक्रूरगन्तव्यधिष्ण्येषु कुमारिकाणाम् । वदन्ति पाणिग्रहणे मुनीन्द्रा, वैधव्यमब्दैस्त्रिभिरत्रिमुख्याः ॥ १ ॥" इति सारंगः । अन्ये त्वाहुः—"भुक्तं भोग्यं च नो त्याज्यं सर्वकर्मसु सिद्धिदम् । यत्नात्त्याज्यं तु सत्कार्ये नक्षत्रं राहुसंयुतम् ॥ १ ॥" ग्रहणभमिति यत्र दिनभेऽर्केन्द्वोर्ग्रहणं जातम् । ग्रहोदयेति यत्र दिनभे ग्रहा उदयमस्तमयं वाऽकार्षुः । आगमे च वक्रिग्रहाक्रान्तमपि भं त्याज्यमूचे, तथाहि—"विड्डेरमवद्दारिअ" अत्रापद्वारितं वक्रिग्रहाक्रान्तमित्यर्थः । ग्रहैर्भिन्नमिति भौमाद्याः पञ्च ताराग्रहा यस्य-

१ग्रहणभं तथा । दुष्टं ग्रहोदयास्ताभ्यां ग्रहैर्भिन्नं च भं त्यजेत् ॥ १५ ॥

	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	श्ले	
भ								म
अ								पू
रे								उ
उ								ह
पू								चि
श								स्वा
ध								वि
	श्र	अ	उ	पू	मू	ज्ये	अ	

कृत्तिकारोहिण्यादेर्मध्येन भित्त्वा ययुस्तद्ग्रहभिन्नम् । उक्तं च लग्नशुद्धौ–"मज्झेण गहो जस्स उ गच्छइ तं होइ गहभिन्नं ।" नारचन्द्रटिप्पनके त्वेवम्–यत्र ग्रहाणां वामदक्षिणा दृक् पतेत्तद्ग्रहभिन्नं । दृग्ज्ञानायात्र सप्तरेखचक्रवत्कृत्तिकादिसप्तसप्तभानां चतुर्दिक्षु स्थापना यथात्र पृष्ठे ततश्च–"यस्मिन् धिष्ण्ये स्थितः खेटस्ततो वेधत्रयं भवेत् । ग्रहदृष्टिप्रभावेण वामदक्षिणसम्मुखम् ॥ १ ॥ वक्रगे दक्षिणा दृष्टिर्वामदृष्टिश्च शीघ्रगे । भौमादिपञ्चकस्य स्यान्मध्यदृष्टिश्च मध्यमे ॥ २ ॥ राहुकेतू सदा वक्रौ सदा शीघ्रौ विधूष्णगू । क्रूरा वक्रा महाक्रूराः सौम्या वक्रा महाशुभाः ॥ ३ ॥ वेधद्वयं भजति धिष्ण्यमिभारिदंष्ट्रासस्थानदिग्द्वयगतोड्डुगतग्रहाभ्याम् । एकं तथाऽभिमुखसंस्थितमध्यनासापर्यन्तभागधृतधिष्ण्यगतग्रहेण ॥ ४ ॥" इति नरपतिजयचर्यायाम् । उदाहरणं यथा–मृगशीर्षे कार्यचिकीर्षा, चित्रायां च कश्चिद्भौमादिसप्तकान्यतमो वक्री ग्रहः स्यात्तदा तस्य वक्रगतित्वेन दक्षिणा दृग्मृगशीर्षे पतिता । रेवत्यां चाश्विन्यादिसप्तकान्यतमः कश्चिदतिचारी ग्रहः स्यात्तदा तस्य शीघ्रगतित्वेन वामा दृगित्युभयतो ग्रहदृक्पातात्तदा मृगशीर्षं ग्रहभिन्नं स्यात् । उत्तराषाढायां च भौमादिपञ्चानां मध्ये कश्चिन्मध्यगतिर्ग्रहः स्यात्तदा सम्मुखदृशा तृतीयस्तद्वेधोऽपि । एवमन्यत्रापि भाव्यम् । परमेष तृतीयो वेधो वेधेनैकार्गलेत्यस्मिन् श्लोकेऽधिकरिष्यते, शेषाभ्यां लत्ताधिकारः ॥

धिष्ण्यं कार्याय पर्याप्तं[1] चन्द्रभोगाद्ग्रहाहतम् । शुद्धं षड्भिर्भवेन्मासैरुपरागपराहतम् ॥ १६ ॥ वेधैनै[2]कार्गलोत्पातपातलत्ताभिधैरपि । दोषैरुपग्रहा-२

1 पर्याप्तमिति योग्यं भवेदिति संटंकः । ग्रहाहतमिति क्रूरग्रहेण विमुक्ताक्रान्तभोग्यत्वेन ग्रहैरुदयास्तकरणेन वक्रिग्रहाक्रान्तत्वादिना वा दूषितम् । चन्द्रभोगादिति ग्रहकृतदोषापगमादनु यदि चन्द्रेण भुक्तं स्यात्तदाऽऽदरणीयमित्यर्थः । यदाह वराहः—"दोषैर्मुक्तं यदा धिष्ण्यं पश्चाच्चन्द्रेण संयुतम् । ततः पश्चाद्विशुद्धं स्यान्नान्यथा शुभदं भवेत् ॥ १ ॥" लल्लस्त्वाह—"तत्सूर्येन्द्वोर्भोगात्कर्मण्यलं प्रयाति भूयोऽपि । धिष्ण्यं कर्मसु शुद्धं तापनिषेकात्सुवर्णमिव ॥ १ ॥" अत्र सूर्येन्द्वोर्भोगादिति सूर्येण ताप्यते पश्चाच्चन्द्रेण निर्वाप्यते इत्यर्थः । उपरागोऽर्केन्द्वोर्ग्रहणं(तेन) पराहतं दूषितं ग्रहणभमित्यर्थः, तत् षण्मासाँस्त्याज्यम् । यावन्नार्को भुंक्ते तावत्त्याज्यमित्यन्ये । विशेषस्तु—"पक्षान्तरेण ग्रहणद्वयं स्याद्यदा तदाद्यग्रहणोपगं भम् । पक्षाद्विशुद्धं भवति द्वितीयग्रहोपगं शुध्यति मासषट्कात् ॥ १ ॥" इति सप्तर्षयः । यत्र भे केतोरुदयः स्यात्तत्रैव षण्मासान् केतुरिति तदपि षण्मासाँस्त्याज्यम् । यस्मिन् दिनभे ताराग्रहयोर्भौमादिपञ्चकान्तरयोर्मिथो भेदनं स्यात्तदपि भं षण्मासाँस्त्याज्यम् । उक्तं च विवाहवृन्दावने—"यस्मिन् धिष्ण्ये वीक्षितौ राहुकेतू, भेदस्ताराखेटयोर्यत्र च स्यात् । आषण्मासाँस्तत्र लग्नेन्दुभाजि, भ्राजिष्णु स्यान्नो शुभं कर्म किञ्चित् ॥ १ ॥" यत्र दिनभेऽर्केन्द्वोर्ग्रहणं स्यात्तत्र राहुर्वीक्षित इत्युच्यते, यत्र भे केतोरुदयः स्यात्तत्र केतुर्वीक्षितः कथ्यते । ननु कथं केतूदयभं ज्ञायते इति चेदुच्यते—"मेषेऽर्के सति रेवत्यां यदि याति विधुन्तुदः । भाद्रमासोत्तरार्धे स्यात् पुष्ये केतूदयस्तदा ॥ १ ॥ सूर्ये वृषस्थितेऽश्विन्यां यदि याति विधुन्तुदः । आश्विनस्योत्तरार्धे तद्रोहिण्यां केतुरीक्ष्यते ॥ २ ॥ भरणीमिथुनस्थेऽर्के यदि याति विधुन्तुदः । कार्तिकस्योत्तरार्धे तदार्द्रायां केतुदर्शनम् ॥३॥ कर्कस्थेऽर्के कृत्तिकायां यदि याति विधुन्तुदः । मार्गशीर्षपरार्धे तत्केतूदयः पुनर्वसौ ॥४॥ सिंहेऽर्के सति रोहिण्यां यदि याति विधुन्तुदः । पौषमासापरार्धे तदश्लेषायां शिखीक्ष्यते ॥५॥ कन्यास्थेऽर्के मृगशीर्षे यदि याति विधुन्तुदः । माघमासोत्तरार्धे तच्चित्रायां दृश्यते शिखी ॥ ६ ॥ तुलार्के सति आर्द्रायां यदि याति विधुन्तुदः । फाल्गुनस्योत्तरार्धे स्यान्मूले केतूदयस्तदा ॥ ७ ॥ वृश्चिकेऽर्के पुनर्वस्वोर्यदि याति विधुन्तुदः । चैत्रमासोत्तरार्धे स्यात् स्वातौ केतूदयस्तदा ॥ ८ ॥ धनुःस्थिते रवौ पुष्यं यदि याति विधुन्तुदः । वैशाखस्योत्तरार्धे स्यान्मूले केतूदयस्तदा ॥९॥ अश्लेषां मकरस्थेऽर्के यदि याति विधुन्तुदः । ज्येष्ठमासोत्तरार्धे तज्ज्येष्ठायां दृश्यते शिखी ॥ १० ॥ कुंभस्थेऽर्के मघा धिष्ण्यं यदि याति विधुन्तुदः । आषाढमासोत्तरार्धे श्रुतौ केतूदयस्तदा ॥ ११ ॥ मीनेऽर्केऽपरफल्गुन्यां यदि याति विधुन्तुदः । श्रावणस्योत्तरार्धे तद्वारुणे दृश्यते शिखी ॥ १२ ॥ इदं त्रिविक्रमशतकटीकायाम् । उल्कापातपरिवेषहतमपि भं षण्मासाँस्त्याज्यमित्येके ॥ 2 वेधेन सप्तरेखपञ्चरेखचक्राभ्यां वर्णितेन । उत्पाता भौमाद्यास्ते यस्मिन् दिनभेऽऽभूवँस्तद्भमुत्पातदूषितम् । अपिशब्दाद्ग्रहयुद्धाद्यैरपि एतद्दोषदुष्टान्यपि च भानि तद्दोषापगमादनु चन्द्रभुक्त्या शुद्धानि स्युरिति रत्नभाष्ये ॥

१ वैधं नक्षत्रं दुष्टमुत्सृजेत् ॥ १७ ॥ अर्केन्द्वोर्भुक्ताशकराशियुतौ क्रान्ति-

1 स्फुटार्केन्द्वो सायनयोर्भुक्तराश्यशमिलने राशयकस्थाने पड्क द्वादशक वा यदि स्यात्तदा क्रान्तिसाम्यसभव , तद्वेला च त्याज्या । स च क्रान्तिसाम्यनामा दोपो यदि चक्रदले चक्रार्धे पड्रूपे स्यात्तदास्य व्यतीपात इत्याह्वा, यदि च चक्रे द्वादशरूपे स्यात्तदास्य पात इति वैधृत इति चाह्वाद्वयम् । अस्य वेलायास्तादात्विक करणकुतूहलाद्युक्तविधेर्निर्धार्यम् ॥ स्युर्वेध १ पात २ लत्ते ३ ग्रहमलिनमुडु ४ क्रूरवारा ५ ग्रहाणा, जन्मर्क्षं ६ विष्टि ७ रर्धप्रहरक ८ कुलिको ९ पग्रह १० मान्त्य ११ वस्था १२ । कर्कोत्पातादि १३ घटो १४ विगतबलशशी १५ दुष्टयोगार्गलाख्या १६ गडान्तो १७ दग्धरिक्ताप्रसुप्ततिथि १८ रथो नामतोऽष्टादशैते ॥ एते दोपा शुद्धनक्षत्रबलेन छायालग्नादौ यदा प्रतिष्ठादीक्षादिकार्यं क्रियन्ते तदाप्यवश्य त्याज्या एव, घटिकालग्नेपु च किं वाच्यम् । एपु च केपाचिद्दोपाणा भगविधि पूर्वाचार्यैरेवमूचे, तथाहि "लग्ने गुरु सौम्ययुतेक्षितो वा, लग्नाधिपो लग्नगतस्तथा वा । कालाख्यहोरा च यदा शुभा स्याद्धवेधदोपस्य तदा हि भगः ॥ १ ॥" इति वशिष्ठ । अत्र भवेधेति नक्षत्रवेधस्यैव भगो न तु तत्पादवेधस्येति भाव । व्यवहारप्रकाशे त्वनया रीत्या वेध प्रत्युत शुभोऽप्युक्त , तथाहि—"सौम्येश्वरणान्तरित शुभ शुभे केन्द्रगैर्वेध " । इति वेधदोपभग १ । "एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तर्युदयादिदोपा । लग्ने र्कचन्द्रेज्यबले विनश्यन्त्यर्कोदये यद्वदहो तमासि ॥१॥" इति सप्तर्पय । तथा—"अगेपु वगेपु वदन्ति पात, सौराष्ट्रयाम्ये पचरस्य लत्ताम् । उपग्रह मालवसैन्धवेपु गण्डान्तयुक्तिं सकले पृथिव्याम् ॥ १ ॥" इति केचित् । वामदेवस्त्वाह—"लत्ता वगालदेशे च पात कौशलिके त्यजेत् । उपग्रह गौडदेशे वेध सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १ ॥" इति पातलत्तोपग्रहैकार्गलाना भग ५ । "होरा क्रूरा सौम्यवर्गाधिके स्युर्लग्ने मोघा सौम्यवारे च राज्याम् । पापारिष्ट निष्फल शक्तिभाजा, स्यात् पड्वर्गे लग्नगे सद्ग्रहाणाम् ॥ १ ॥" त्रिविक्रमोऽप्याह—"क्रूरस्य कालहोरा च क्रूरवारे दिवा त्यजेत्" इति, अस्यार्थ —यदि क्रूरो दिनवारो दिवा च कार्यं तदा क्रूरहोरा त्यजेत्, कि तु सौम्यया कालहोरया क्रूरवारदोपस्यापगमात्सा ग्राह्या, सौम्यवारे तु दिवा रात्रौ वा होरया नास्त्यधिकार इत्यर्थ । इति सूर्येन्दुग्रहणवर्जग्रहमलिनोडु १ क्रूरवारहोरा २ दोपयोर्भग ७ । जन्मर्क्षदोपभगस्तु वक्ष्यमाणकर्कादिभगसम एव ८ । विष्टेस्तु नास्ति भग , अस्ति वा "विष्टिपुच्छे ध्रुव जय" इत्यादि ९ । अवस्थादोपभगस्तु वक्ष्यमाणविगतबलेन्दुदोपभगवच्छिवचक्रबलेन कार्य १० । कर्कोत्पातादीति—"अयोगास्तिथिवारर्क्षजाता येऽमी प्रकीर्तिता । लग्ने ग्रहबलोपेते प्रभवन्ति न वै क्वचित् ॥ १ ॥ यत्र लग्न विना कर्म क्रियते शुभसज्ञकम् । तत्रैवैपा हि योगानां प्रभावाज्जायते फलम् ॥ २ ॥" इति व्यवहारसारे । इति कर्कोत्पातादिदोपभग ११ । घट इति अस्य दुष्टघटय एव—"पनरस १ तेर २ ग्गरग ३ एगा ४ सग ५ सत ६ अट्ठ ७ घडिआओ । जमघटस्स उ दुट्ठा रविमाइसु सत्तवारेसु ॥ १ ॥" इदमर्थत श्रीहरिभद्रफलग्रन्थे। अन्ये त्वाहु —"तिथि १५

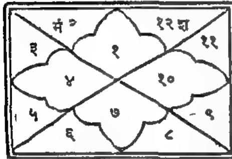
साम्यनामायम् । चक्रदले व्यतिपातः पातश्चक्रे च वैधृतस्त्याज्यः ॥१८॥ लग्नं श्रेष्ठं प्रतिष्ठायां क्रमान्मध्यमथावरम् । व्यंगं स्थिरं च भूयोभिर्गुणै-राढ्यं चरं तथा ॥ १९ ॥ अंशास्तु[1] मिथुनः कन्या धन्वाद्यार्धं च ३

रस ६ रुद्रा ११ म्बरगुण ३० सार्धहया ७ ॥ भंतु ६० खगुण ३० मितघटिकाः । त्याज्या घंटे रव्यादिष्वाद्या उत्तरास्तु शनिबुधयोः ॥ १ ॥" शेषघट्यस्त्वदुष्टा एवेति यमघंटदोषभंगः १२ । विगतवलशशिदोषस्तु "लग्ने गुरोर्वरस्येति" श्लोकोक्तपञ्चदशान्य-तरस्यापि चन्द्रानुकूल्यप्रकारस्य सर्वथाऽप्यलाभे शिवचक्रवलेन हन्यते, चन्द्रादेः प्राति-कूल्यं हरतीत्युक्तेः १३ । दुष्टयोगानां तु विष्कंभादीनां दुष्टघट्य एवावश्यं हेयाः, शेषाणां त्यागे तु कामचार इत्युक्तेः स्फुट एव दोषभंगः १४ । गंडान्तस्य तु लग्नतिथ्युडूनां त्रित्रिभागान्तरे जायमानस्य नास्ति भंगः । यस्तु सर्वतिथिभयोगानां सन्धिषु सन्धिनामा दोष उक्तस्तद्भंग एवम्—"धिष्ण्यस्यादावन्ते त्यजेच्चतस्रो घटीः करग्रहणे । यदि शुद्धे द्वे धिष्ण्ये विवाहयोग्ये तदा श्रेष्ठे ॥ १ ॥" इति व्यवहारप्रकाशे । तथा—"गुरुर्भृगुर्वा केन्द्रे वा त्रिकोणे वा यदा भवेत् । भसन्धिस्तिथिसन्धिश्च योगसन्धिर्न दोषदः ॥ १ ॥ येऽन्ये सन्धिकृता दोषास्ते सर्वे विलयं ययुः । इति प्रोक्तं तु गर्गेण वशिष्ठात्रिपराशरैः ॥ २ ॥" इति भतिथियोगादिसन्धिदोषभंगः १५ । तिथिदोषस्तु "तिथिरेकगुणा प्रोक्ता" इतिवचनात्सुभञ्ज एव, यद्वा "दिने वलवती तिथिः" इति "तिथ्यर्धे तिथिफलं समादेश्यं" इति वा १६ । अपि च—"सर्वेषां तु कुयोगानां वर्जयेद् घटिकाद्वयम् । उत्पातमृत्युका-णानां सप्त षट् पञ्च नाडिकाः ॥ १ ॥" इति नारचन्द्रटिप्पनके । केचिन्मृत्युयोगे द्वादश घट्यस्त्याज्या इत्याहुः । तथा—"यमघंटे नवाष्टौ च कालमुख्यां विवर्जयेत् । दग्धे तिथौ कुवारे च नाडिकानां चतुष्टयम् ॥ १ ॥" इत्यप्यन्ये । तथा—"कुतिहि कुवार-कुजोगा विट्ठी वि अ जम्मरिक्ख दड्ढतिही । मज्झण्हदिणाओ परं सव्वं पि सुभं भवेऽ-वस्सं ॥ १ ॥" इति हर्षप्रकाशे । लल्लोऽप्याह—"विष्ट्यामङ्गारके चैव व्यतीपातेऽथ वैधृते । प्रत्यरे जन्मनक्षत्रे मध्याह्नात् परतः शुभम् ॥ १ ॥" अत्र प्रत्यरे इति सप्तम-तारायाम् । उपलक्षणं चेदं तृतीयपञ्चमाधानताराणाम्, तेन तास्वपि मध्याह्नात् परतः शुभमेव इति सामान्येन प्रतिष्ठायां वहुदोषभंगः ॥

1 धन्वाद्यार्धमिति धनुरंशस्य प्रथमार्धं तल्लग्नस्याष्टादशांशरूपं । मध्यमा इति देवस्य सुपूज्यत्वभवनेऽपि कर्तृस्थापकादीनां हानिकरत्वात् । सामर्थ्याच्चेदं लभ्यते शेषा मेषकर्क-वृश्चिकमकरकुंभांशा धनुरंशान्त्यार्धं चाधमान्येव । उक्तं च नारचन्द्रटिप्पनके—"मेषांशे स्थापितो देवो वह्निदाहभयावहः १ । वृषांशे म्रियते कर्ता स्थापकश्च ऋतुत्रये २ । मिथुनांशः शुभो नित्यं भोगदः सर्वसिद्धिदः ३ ॥ १ ॥ षट्पदी ॥ कुमारं तु हन्ति कर्कः कुलनाश ऋतुत्रये । विनश्यति ततो देवः षड्भिरब्दैर्न संशयः ४ ॥ २ ॥ सिंहांशे शोकसन्तापः कर्तृस्थापकशिल्पिनाम् । संजायते पुनः ख्याता लोकेऽर्चा सदैव हि ५ ॥ ३ ॥ भोगः सदैव कन्यांशे देवदेवस्य जायते । धनधान्ययुतः कर्ता मोदते सुचिरं

श्रीजिनेश्वरप्रतिष्ठा-	३	६	९	१२	उत्तम	द्विस्व०
लग्नस्थापना १९	२	५	८	११	मध्यम	स्थिर
छन्दगता	१	४	७	१०	अधम	चर

शोभनाः । प्रतिष्ठाया वृषः सिंहो वणिग्मीनश्च मध्यमाः ॥ २० ॥ व्रताय राशयो व्यंगाः स्थिराश्चापि वृषं विना । मकरश्च प्रशस्याः स्युर्ले-
३ ग्नाशादिषु नेतरे ॥ २१ ॥ विवाहे नाग्रहः कोऽपि लग्नानामिह केवलम् । नवांशा धनुराद्यार्धयुग्मकन्यातुलाः शुभाः ॥ २२ ॥ त्रिष्वपि क्रूरमध्यस्थौ,
५ शुक्रक्रूराश्रितयुतौ । नेष्टौ लग्नविधू, केन्द्रस्थितसौम्यौ तु तौ मतौ ॥ २३ ॥



लग्नस्येन्दोश्च द्वयोरपि पार्श्वयोर्द्वितीयद्वादशगृहयोः क्रूरग्रहसत्त्वे द्विधेयं क्रूरकर्त्तरी त्रिधा- यदा धनस्थः क्रूरग्रहो वक्री व्ययस्थस्तु मध्यगतिः क्रूरस्तदोभयतः सघटमानात्क्रूरकर्त्तर्यतिदुष्टा । यदा तु व्ययस्थ० क्रूरोऽतिचरितस्तदा विशिष्यातिदुष्टा शीघ्रमेव सघटमानत्वात् १ । यदा धन० व्ययोरपि मध्यगती क्रूरौ, यद्वा द्वयोरपि तयोर्वक्रगती क्रूरौ तदा मध्यदुष्टा सा, एकत एव संघटमानत्वात् २ । यदा तु धने मध्यगतिः क्रूरो, व्यये च वक्री, तदाल्पदुष्टा, कर्तर्या उभयतोऽपि विघटमानत्वात् ।

भुवि ६ ॥ ४ ॥ उच्चाटनं भवेत्कर्तुर्वधश्चैव सदा भवेत् । स्थापकस्य भवेन्मृत्युस्तुलांशे वत्सरद्वये ७ ॥ ५ ॥ वृश्चिके च महाकोपं राजपीडासमुद्भवम् । अग्निदाहं महाघोरं दिनत्रये विनिर्दिशेत् ८ ॥ ६ ॥ धन्वांशे धनवृद्धिः स्यात् सद्भोगं च सदा सुरे । प्रतिष्ठापककर्तारौ नन्दतः सुचिरं भुवि ९ ॥ ७ ॥ मकरांशे भवेन्मृत्युः कर्तृस्थापकशिल्पिनाम् । वज्राच्छस्त्राद्वा विनाशस्त्रिभिरब्दैर्न संशयः १० ॥ ८ ॥ घटांशे भिद्यते देवो जलपातेन वत्सरात् । जलोदरेण कर्ता च त्रिभिरब्दैर्विनश्यति ११ ॥ ९ ॥ मीनांशे लभ्यते देवो वासवाद्यैः सुरासुरैः । मनुष्यैश्च सदा पूज्यो विना कारापकेन तु १२ ॥ १० ॥" रत्नमालायां तु भौमवर्जसर्वग्रहाणां षड्वर्गः प्रतिष्ठायामनुज्ञातः ॥

1 मृगोरुदयवारांशभवनेक्षणपञ्चके ५ । चन्द्रांशोदयवारे च दर्शने ४ च न दीक्षयेत्, इति नारचन्द्रे । उदयो लग्नम्, जीवमन्दबुधार्काणां षड्वर्गो वारदर्शने । शुभावहानि दीक्षायां न शेषाणां कदाचन । हर्षप्रकाशे तु वृषांशः शुक्रसत्कोऽपि वर्गोत्तमत्वादनुज्ञातः तथाहि 'मेसविसाण मुत्तूण सेसरासीण पंचमे अंसे । नय दिक्खिज्ज जओ सो विणसइ तद्दतह पओगाओ ।
2 क्रूरग्रहसान्तरगा तनुर्भवेन्मृतिप्रदा शीतकरश्च रोगः । शुभैर्धनुः स्थैरथवान्त्यगे गुरौ, न कर्तरी स्यादिह भार्गवा विदुः । त्रिकोणकेन्द्रगो गुरुस्त्रिलाभगो रविर्यदा । तदा न कर्तरी, भवेज्जगाद बादरायणः । अपि चायल्लग्नाभावेन यदि क्रूरकर्तरी त्यक्तुं न शक्यते, तदा

गुरुर्बुधश्च शीतांशुसप्तमक्रूरदोषहृत् । पुष्टयेन्दुं दृशा पश्यन् लग्नखा-म्बुत्रिकोणगैः ॥ २४ ॥ दीक्षायां[1] कुरुते चन्द्रः क्रमाद्भौमादि-भियुतः । कलिं[1] भियं[2] मृतिं[3] नैःस्व्यं[4] विपदं[5] भूमिभृद्भयम्[6] ॥ २५ ॥ विवाहदी- ३
क्षयोर्लग्ने द्यूनेन्दू ग्रहवर्जितौ । शुभौ केचित्तु जीवज्ञयुक्तमिन्दुं शुभं विदुः ॥ २६ ॥ पञ्चपञ्चाशमेवांशं जामित्रं परमं परे । अंशादुज्झन्ति लग्नेन्द्वो- ५

लग्नस्योभयपार्श्वयोः प्रत्येकं पंचदशानां त्रिंशांशानां मध्ये यदि क्रूरग्रहौ स्यातां तदा सा क्रूरकर्तर्यवश्यं त्याज्या । एवं चन्द्रस्यापि ॥ सुक्कं १ गारय २ मंदाण ३ सत्तमे ससहरे गहिअदिक्खो । पीडिज्जए अवस्सं सत्थकुसीलत्तवाहीहि । 3 चतुर्ष्वपि केन्द्रेषु सौम्यग्रहाश्चेत् स्युस्तदा तदा क्वचिदादरणीयमपीत्यर्थः ।

1 कलिमिति भौमादारभ्यार्कं यावत्क्रमेणामूनि फलानि । विशेषस्तु नीचेऽस्तं वाप्ते इत्यत्र ये ग्रहाणामस्तमयविषये कालांशा उक्ताः सन्ति तेषामर्धविभागे यदि ग्रहाणां योगः स्यात्तदा सा युतिर्दुष्टा । यदि तु कालार्धविभागप्राप्ता अतीता वा स्युर्ग्रहास्तदा यथोक्तदोषा उत्पद्यन्ते परं निवर्तन्ते । यच्छौनकः—"योगा यथोक्तफलदाः कालार्धविभागसंश्रितानां तु । अप्राप्तातीतानामिच्छामात्रं फलं तेषाम् ॥ १ ॥" 2 ग्रहवर्जिताविति सप्तमं गृहं ग्रहशून्यं शुभम्, यदाहुः सप्तर्षयः—"वैधव्यं १ सापत्न्यं २ वन्ध्यात्वं ३ निष्प्रजत्वं ४ दौर्भाग्यम् ५ । वेश्यात्वं ६ गर्भच्युति ७ रर्काद्या लग्नतोऽस्तगाः कुर्युः ॥ १ ॥" चन्द्रश्चैकाकिस्थितः शुभः । केचिदिति ते हीन्दोर्बुधगुरुवर्जग्रहयुतेः फलमेवमाहुः, तथाहि—"रविणा १ सणि २ भोमेहिं ३ सुक्क ४ केऊहिं ५ राहुणा ६ । एगरासिगए चंदे जुइदोसो पवुच्चइ ॥ १ ॥ दरिद्दा १ समणी २ चेव मरए ३ ससवत्तिआ ४ । कवालिणी अ ५ दुस्सीला ६ कमा नारी विवाहिआ ॥ २ ॥" शुक्रेन्द्वोर्युतिर्विवाहे सर्वथा त्याज्येति व्यवहारसारे । सत्यसूरिस्त्वाह—"अन्यर्क्षेऽन्यगृहे वा कुजबुधगुरुशुक्रशौरिभिः सार्धम् । न भवति दोषाय शशी प्रदक्षिणं याति यदि चैषाम् ॥ १ ॥" विशेषस्तु—"क्षयाद्यैः क्रूरैर्युते चन्द्रे व्यसुः प्रव्रजितः शुभैः ।" इति दैवज्ञवल्लभे ॥ 3 अंशादिति लग्नेन्द्वोः सत्कादधिकृतादंशात् पञ्चपञ्चाशमेवांशम् । गर्हितग्रहदूषितं सन्तं तत एव हेतोः परमजामित्राख्यं तं दोषं परे उज्झन्तीत्यन्वयः । भावना त्वेवम्—यत्संख्यो नवांशो लग्नेऽधिकृतस्तत्संख्यः सप्तमस्थानस्थराश्यंशः पञ्चपञ्चाशः स्यात्, इन्दुरपि राशौ यत्संख्येंऽशेऽस्ति तत्सप्तमराशेस्तावत्संख्योंऽशश्चन्द्राक्रान्तादंशात् पञ्चपञ्चाशः स्यात्, ततो लग्नांशाच्चन्द्रांशाद्वा पञ्चपञ्चाशेंऽशे चेत्क्रूरग्रहोऽस्ति शुक्रो वा तदा परमं जामित्रम् । यथा—मेषस्याद्यांशे लग्नं चन्द्रो वा तुलायाश्चाद्येंऽशे क्रूरग्रहः शुक्रो वेति, मेषस्य द्वितीये चेत्तदा तुलाया अपि द्वितीये, एवं द्वयोरपि तृतीये तुर्ये चेत्यादि । एतत्त्याज्यमेव । यदुक्तम्—"लग्नेन्दुसंयुतादंशात् पञ्चपञ्चाशदंशके । ग्रहोऽन्यो यद्यसौ दोषो न गुणैरपि हन्यते ॥१॥"

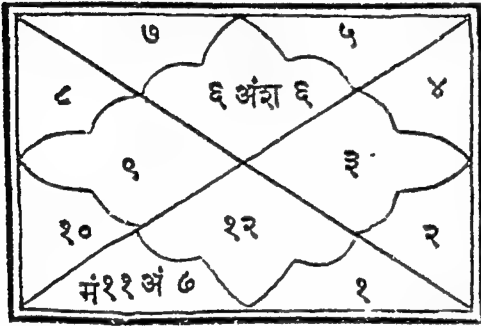
गर्हितग्रहदूषितम् ॥ २७ ॥ स्थापने स्युर्विधौ युक्ते दृष्टे वाऽऽरादिभिः क्रमात् । अग्निभीऋद्धिसिद्धार्चाश्रीपञ्चत्वाऽग्निभीतयः ॥ २८ ॥ जन्मराशिं जनेर्लग्नं ताभ्यामन्त्यं तथाष्टमम् । लग्नलग्नांशयोरीशौ लग्नात् षष्ठाष्टमौ त्यजेत् ॥ २९ ॥ इन्दुक्रूरयुतं लग्नं तथा लग्नोदिताशकान् । अधिकांशग्रहं

इति दैवज्ञवल्लभे । यदि तु पञ्चपञ्चाशाद्न्यूनोऽधिको वा स्यात्तदा स जामित्राख्य एव दोषो न तु परमजामित्राख्य । यथा मेषस्य तृतीयेऽंशे लग्नमिन्दुर्वा तुलायाश्चाद्ये द्वितीये वा क्रूरग्रह शुक्रो वा स्थितस्तदा सोऽशस्त्रिपञ्चाशश्चतु पञ्चाशो वा स्यात् । यदा च मेषस्याद्येऽशे लग्नमिन्दुर्वा तुलायाश्च द्वितीये तृतीये तुर्ये वांशे क्रूरग्रह शुक्रो वा तदा स तस्मात् षट्पञ्चाश सप्तपञ्चाशोऽष्टपञ्चाशो वा स्यादित्यादि । अयं च दोषो नातिदुष्ट इति तन्मत । बहुमतम् चैतत् ॥

1 पुष्या दृष्या । 2 प्रतिमा साधिष्ठायिका, सर्वपूजिता च स्यात् । 3 इद नारचन्द्रे न वर्जितम् ॥ 4 केचित्तुर्यमपि । तथा जन्मगृहजन्मभाभ्यामष्टमभवन मृतिप्रद लग्ने । व्ययहिबुककेन्द्रसस्थे शुभग्रहे शोभन बलिभि । 5 चकाराद्द्रेष्काणस्यापि लग्नात् षष्ठाष्टमौ त्यजेदिति । 'लग्नस्थेऽपि गुरौ दुष्ट षष्ठस्थो लग्ननायक । इति लल्ल । 'विलग्नाधिपतौ षष्ठे वैधव्य स्यात्तथांशपे । द्रेष्काणाधिपतौ मृत्युर्विलग्ने बलवत्यपि' इति लक्ष्मीधर । लग्नेशोऽष्टमो यदि लग्नद्रेष्काणाद् द्वाविंशे द्रेष्काणे स्यात्तदा भृशमशुभ । यदि च लग्नपतिमृत्युपती एकद्रेष्काणस्थौ स्याता तदा भृशतरमशुभम् । 'वर्षमासदिनैर्गेहद्रेष्काणनवमांशपा । राशिमानेन दास्यति फलमित्याह शौनक' । 6 अनयोरपवादस्तु 'न वृश्चिक हन्ति कुजोऽजवर्ती, वृष न शुक्रोऽपि तुलाधरस्थ । तथैव कुम्भ रविजो न हति, मृगस्थितो वा तनुग व्ययस्थ' । एकस्वामिकत्वात् । अनयैव युक्त्या मेषे तुलाया वा जन्मलग्ने सति जन्मराशौ वा सति ताभ्यामष्टमावपि वृश्चिकवृषौ लग्नत्वेन गृह्यमाणौ न दोषाय । उपलक्षणत्वाद्द्वादशोऽपि लग्नेशो न शुभ । 7 'सौम्यग्रहयुक्तमपि प्राय शशिन विवर्जयेल्लग्ने । क्रूरग्रह न लग्ने कुर्यान्नव-पञ्चमधने वा' ॥ इति लल्ल । 'लग्नस्थे तपने ज्वालो १ रसातलमुरग कुजे २ क्षयो मन्दे ३ तमो राहौ ४ केतावन्तस्सहित ५ ॥ १ ॥ 'योगेष्वेषु कृत कार्यं मृत्युदारिद्र्यशोकदम्' । इति दैवज्ञवल्लभे । 8 लग्नकथितकन्यादिनवांशकानपीन्दुक्रूरग्रहयुतान् त्यजेत् । इन्दुयुतादाचर्पा-द्वैधव्य क्रूरग्रहयुतात्पञ्चमेऽब्दे नि सशय मृत्युरिति गदाधर । 9 यावतिथोऽशो लग्नसत्क कार्ये वर्तमानतयाऽधिकृतस्तावतिथ एवांशो द्वादशस्वपि भावेषु वर्तमानतयोच्यते । एव च सति यत्र तत्रापि भावे यो ग्रहो वर्तमानमशमुल्लङ्घ्य स्थित सोऽग्रेतनभावस्थ एव ज्ञेय । ततश्च दुष्यगृहादर्वागपि त्यजेदित्यस्याय भाव । अनयाऽपि रीत्याऽग्रेतन-भावस्थोऽसौ ग्रहो यदि त्याज्यत्वेनोक्त स्यात्तदा तादृश लग्न न ग्राह्यम् । यथा प्रतिष्ठायां कन्यालग्ने षष्ठे मिथुनांशे गृह्यमाणे सति कुम्भराशौ यदि सप्तमाद्यशेषु कुज स्यात्तदा

दूष्यगृहादर्वागपि त्यजेत् ॥ ३० ॥ भवेज्जन्मनि जन्मर्क्षान्मृत्युधामनि यो ग्रहः । शुभोऽपि लग्नवर्त्येष सर्वकार्येषु नो शुभः ॥ ३१ ॥ शनिस्त्रिकोणकेन्द्रस्थो बलीयान् सुहृदीक्षितः[2] । कुजः केन्द्रान्त्यधर्माष्टस्थितो[3] वा भद्रभञ्जनः[4] ॥ ३२ ॥ रविः[5] कुजोऽर्कजो राहुः शुक्रो वा सप्तमस्थितः । हन्ति स्थापककर्तारौ स्थाप्यमप्यविलम्बितम् ॥ ३३ ॥ लग्नाम्बुस्मरगो राहुः सर्वकार्येषु वर्जितः । त्रिषडेकादशः शस्तो मध्यमः शेषराशिषु[6]

भावरीत्या मीनस्थत्वात् सप्तम एवेत्यतस्तल्लग्नमपि त्याज्यमेव । तत्स्थापना यथा—



एवमन्यत्रापि भाव्यम् । ननु यद्येवं दूष्यगृहं त्याज्यमूचे तदाऽनयैव रीत्या यद्गृहं ग्रहेण भूष्यमाणं स्यात्तस्यादरणीयतयाऽपि भविष्यति, मैवम्, ईदृग्गुणानामाहार्यत्वेनानादरणीयत्वस्यैवार्हत्वात् । उक्तं च—"नाङ्गीकारो भावजानां गुणानां, तद्दोषाणां तत्त्वतस्त्याग एव । भावव्यक्तावष्टमत्वं गतोऽपि, त्याज्यो लग्नात्सप्तमः सप्तसप्तिः ॥ १ ॥" तथा—"सप्तमस्थो यदा चन्द्रो भवेद्भावफलाष्टमः । न तदा दीयते लग्नं शुभैः सर्वग्रहैरपि ॥ १ ॥" तथा—"प्रत्याख्येयः पाक्षिकोऽपीह दोषः सम्यग्व्यापी यो गुणः सोऽनुगम्यः । यस्मादंशैर्देहभावादिकः सन्न स्याद्भूत्यै भार्गवः पञ्चमोऽपि ॥ १ ॥" इदं विवाहमाश्रित्य विवाहवृन्दावनादौ ॥

1 ऋक्षो राशिर्लग्नश्च, 'जन्मर्क्षजन्मलग्नाभ्यां यौ रन्ध्रेशावथाष्टमे । लग्ने तांश्च तदंशांश्च तद्राशीनपि त्यजेत् ।' इति भास्करः । 2 इदं कुजेऽपि योज्यम् । 3 'लग्नाद्भौमेऽष्टमगे दम्पत्योर्वह्निना मृतिः समकम् । जन्मनि यो वाऽष्टमगस्तस्मिँल्लग्नं गते वापि' ॥ १ ॥ 4 सान्वर्थेयं संज्ञा । 5 कर्ता प्रतिष्ठाया गुर्वादिः । अयं श्लोकः प्रतिष्ठामाश्रित्य ज्ञेयः ॥ 6 सर्वकार्येष्विति दीक्षाप्रतिष्ठादिषु । केतुस्तु जन्मसप्तमस्थः शशियुतश्च त्याज्यः, त्रिषडेकादशो ग्राह्यः, शेषस्थानेषु मध्यम इति नारचन्द्रोक्तिः । अनया च राहुर्नवमद्वादशोऽपि श्रेष्ठ इत्यागतम् । अन्यथा केतोस्त्रिषष्ठत्वसंपत्त्यसंभवात् । इत्युक्ताः सामान्येन घटिकालग्नेषु त्याज्या दोषाः ॥ अथ सर्वकार्येषु घटिकालग्नेषु साधारणी भद्रदा ग्रहसंस्था तावदेवम्—शनिरवीन्दुभौमा लग्नस्थाः, चन्द्रभौमबुधगुरुशुक्रा अष्टमस्थाः, चन्द्रशुक्रलग्नेशांशेशाः षष्ठगाः, सर्वे सप्तमगाश्चाशुभाः । यत्त्रिविक्रमः—"त्याज्या लग्नेऽब्धयो ४ मन्दात् षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः । रन्ध्रे ८ चन्द्रादयः पञ्च सर्वेऽस्तेऽब्जगुरू समौ ॥ १ ॥" अत्र मन्दादिति राहुरपि मन्दवज्ज्ञेयः । समाविति सर्वेऽप्यस्तेऽशुभाः. केषाञ्चिन्मते तु चन्द्रगुरू सप्तमे उदासीनावित्यर्थः । सर्वकार्येषु शुभग्रहसंस्था त्वेवम्—"लग्नादुपचयस्थे ३-६-११ ऽर्केऽन्त्या १२ स्त ७ कर्मा १० य ११ गे विधौ । क्षोणी-

१|| ३४ || दीक्षायां[1] तरणिर्धनै[2]स्त्रि[3]तनयॉ[5]रिं[6]स्थः शशी द्वि[2]त्रि[3]षट्[6], व्योमस्थः

पुत्रेऽर्कपुत्रे च दुश्चिक्य ३ रिपु ६ लाभ ११ गे ॥ १ ॥ व्यक्तरिष्फा १२ ष्टमे ८ सौम्ये जीवेऽष्टा ८ रि ६ व्ययो १२ ज्झिते । सर्वकार्याणि सिध्यन्ति व्यक्तपट्सप्तमे सिते ॥ २ ॥" इति दैवज्ञवल्लभे । एतत्प्रकारद्वयोत्तीर्णा तु मध्यमा ग्रहस्थाः । त्रिविधानामप्यासां स्थापना–

	उत्तमा	मध्यमा	अधमा
रवि	३–६–१०–११	२–४–५–८–९–१२	१–७
चन्द्र	१२–७–१०–११	३–२–४–५–९	३–८–१
मंगल	३–६–११	२–४–५–९–१०–१२	१–७–८
बुध	१–२–३–४–५–६–७–९–१०–११	१२	८
गुरु	१–२–३–४–५–६–७–९–१०–११	६–१२	८
शुक्र	१–२–३–४–५–८–९–१०–११–१२	०	६–७
शनि	३–६–११	२–४–५–८–९-१०-१२	१–७
राहु	३–६–११	२–५–८–९–१०–१२	१–४–७
केतु	३–६–११	२–५–८–९–१०–१२	१–४–७

1 एते यथोक्तस्थानस्था दीक्षालग्ने श्रेष्ठलाभदेशप्रदा । हर्षप्रकाशादिषु तु ग्रहाणामुत्तमादित्रिभंग्येवमूचे—"दु पण [illegible] रवि दु छ ससी कुज ति छ दह बुह ति छ पण दसमो । केंद तिकोणे य गुरू सुक्को ति अ छ नव बारसमो ॥ १ ॥ मंदो दु पण छ अट्ठमो शुक्र विणा सव्विगारसहा सुहया । चदाउ कूर सत्तम अट्ठमसुहा दिक्खसमयम्मि ॥ २ ॥ रवि ति ३ ससि सत्त दसमो बुहेग चउ सत्त नव गुरू वि छ दो । सुक्को दु पंचु सणि तिअ मज्झिम सेसा असुह सव्वे ॥ ३ ॥" स्थापना—

	उत्तमा	मध्यमा	अधमा
रवि	२–५–६–११	३	१–४–७–८–९–१०–१२
चन्द्र	२–३–६–११	७–१०	१–४–५–८–९–१२
मंगल	३–६–१०–११	०	१–२–४–५–७–८–९–१२
बुध	३–२–६–५–१०–११	१–४–७–९	८–१२
गुरु	१–४–७–१०–९–५–११	३–६–२	८–१२
शुक्र	३–६–९–१२	२–५	१–७–४–८–१०–११
शनि	२–५–६–८–११	३	१–४–७–९–१०–१२
राहु-केतू	३–६–११	२–५-८-९-१०-१२	१–४–७

इदमिह तत्त्वम्—"अहवा वि मज्झिमबल काऊण सणिं गुरु च बलवंत । अबल शुक्र लग्गे तो दियस दिज्ज सीसस्स ॥ १ ॥" इति श्रीहरिभद्रसूरिवचः । एते च क्रमान्मध्यमोत्कृष्टहीनबला एवमेव स्युः, तथाहि–शनिर्द्विपञ्चाष्टैकादश पणफरस्थत्वान्मध्यमबल । षष्ठस्तु आपोक्लिमस्थत्वेऽपि दिग्बलाद्यत्वान्मध्यमबल । गुरुस्तु केन्द्रत्रिकोणेषु बलिष्ठ इति स्फुटमेव । एकादश तु गुरोर्हर्षस्थान वक्ष्यते तेन तत्रापि बलिष्ठ । शुक्रस्तु त्रिषड्नवद्वादशेष्वापोक्लिमस्थत्वाद्धीनबल । उक्त च त्रैलोक्यप्रकाशे—"रूपा २० र्ध १० पाद-

क्षितिभूस्त्रिषड्दशमगो ज्ञेज्यौ व्ययाष्टोज्झितौ । १-२-३-४-५-६-७-९-१०-११ शुक्रोऽन्त्यारिसुतत्रिधर्मधनगो मन्दो धनभ्रातृषट्, पुत्रेच्छिद्रग-तश्च शोभनतमः सर्वे च लाभस्थिताः ॥ ३५ ॥ विवाहे त्वर्कार्कौ त्रिरि-३ पुनिधनायेषु शुभदौ, विधुः स्वत्र्यायेषु क्षितितनय आयत्रिरिपुगः । बुधेज्यौ सप्ताष्टव्ययविरहितावास्फुजिदरि—स्मराष्टान्त्यान्मुक्त्वा वितनुसु-खकामेष्वथ तमः ॥ ३६ ॥ विवाहे नाष्टमाः श्रेष्ठाः पञ्च सूर्यशनी ६ विना । षष्ठौ चेन्दुसितौ तद्वदन्त्येऽन्त्य[1] इति केचन ॥ ३७ ॥ चन्द्रे च

विवाहकुण्डलीग्रहसंस्था

	उत्तमा	मध्यमा	अधमा
रविः	३—६—८—११	२—४—५—९—१०—१२	१—७
चन्द्रः	२—३—११	४—५—७—९—१०—१२	१—६—८
मंगलः	३—६—११	२—४—५—९—१०—१२	१—७—८
बुधः	१—२—३—४—५—६—९—१०—११	१२	७—८
गुरुः	१—२—३—४—५—६—९—१०—११	७—१२	८
शुक्रः	१—२—३—४—५—९—१०—११	१२	६—७—८
शनिः	३—६—८—११	२—४—५—९—१०—१२	१—७
रा० के०	२—३—५—६—८—९—१०—११	१२	१—४—७

लग्ने च चरेऽङ्गनाग्रहैर्दृष्टे[2] च, केन्द्रे[3] बलिभिः श्रिते चरैः १ । युग्मर्क्षगे वाऽथ विधौ विलोकिते पापग्रहैः २ स्याद्युवतेः पतिद्वयम् ॥ ३८ ॥ रविचन्द्रकुजे-९ नीचे १ लग्नेशे शत्रुराशिगे २ । निर्वीर्ये[4] चापि जामित्रे ३ युवत्या निरपत्यता ॥ ३९ ॥ जामित्रेशः[5] पतिः स्त्रीणां श्वशुरौ भृगुभास्करौ । तैरुच्चादिस्थितैस्तेषां ११

५ वीर्याः स्युः केन्द्रादिस्था नभश्चराः" । तेनैते उत्तमभङ्गे न्यस्ताः । शेषग्रहास्तु तत्रस्थाः सर्वसम्मतत्वेन रेखाप्रदास्तेऽप्युत्तमभङ्गे । येषां तु रेखाप्रदत्वे ग्रन्थान्तरविसंवादस्ते मध्यमभङ्गे । चन्द्रस्तु सप्तमः प्रस्तुतगाथानुसरणार्थमेव मध्यमभङ्गेऽलेखि । एतद्भङ्गद्वयो-त्तीर्णास्त्वधमभङ्गे । शुक्रस्त्वेकादशः, सूत्रे रेखाप्रदत्वेनोक्तोऽपि नारचन्द्रलग्नशुद्ध्यादिषु निषिद्धत्वादधमभङ्गेऽलेखि ॥

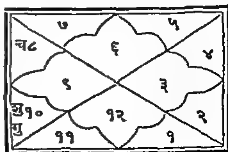
1 केतुः । 2 एकस्मिन्नपि किं पुनर्द्वित्रिषु । 3 यायिसंज्ञैः । 4 स्वामिसौम्यग्रह-युतिदृष्ट्यभावक्रूरतद्भावादिना निर्वीर्यत्वम् । 5 श्वशुराविति भृगुः श्वश्रूः, रविः श्वशुरः, एकशेषे श्वशुरौ । तैरिति जामित्रेशाद्यैः । उच्चादीति स्वोच्चे दीप्तः १ । स्वर्क्षे स्वस्थः २ ।

श्रेयः स्यादन्यदन्यथा ॥४०॥ लग्नोदितांशः स्वेशेन युतो दृष्टोऽथवा नृणाम्। तद्वज्जामित्रगः स्त्रीणामिष्टोऽनिष्टो विपर्यये ॥ ४१ ॥ लग्नेऽर्कारी शुभा धर्मे श्रीवत्सो यर्ध्दरी रविः१। अर्धेन्दुर्विक्रमे मन्दो रविर्लाभे रिपौ कुजः२ ॥ ४२ ॥ शंखः शुभग्रहैर्बन्धुधर्मकर्मस्थितैर्भवेत्३। ध्वजः सौम्यैर्विलग्नस्थैः क्रूरैश्च निधनाश्रितैः४ ॥ ४३ ॥ गुरुर्धर्मे व्यये शुक्रो लग्ने ज्ञश्चेत्तदा गजः५। कन्यालग्नेऽलिगे चन्द्रे हर्षः शुक्रेज्ययोर्मृगे६ ॥४४॥ धनुरष्टमगैः सौम्यैः पापैर्व्ययगतैर्भवेत् ७। कुठारो भार्गवे षष्ठे धर्मस्थेऽर्के शनौ व्यये८ ॥४५॥ मुशलो(लं) बन्धुगे भौमे शनावन्त्येऽष्टमे विधौ९। चक्रं च प्राचि

सुहृद्गृहे मुदित ३। स्ववर्गग शान्त ४। स्फुटकिरणसृत् शक्त ५। स्व नीचमतिक्रान्त स्वोच्चाभिमुख प्रवृद्धवीर्य ६। स्वांशस्थ सौम्यैर्दृष्टोऽधिवीर्य ७। सूर्यहतो विकल ८। शत्रुगृहे खल ९। ग्रहविजित पीडित १०। नीचर्क्षे दीन ११। इति लग्नोक्तासेकादशासु ग्रहावस्थासु शुभावस्थे। तेषां पत्याद्दीनाम्। अन्यदन्यथेति आसेवावस्थासशुभावस्थैर्जामित्रेशशुक्रार्के क्रमात्तेषां पत्यादीनामधेय ॥

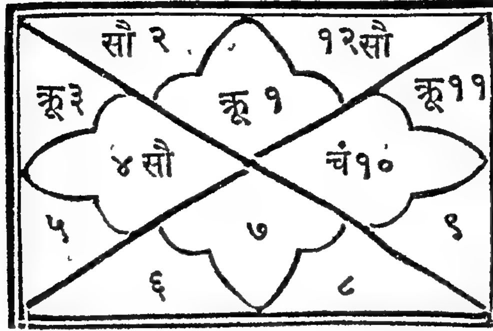
1 अथ भाव -एक किलोदयास्तशुद्धिप्रकारोऽयम्। यदुक्त यतिवल्लभे—"लग्नोदिते तत्प्रभुणा नवांशे, दृष्टे युते चोदयशुद्धिरुक्ता। तत्सप्तमांशे तु कलत्रभाजि, स्वस्वामिनैव कथिताऽस्तशुद्धि ॥ १ ॥" अत्र तत्सप्तमांशे त्विति कोऽर्थः लग्ने यावतिथोऽश उदित सप्तमभावस्य कलत्राख्यस्य तावतिथोऽशो लग्नोदितांशाद्गणनया सप्तम एव स्यात्, इत्येकोऽयमुदयास्तशुद्ध्यो प्रकार। अन्यश्चाग्रे वक्ष्यते। उभावपि चोदयास्तशुद्धिप्रकारौ विवाहलग्नेष्ववश्य ग्राह्यौ। भास्करस्तु पञ्चमगृहे तावतिथ पुत्रनवांशकमपि स्वेशयुतदृष्टमिच्छति। आह च—"नाथायुतेक्षिता लग्नभार्यापुत्रनवांशका। क्रमात् पुत्रीसुतान् घ्नन्ति न घ्नन्ति युतवीक्षिता ॥ १ ॥" 2 यथराविति ये ये ग्रहा स्थानेषु नियमितास्ते ते तथा विलोक्यन्ते, शेषास्तु यथेच्छम्। एव सर्वयोगेषु यथासम्भव ज्ञेयम् ॥ 3 कन्येति हर्षयोगे कन्यालग्न नियमयन् ज्ञापयति अपरयोगेषु लग्ननियमः कोऽपि नास्तीति। हर्षयोगस्थापना—

4 प्राचि चक्रार्धे इति लग्नस्य यावन्तोऽशा उदिता दशमस्य तावद्भ्योऽशेभ्योऽग्रे प्रदक्षिण गमने तुर्यस्य तावदशान् यावच्चक्रस्य प्राच्यमर्धं तत्र धुरि चन्द्रस्तस्मादेकान्तरं गृहेषु पाप शुभश्चेति महत्स्थाया चक्रयोग। स्थापना १२१ पृष्ठे



चक्रार्धे चन्द्रात् पापशुभैः क्रमात्[1] ॥ ४६ ॥ कूर्मः पुत्रार्थरन्ध्रान्त्येष्वा-

चक्रयोगस्थापना



रमन्देन्दुभास्करैः । वापी पापैस्तु केन्द्रस्थैर्योगाः स्युर्द्वादशेत्यमी ॥ ४७ ॥

एभ्यः श्रीवत्सपूर्वाः[2] षट् पूर्वे सर्वेषु कर्मसु । श्रेयस्तमा धनुर्मुख्यास्त्वन्यथा २

स्युः पडुत्तरे ॥ ४८ ॥ आनन्दजीवनन्दनजीमूतजयस्थिराऽमृता योगाः

ज्ञगुरुसितैः प्रत्येकं द्विकत्रिकैश्चापि लग्नगतैः[3] ॥ ४९ ॥ योगा यथार्थ-

नामानः सर्वेषूत्तमकर्मसु । ऐश्वर्यराज्यसाम्राज्य[4]विधातारः क्रमादमी ॥५०॥

प्रतिष्ठायां श्रेष्ठो रविरुपचये३-६-१०-११ शीतकिरणः, स्वधर्माढ्ये तत्र ७

---

1 कूर्मयोगे स्थानानां ग्रहाणां च यथासंख्यं ज्ञेयम् । रत्नमालायां तु गजादिचतुष्क-लक्षणमेवमूचे—"तनुनवभैवगैः क्रमेण योगो, बुधविबुधार्चितपङ्गुभिर्गजः स्यात् ।" "अत्र भवेत्येकादश रुद्रा इत्येकादशं गृहं लक्ष्यते । व्ययरिपुहिबुकेपु वक्रशुक्रद्युमणिसुतैः क्रमशः कुठार एषः ॥ १ ॥ रविकविरविजेन्दुभिः क्रमेण, व्ययधनषड्निधनेषु कूर्म एषः । व्ययनिधनतनूषु मन्दचन्द्रारुणकिरणैर्मुशलं जगुर्मुनीन्द्राः ॥ २ ॥" 2 श्रीव-त्सपूर्वा इति श्रीवत्साद्याः षट् पूर्वे प्रथमाः । अन्यथेति अत्यन्तमशुभाः विशेषस्तु—"उदयट्ठमंगे मम्मं १ नवपंचमि कूरकंटयं भणियं २ । दसमचउत्थे सल्लं ३ कूरा उदयत्थितं छिद्दं ४ ॥ १ ॥ मम्मदोसेण मरणं कंटयदोसेण कुलक्खओ होइ ॥ २ ॥" सल्लेण रायसत्तू छिद्दे पुत्तं विणासेइ ॥ २ ॥" इति पौ (पू)र्णभद्रः ॥ 3 लग्ने स्थितैः प्रत्येकं ज्ञाद्यैः क्रमेणानन्दादि त्रयम् ३, ज्ञगुरुभ्यां जीमूतः ४, ज्ञशुक्राभ्यां जयः ५, गुरु-शुक्राभ्यां स्थिरः ६, त्रिभिरपि लग्नस्थैरमृतः ७ । द्विकत्रिकैश्चेति द्विका द्वयरूपाः, त्रिकास्त्रयरूपाः ॥ 4 साम्राज्येति "सम्राट् तु शास्ति यो नृपान्" । अमी इति क्रमात्त्रिद्व्येकमिता एककद्विकत्रिकयोगाः एवमेते सर्वयोगास्त्रयोविंशतिः ॥ 5 लग्नमृत्यु-सुतास्तेषु पापा रन्ध्रे शुभाः स्थिताः । त्याज्या देवप्रतिष्ठायां लग्नषष्ठाष्टगः शशी । एते भंगदास्त्रिविक्रमोक्ताः । एकस्मिन्नपि भंगदस्थानस्थे ग्रहे सति रेखाधिकेऽपि ग्रहे प्रतिष्ठा न कार्या, भंगदत्वं विना केषुचिदिष्टेषु केषुचिदनिष्टेषु च सत्स्वपि रेखाधिके लग्ने प्रतिष्ठा

२-३-६-९-१०-११ क्षितिजरविजौ त्र्यायरिपुगौ३-११-६ । बुधस्वर्गाचार्यौ व्ययनिधनवर्जौ१-२-३-४-५-६-७-९-१०-११भृगुसुतः, सुतं
२ यावल्लग्नात्रयमदशमायेष्वपि तथा१-२-३-४-५-९-१०-११ ॥ ५१ ॥

कार्या, यस्तु कैश्चित् षष्ठराशौ प्रतिष्ठायां रेखाप्रद इत्युक्त तद्योगवशादेव नापरथेत्यूह्यमिति त्रिविक्रमशतकटीकायाम् । पूर्णभद्रस्तु ग्रहसस्थाफलान्येवमाह—"प्रासादभग १ हानी २ धन ३ स्वजन ४ पुत्रपीड ५ रिपुघाता ६ । स्त्रीमृति ७ मृति ८ धर्मगमा ९ सुख १० र्द्धि ११ शोका १२ स्वनो प्रभृति सूर्यात् ॥ १ ॥ कर्तृविनाश १ धनागम २ सौभाग्य ३ द्वन्द्व ४ दैन्य ५ रिपुविजया ६ । शशिनोऽसुख ७ मृति ८ विघ्ना ९ नृपपूजा १० विषय ११ वसुहानी १२ ॥ २ ॥ दहन १ सुरगृहभङ्गो २ भूलाभो ३ रोग ४ पुत्रशत्रुमृती ५ । रिपु ६ नारी ७ स्वजन ८ गुणभ्रंशा ९ रोगा १० र्थं ११ हानयो १२ भौमात् ॥ ३ ॥ चिरमहिम १ धन २ रिपुक्षय ३ सुख ४ सुत ५ परिपन्थिमरण ६ वरकन्या ७ । शशिजेन सूरिमृत्यु ८ र्वंसु ९ कर्मा १० भरण ११ रैनाशा १२ ॥ ४ ॥ कीर्ति १ र्वृद्धिः २ सौख्य ३ रिपुनाश ४ सुतसुख ५ स्वजनशोक ६ । स्त्रीसुख ७ गुरुमृति ८ धन ९ लाभ १० र्द्धयो ११ हानि १२ रमरगुरो ॥ ५ ॥ सिद्धि १ धन २ मान ३ तेज ४ स्त्रीसुख ५ दुष्कीर्तय ६ सुतारियुता । चैत्यादि सर्वहानि ७ र्व्यासुख ८ सितरेपु ९-१०-११-१२ पूज्यता शुक्रात् ॥ ६ ॥ पूजा १ कर्तृविघात २ भूरिविभव ३ प्रासादबन्धुक्षया ४, पुनाक्षेम ५ विपक्षरोगविलय ६ ज्ञातप्रियाव्यापद ७ । गोत्रप्राणिविपत्ति ८ पातकपरिष्वङ्गौ च ९ कार्यक्षति १०, कान्ताकाञ्चनरत्नजीवितधन ११ मन्देन मान्द्योदय १२ ॥ ७ ॥ "सकलकुण्डलिकासु विधुन्तुद, शनिसमानफलो हि विचार्यताम् ।" लल्लस्त्वाह—"बलवति सूर्यस्य सुते बलहीनेऽङ्गारके बुधे चैव । मेषवृषस्थे सूर्ये, क्षपाकरेऽर्चार्हती स्थाप्या ॥ १ ॥" "मेषमृगस्थे सूर्ये" इति केचित् पठन्ति । "बलहीने त्रिदशगुरौ बलवति भौमे त्रिकोणसस्थे वा । असुरगुरौ चायस्थे महेश्वरार्चा प्रतिष्ठाप्या ॥ २ ॥ बलहीने ऽसुरगुरौ बलवति चन्द्रात्मजे विलग्ने वा । त्रिदशगुरावायस्थे स्थाप्या ब्राह्मी तथा प्रतिमा ॥ ३ ॥ शुक्रोदये नवम्या बलवति चन्द्रे कुजे गगनसस्थे । त्रिदशगुरौ बलयुक्ते देवीनां स्थापयेदर्चाम् ॥ ४ ॥ बुधलग्ने जीवे वा चतुष्टयस्थे भृगौ हिबुकसस्थे । वासवकुमारयक्षेन्दुभास्कराणा प्रतिष्ठा स्यात् ॥ ५ ॥ यस्य ग्रहस्य यो वर्गस्तेन युक्ते निशाकरे । प्रतिष्ठा तस्य कर्तव्या स्वस्ववर्गोदयेऽपि वा ॥ ६ ॥ असारकालाभ्रयस्ते कारकसूत्रधारकर्तृणाम् । क्षयमरणबन्धनामयविवादशोकादिकर्तारः ॥ ७ ॥" विशेषस्तु सर्वग्रहे रेखाप्रदः सर्वकार्येषु विंशतिविंशोपक लग्न स्यात् । तथाहि—"अड्डुट्ठ विसा रविणो पण ससिणो तिन्नि हुंति तह गुरुणो । दो दो बुहसुक्काण सड्ढा सणिभोमराहूण ॥ १ ॥" एवं मीलने विंशतिर्विंशोपाः ॥

प्रतिष्ठायां ग्रहसंस्थेयम्

	उत्तमा	मध्यमा
रविः	३-६-११	१०
चन्द्रः	२-३-११	१-४-६-७-९-१०
मंगलः	३-६-११	०
बुधः	१-२-३-४-५-१०-११	६-७-९
गुरुः	१-२-४-५-९-७-१०-११	६
शुक्रः	१-४-५-९-१०-११	२-३
शनिः	३-६-११	०
रा. के.	३-६-११	१-४-५-८-९-१०-१२

	विमध्यमा	अधमा
रविः	५	१-२-४-७-८-९-१२
चन्द्रः	५	८-१२
मंगलः	५	१-२-४-७-८-९-१०-१२
बुधः	०	८-१२
गुरुः	३	८-१२
शुक्रः	६-७-१२	८
शनिः	५-१०	१-२-४-७-८-९-१२
रा. के.	०	१-७

बलहीना[1]ः प्रतिष्ठायां रवीन्दुगुरुभार्गवाः । गृहेशं[1]गृहिणी[2]सौख्य[3]स्वानि[4] हन्यु-र्यथाक्रमम् ॥ ५२ ॥ तनु[1]बन्धु[4]सुत[5]द्यून[7]धर्मे[9]षु तिमिरान्तकः । सकर्म[10]सु कुजार्कौ च संहरन्ति सुरालयम् ॥ ५३ ॥ सौम्य[2]वाक्पतिशुक्राणां य ३

---

1 बलहीना इति अष्टादशधा नवधा वाऽबलता प्रागुक्ता यद्वा नीचः क्रूरयुतोऽस्तमितो वा ग्रहो विबल एव ॥ 2 बलोत्कट इति ग्रहे किल बलं विंशतिधा, तथाहि—"स्व १ मित्र २ क्षों ३ च्च४ मार्गस्थ ५ स्व ६ मित्रवर्गगो ७ दितः ८ । जयी ९ चोत्तरचारी च १० सुहृद् ११ सौम्यावलोकितः १२ ॥ १ ॥ त्रिकोणा १३ यगतो लग्नात् १४ हर्षी १७ वर्गोत्तमांशगः १८ । मुथुशिलं १९ मूशरिफं २० यदि सौम्यैर्ग्रहैः सह ॥ २ ॥ सर्वयोगे भवेदेवं बलानां विंशतिर्ग्रहे । यावद्बलयुताः खेटास्तावद्विंशोपकाः फलम् ॥ ३ ॥" हर्षीति कोऽर्थः ? ग्रहाणां तावच्चतुर्धा हर्षस्थानं, तथाहि—"गो ९ त्र्य ३ ङ्गै ६ का १ य ११ धी ५ रिष्प १२ स्थानानि भास्करादिषु । हर्षस्थानमिदं पूर्वं १ सर्वेषु स्वोच्चभं परम् ॥ १ ॥ निशि सायं १ दिने २ योषित् १ पुंग्रहैश्च २ परं क्रमात् ३ । तुर्यं व्योम्नस्तनुं यावत्तुर्याद्यावच्च सप्तमम् ॥ २ ॥ पुंग्रहेषु तनोर्यावत्तुर्यं सप्तमतो नभः । स्त्रीग्रहेषु मुदः स्थानं ४ फलं तदनुमानतः ॥ ३ ॥" एपूच्चं प्रागुक्तत्वान्न गणितमिति त्रिधा हर्षिलम् । पूर्वोक्तैकादशावस्थासु शुभावस्थः षड्विधादिबलयुक्तो वा बली । एवमन्यत्रापि सबलता

एकोऽपि बलोत्कटः । क्रूरैरयुक्तः केन्द्रस्थः सद्योऽरिष्टं पिनष्टि सः ॥५४॥
बलिष्टः स्वोच्चगो दोषानशीतिं शीतरश्मिजः । वाक्पतिस्तु शतं हन्ति
२ सहस्रं चासुरार्चितः ॥ ५५ ॥ बुधो विनार्केण चतुष्टयेषु, स्थितः शतं

भाव्या । सद्यो रिष्टमिति तात्कालिकं रिष्टयोगम् । कोऽर्थः १ तत्काले यानि लग्नतिथिवारादीनि स्युस्तेषां योगेनोत्पन्नो रिष्टयोगो मधुसर्पिषो समसमायोगेन विषयोगवत् तम् । स चैवम्—"उदयाद्गतलग्नमिति(तिं)सक्रान्तेर्भुक्तदिवसमिति युक्ताम् । सैकां च विधाय बुध पृथक् पृथक् पञ्चधा न्यसेत् ॥ १ ॥ क्षिप्त्वा तत्र क्रमशः तिथि १५ रवि १२ दश १० वसु ८ मुनीन् ७ भजेन्नवभिः । शेषाङ्कः शरसङ्ख्यो यदि भवति तदा वदेन्निपुण ॥ २ ॥ कलहं १ कृशानुभीतिं २ भूरमयं ३ चौरविद्रवो ४ मृत्युं । क्रमशो भवेत् प्रतिष्ठा परिणयनादौ तदा रिष्टम् ॥ ३ ॥ इति ज्योतिषसारादौ । यद्वा—"तिथिवारभल्माङ्कान् समीस्य न्यस्य पञ्चशः । रसा ६ रामा ३ मही १ नागा ८ वेदा ४ स्तेषु क्रमात् ध्रुवा ॥ १ ॥ क्षेप्यास्ततो ग्रहे ९ र्भागे पञ्चशेषे फलं क्रमात् । रुजा १ ग्नि २ क्षितिभू- ३ चौरभयं ४ मृत्युभयं ५ तथा ॥ २ ॥ राशिपञ्चकशेषाणां योगे तु नवभिर्हृते । पञ्चशेषे भवेन्नागमीतिर्लग्ने निदाघते ॥ ३ ॥ इति बुधपञ्चकदोषः । पिनष्टीति जातकवृत्तावप्येवमुक्तम्, यदुत बुधगुरुशुक्राणां बलोत्कटयेन योगकर्तृग्रहोपरि तेषां पुष्टदृष्ट्या च सर्वेषां रिष्टयोगानां निर्बलत्वमितीहापि तथैवोचे ॥

1 पादगतवेधकान्तिसाम्याद्यसाध्यदोषवर्जमिति स्वयमूह्यम् । 2 विनार्केणेति त्रिष्वपि योज्यम् । विमनोभवेष्विति सप्तमवर्जकेन्द्रेषु । सर्वेनेति चतुर्ष्वपि केन्द्रेषु । रत्नमालाभाष्ये तु विमनोभवेष्विति त्रिष्वपि योजितम् । तच्च विवाहदीक्षे अधिकृत्यान्यापि सम्यग्योज्यम् "विवाहदीक्षयोर्लग्ने धूनेन्दुग्रहवर्जितौ" इत्युक्ते । लग्नमिति उक्त च—"तिथिवासरनक्षत्रयोगलग्नक्षणादिजान् । सबलान् हरतो दोषान् गुरुशुक्रौ विलग्नगौ ॥१॥ त्रिकोणकेन्द्रगा वाऽपि भग्न दोषस्य कुर्वते । वक्रनीचारिगा वाऽपि शजीवभृगव शुभा ॥ २ ॥ शुभा इत्यस्याय भाव—"वक्रारिनीचराशिस्थः शुभकृत्प्रोच्यते गुरुः । स्वोच्चांशस्थः स्ववर्गस्थो भृगुणा ज्ञेन वा युतः ॥ १ ॥ इति व्यवहारप्रकाशे । विशेषस्तु—दोषा किल द्विधा–एकाकिनोऽप्येके लग्नमुपघ्नन्ति, केचित्तु द्विन्रा मिलित्वैव घ्नन्ति, न लेकाकिन । ते चैवम्—दीक्षायां पूर्णिमा तिथि १ । प्रतिष्ठायां मंगलवार २ । प्रतिष्ठादौ गुरोश्चन्द्रबलं न ३ । शिष्यस्थापकयोस्तु जीवेन्द्वर्कबलानि समुदितानि विलोक्यन्ते तानि न सन्ति ४ । विवाहे वरस्य चन्द्रबलं न ५ । कन्यायास्तु जीवेन्द्वर्कबलानि समुदितानि विलोक्यन्ते तानि न स्युः ६ । शिष्यस्थापकवरकन्यानां जन्मराशिलग्नानि १०, जन्मलग्नलग्नानि १४, ताभ्यामेवाष्टमानि २२, द्वादशानि च लग्नानि ३० । तेषामेव शिष्यादीनां जन्मराशितो ३४ जन्मलग्नाद्वाऽष्टमस्थग्रहाणां तात्कालिकलग्ने मूर्तावस्थानम् ३८ । तेषामेव जन्मभानि ४२ । प्रतिष्ठादिसर्वकार्यलग्नेषु

हन्ति विलग्नदोषान् । शुक्रः सहस्रं विमनोभवेषु, सर्वत्र गीर्वाणगुरुस्तु लक्षम् ॥ ५६ ॥ लग्नजातान्नवांशोत्थान् क्रूरदृष्टिकृतानपि । हन्याज्जीव-२

च क्रूरैर्मुक्त ४३ भोग्या ४४ क्रान्तभानि ४५ । ग्रहविद्धं वा ४६, ग्रहभिन्नं वा ४७, ग्रहैरुदया ४८ स्वकरणेन दूषितं वा ४९, वक्रग्रहाक्रान्तं वा ५०, उल्काद्युत्पातदूषितं वा भं ५१ । लग्न ५२ तिथि ५३ नक्षत्रगंडान्ताः ५४ । एकार्गल ५५ विष्टि ५६ व्यतिपात ५७ वैधृत ५८ क्रान्तिसाम्यानि ५९ । संक्रान्तेरुभयपार्श्वयोः षोडश षोडश घट्यः ६० । अर्धयाम ६१ कुलिकौ ६२ । ग्रहणभं ६३ । ग्रहणदूषितदिनाः ६४ । लग्नाद्वा ६५ चन्द्राद्वा ६६ उभाभ्यां वा परमजामित्रस्थः क्रूरग्रहः ६७, शुक्रो वा ७० । अशुभे वारहोरे युगपत् ७१ । अशुभस्थानेषु ग्रहाः ७२ । भावरीत्यापि निषिद्धस्थानेष्वापतन्तो ग्रहाः ७३ । लग्नस्य ७४ चन्द्रस्य ७५ उभयोरपि वा प्रत्येकमुभयतः पञ्चदशत्रिंशांशमध्ये क्रूरग्रहाविति क्रूरकर्तर्यः ७६ । लग्नेशः ७७ अंशेशः ७८ उभावपि भावषष्ठौ ७९, तथैव भावाष्टमौ वा ८२ । अनुक्तो नवांशः ८३ । चन्द्रेण ८४ क्रूरेण वाऽऽश्रितलेनाशुद्धं लग्नं ८५, नवांशो वा ८७ । उदया ८८ स्तयोरशुद्धि ८९ श्चेति ॥ "एषां मध्यादेकेनापि हि दोषेण दूष्यते लग्नम् । द्वित्रैर्दोषैर्मिलितैर्यैर्न शुभं तानथो वक्ष्ये ॥ १ ॥ चन्द्रस्य मृतावस्था १ यमाहिरक्षोऽग्निपः क्षणो यत्र ॥ २ ॥ अवमं त्रिदिनस्पृग्वा ३ भवेत्तदा लग्नमशुभाय ॥ २ ॥ पापग्रहलत्ता १ चेदुपग्रहः २ स्याद्वरायुधः पातः ३ । ज्ञात्वैवं त्रिभिरेतैर्भवेत्तदा लग्नमशुभाय ॥ ३ ॥ द्विव्ययगाश्चेत् क्रूराः १ सौम्यानां केन्द्रसंस्थितिर्न भवेत् २ । लग्नपतिर्दुष्टयुतो ३ भवेत्तदा लग्नमशुभाय ॥ ४ ॥ शुभदृग्हीनं लग्नं १ प्रसूतिभं नो शुभैर्युतं दृष्टम् २ । केन्द्रस्थाश्चेन्न शुभा ३ भवेत्तदा लग्नमशुभाय ॥ ५ ॥" अत्र प्रसूतिभमिति शिष्यस्थापककन्याद्यन्यतरस्य जन्मराशिः शुभैर्युतदृष्टो न स्यादित्यर्थः ॥ "रविजीवौ समरेखौ शुद्ध्यां १ लग्नेऽपि मध्यभावफलौ २ । केन्द्रगतौ नो सौम्यौ ३ भवेत्तदा लग्नमशुभाय ॥ ६ ॥ व्ययगः सौरो १ नवमे पापखगः सद्ग्रहैर्वियुक्तः स्यात् २ । भृगुसुतयुक्तश्चन्द्रो ३ भवेत्तदा लग्नमशुभाय ॥ ७ ॥" प्रतिष्ठायां शुक्रेन्दुयुतिः श्रेष्ठा । तेन विवाहादावयं योगो योज्यः । "अन्त्यचतुर्थं लग्नं जन्मतिथि २ मास एव जन्माख्यः ३ । फाल्गुनमीनार्कयुतिर्भवेत्तदा लग्नमशुभाय ॥ ८ ॥" इत्येते समुदायिनो दोषा बुधगुरुशुक्रैः केन्द्रादिस्थैर्हन्यन्ते, यदुक्तं व्यवहारप्रकाशे—"हन्ति शतं दोषाणां शशिजः समुदायिनां हि केन्द्रस्थः । शुक्रो हन्ति सहस्रं बली गुरुर्लक्षमेकं हि ॥ १ ॥ अथ ये एकाकिनो दोषास्ते द्विधा—साध्या असाध्याश्च । तत्र गंडान्तविष्टिपरमजामित्रवेधादयो साध्याः, तेषु सत्सु सर्वग्रहबलादिनानागुणसद्भावेऽपि लग्नं न ग्राह्यम् । यदुक्तं—"एकोऽपि दूषयेद्दोषः प्रवृद्धं गुणसंचयम् । संपूर्णं पञ्चगव्येन मद्यबिन्दुर्घटं यथा ॥ १ ॥

1 तथा सति दर्शने यदि स्यादंशकमध्यगः क्रूरः । इन्दोर्लग्नस्य तथा न शुभः सर्वेषु कार्येषु । अस्यार्थः—लग्नं चन्द्रोऽन्येऽपि च ग्रहाः स्वस्वत्रिंशांशकस्थास्तात्कालिकाः स्पष्टी-

श्रीमद्गौर्जरपत्तने त्वजझषौ तत्त्वाक्षिभि२२५र्गोघटौ, पट्तत्त्वैः२५६शरखाग्निभिश्च३०५मिथुनो मार्गाननो वा पलैः। कर्की क्ष्मातिशयै३४१र्धनुर्वदलिवत्सिंहो द्विवेदत्रिकैः३४२कन्येन्दुत्रिदृगे-५३३१स्तुलावदुदयं यान्तीति मेषादयः ॥ ६३ ॥

मेष	२२५	मीन
वृष	२५६	कुम
मिथुन	३०५	मकर
कर्क	३४१	धन
सिंह	३४२	वृश्चिक
कन्या	३३१	तुला

लग्नानां मान घटी पल		होराणां मानं पल—अक्षरं	द्रेष्काणानां मान पल—अक्षरं	नवांशानां मान पल अक्षरं व्यक्षरं	द्वादशांशानां मान पल अक्षरं	त्रिंशां० मानं पल अक्षरं
मेष	३–४५	११२–३०	७५	२५	१८–४५	७–३०
वृष	४–१६	१२८	८५–२०	२८–२६–४०	२१–२०	८–३२
मिथुन	५–५	१५२–३०	१०१–४०	३३–५३–२०	२५–२५	१०–१०
कर्क	५ ४१	१७०–३०	११३–४०	३७–५३–२०	२८–२५	११–२२
सिंह	५ ४२	१७१	११४	३८	२८–३०	११–२४
कन्या	५ ३१	१६५–३०	११०–२०	३६–४६–४०	२७–३५	११–२
तुला	५ ३१	१६५–३०	११०–२०	३६–४६–४०	२७–३५	११–२
वृश्चिक	५ ४२	१७१	११४	३८	२८–३०	११–२४
धन	५ ४१	१७०–३०	११३–४०	३७–५३–२०	२८–२५	११–२२
मकर	५—५	१५२–३०	१०१–४०	३३–५३–२०	२५–२५	१०–१०
कुम	४ १६	१२८	८५–२०	२८–२६–४०	२१–२०	८–३२
मीन	३ ४५	११२–३०	७५	२५	१८–४५	७–३०

स्थापना—

रे	९६	अ
उ	१०२	भ
पू	१०८	कृ
श	११५	रो
ध	१२०	मृ
श्र	१३४	आ
उ	१४८	पु
पू	१५१	पु
मू	१५३	अ
ज्ये	१५२	म
अ	१५३	पू
वि	१४८	उ
स्वा	१४७	ह
	१४६	चि
अभिजित् २४८		

1 विशेषस्तु—"रेवत्युदयादश्व्यादीन्युद्गच्छन्ति जलपले क्रमशः । चित्रान्तान्यृतुनन्दे ९६ द्विखरूपे १०२ रष्टखाचनिभिः १०८ ॥ १ ॥ शरकुकुभि ११५ खद्विकुभि १२० युगगुणरूपे १३४ वसुदधिमृगांके १४८ । शशिपञ्चकुभि १५१ त्रिशरक्ष्माभि १५३ करविषयवसुधाभि १५२ ॥ २ ॥ त्रीषुकुभि १५३ रष्टयुगकुभि १४८ रगचतुरेकै. १४७ षडब्धिकुभि १४६ रेवम् । हस्तादे प्रतिलोम स्वात्याद्युदये क्रमान्मानम् ॥ ३ ॥ "अभिजिच्च वसुजिनै २४८ रिति ऋक्षाणामुदयपलसंख्या ।" एष्वभिजिद्वर्ज सपादभद्वयमानमीलने यथोक्त राशिमान स्यात् ॥

द्वादशराशिर्भगणो राशिस्तु त्रिंशता भवति भागैः । भागो षष्टिर्लिप्ता लिप्ता षष्ट्या विलिप्ताभिः ॥ ६४ ॥

मेष	१८५७	वृष
वृष	१८८५	मिथुन
मिथुन	१८९७	कर्क
कर्क	१८८८	सिंह
सिंह	१८६२	कन्या
कन्या	१८२७	तुला
तुला	१७९३	वृश्चिक
वृश्चिक	१७६९	धन
धन	१७६०	मकर
मकर	१७६७	कुंभ
कुंभ	१७८९	मीन
मीन	१८२१	मेष

संक्रान्त्यन्तरनाडिका अथ धृतिर्मेषादितोऽश्वेषुभि-र्भूतेभैर्मुनिगोभिरष्टवसुभिर्नेत्रर्तुभिर्भैस्तथा । अत्यष्टिश्चै समन्विता त्रिनचभिः खेटर्तुभिः खर्तुभिः, सप्ताङ्गैर्निधिकुञ्जरैरथ धृतिश्चन्द्रेक्षणैश्चै क्रमात् ॥ ६५ ॥ स्फुटोऽथ भानुर्गतनाडिकाभ्यः, संक्रान्तितः खज्वलनैर्हताभ्यः । भागादिभिः स्वान्तरभुक्तिलब्धै, राश्यादिकं स्याद्गतराशियुक्तैः ॥ ६६ ॥ गणितविदुपदेशात्तत्र दत्त्वाऽयनांशान्, पुनरपि भगणार्धं रात्रिलग्ने तु दद्यात् । अथ हत उदयस्त्रिभुक्तशेषैर्लवाद्यैरुपरि च खगुणाप्तः स्यात्पलात्मार्कभोग्यम् ॥ ६७ ॥ इष्टाद्भुक्तनवांशकैर्दशगुणैस्त्र्याप्तैर्लवाद्यं फलं, लग्नं सायनमूर्ध्वराशिसहितं सैकप्रवृत्त्यंशकम् । तद्भुक्तेन लवादिना तदुदयः क्षुण्णो हृतस्त्रिंशता, भास्वद्भोग्यवदान्तरोदययुतः कालः पलात्मा भवेत् ॥ ६८ ॥ संक्रान्तिराशेर्गतनाडिकाघ्ने, माने दिवा निश्यथ सप्तमस्य । संक्रान्तिभोगेन हृते तदीयत्र्यंशान्विते शेषमिहार्कभोग्यम् ॥ ६९ ॥ भुक्तेऽथ लग्नस्य तदंशकाच्च, दद्यात्त्रिभागावुदयप्रवृत्त्योः । तल्लग्नभुक्तं च तथार्कभोग्यं, कालोऽन्तरालोदययुक् पलात्मा ॥ ७० ॥ त्यक्त्वाऽर्कभोग्यं च पलात्मकालाद्भागादिभोग्यं तरणौ निद्-

1 भागस्य त्रिंशांश इति नामान्तरम् । तन्मानं चैवम्—"लग्नानां सर्वदेशेषु यन्मानं घटिकादिकम् । तच्च द्विघ्नं पलाद्यं स्यान्मानं त्रिंशांशकस्य हि ॥ १ ॥" लिप्ताविलिप्तयोः कलाविकलेति नामान्तरम् । विशेषस्तु—विलिप्तायां षष्टिः परमविकलास्तासामक्षरेत्याख्यान्तरम् । अक्षरेऽपि षष्टिर्व्यक्षराणि स्युस्तानि चातिसूक्ष्मत्वादसंव्यवहार्याणि ।

2 इतः परं वृत्त ७२ यावत् विस्तरार्थो हेमहंसगणिकृतसुधीशृङ्गारवार्तिकादेवावलोक्यः । अतिविस्तरत्वाद्विशिष्टगुरुगम्यत्वाच्चात्र न सङ्गृहीतः ।

ध्यात् । क्रमेण शेषानुदयान् विशोध्य, राशीन्त्रयसेत्तत्प्रमितांश्च भानौ ॥७१॥ शेषादथ स्वगुणैर्गुणादविशुद्धोदयहृतादवाप्तेन । भागादिना सनाथो दिननाथो निरयनांशको लग्नम् ॥ ७२ ॥ सैन्ध्यालग्नमपि श्रेयो गोखुरोत्खात-
४धूलिभिः । गोपानां हीनवर्णानां प्राचां च स्यात्करग्रहे ॥ ७३ ॥ नीर्ते-

1 सूर्यस्यास्तमनसमयेऽर्धबिम्बभवनादनु गोखुरोत्खातधूल्यो यावत्त शाम्यन्ति तावद्गोधूलिकलग्नसमय , अत एव धूलिभिरित्युक्त यावत्तारा नेक्ष्यन्ते तावदिति भाव । अत्रच्छेके लर्के प्रपुष्पाटपद्मीलनशकुनिकुलकोलाहलकुलायोरसुश्याादिलिङ्गैर्निर्णेयम् । श्रेय इति लोस्त्वच्योक्तम् । हीनवर्णानामिति सामान्येनोक्तम् , यद्गदाधर —"घटिकालग्नाभावेऽह्नीकार्ये गोरजोऽपि विप्रैश्च" । इति ॥ 2 षष्ठमिति लग्नात् षष्ठाष्टमेन्दु कन्यामृत्युद , भौमोऽपि मूर्त्यष्टमग पत्युर्मृत्युदत्वात्त्याज्य एवेति सारंग । अर्धयामाः कुलिक चेति अनेन गोधूलिके गुरुशनिवारौ त्याज्यौ तद्दिनयोस्तदानीं क्रमेणार्धयामकुलिकोत्पत्तेरित्यसूचि । केशवार्कस्त्वाह—"सार्के शनौ चिरविचिन्त्रिदिशडिसूलौ, तत्केवल कुलिकयामदलोपलभात् ।" अत्र सार्कमिति शनौ सूर्ये सति गोधूलिक कार्ये, पश्चात् कुलिकभवनात् । गुरौ तु सूर्यास्तादनु कार्यं, प्रथममर्धयामसद्भावादिति । राम मह्य । विनाऽपीत्युक्तेऽपि च किल क्रान्तिसाम्यादयो दृढदोषास्त्याज्या एव । यदुक्त व्यवहारप्रकाशे—"क्रूरैर्युतनक्षत्र व्यतिपात वैधृतिं च सक्रान्तिम् । क्षीण चन्द्र ग्रहणभशनिगुरुदिन क्रान्तिसाम्यानि ॥१॥ दम्पत्योरष्टमभ लग्नात् षष्ठाष्टम च शीतांशुम् । रविजीवयोरशुद्धिं विवर्ज्य गोधूलिक शुभदम् ॥ २ ॥ गोधूलिकपरिणयने येषा केन्द्रोपग शुभो न मृतौ । भौमो नोदयनिधने तेषा सौख्यानि नान्येषाम् ॥३॥ प्राग्रहरमिति दोषान्तरैरजय्यत्वात् प्रधानम् । यत्सारंग —"जामित्र न विचिन्तयेद्ग्रहयुत लग्नाच्छशाङ्कात्तथा, नो वेध न कुवासरं न च गत नागामि भ पाप्मभि । नो होरां न नवांशक न च खगान्मूर्त्यादिभावस्थितान्, हित्वा चन्द्रमस षडष्टमगत गोधूलिक शस्यते ॥१॥" अत्र यद्यपि षष्ठाष्टमेन्दुत्याग एवापेक्ष्यते, न त्वन्यत् किमपीत्युक्त, तथापीद ज्ञेयम्—गोधूलिकलग्नेऽपि वैवाहिकमेव भम्, तच्छुद्धिर्वर्षमासपक्षदिनशुद्धय श्चावश्यं गवेष्यन्त एवेति । अत्राह पर –यदि दोषान्तराजय्यत्वाद्गोधूलिकस्य प्राधान्य तदा पूर्वोक्तलग्नादिफलानामप्राधान्यापात , सत्य, अनुल्लङ्घ्यकुलदेशधर्मानुसारात्तेषां क्वचिदप्राधान्यापातोऽपि नानिष्ट । यदुक्त—"न शास्त्रदृष्ट्या विदुषा कदाचित्कुलघनीया कुलदेशधर्मा । देशे गतोऽप्येकविलोचनाना निमील्य नेत्र निवसेन्मनीषी ॥१॥" एव यथोक्तकुलदेशेषु गोधूलिकस्यैव प्राधान्य, न तु लग्नादिफलानामिति न कश्चिद्दोष । अपि च न केवल गोधूलिकविषया एव ग्रहगोचरादिविषया अपि कुलदेशधर्मा सन्ति । तथाहि—विवाहे नागराणां षडष्टमकायगणन । मार्गवेषु भाद्रपदसितदशम्यामेव विवाह । एते कुलधर्मा । देशधर्मा यथा—गौडदेशीया सूर्यं गोचरेण श्रेष्ठमपेक्षन्ते, गुरु लष्टकवर्गेण । दाक्षिणात्या गुरु गोचरेण श्रेष्ठमिच्छन्ति, सूर्यं लष्टकवर्गेण । लाटदेशीया रविगुर्वोरष्टकवर्गं गोचरं चेच्छन्ति । मालवीयानां गोचरो न प्रमाण, किं त्वष्टकवर्ग एव प्रमाणम् । शेषेषु देशेषु गोचरोऽष्टकवर्गश्च प्रमाणम् ॥

श्रुतिं पष्ठमथाष्टमं च, भद्रार्धयामौ कुलिकं च हित्वा । विनापि लग्नांशख-
गानुकूल्यं, गोधूलिकं प्राग्रहरं वदन्ति ॥ ७४ ॥ [1]स्युर्दीक्षास्थापनादीनि
ध्रुवचक्रे तिरःस्थिते । ऊर्ध्वे खातध्वजोच्छ्रायप्रायाणि प्रायशः श्रिये ॥७५॥ २
[2]अभिषिक्तो महीपालः श्रुतिज्येष्ठालघुध्रुवैः । मृगानुराधापौष्णैश्च चिरं
शास्ति वसुंधराम् ॥ ७६ ॥ [3]सबलत्वे जन्मदशा लग्नेशानां कुजार्कयोरपि
च । राज्ञां शुभोऽभिषेकः सितगुरुशशिनां च वैपुल्ये ॥ ७७ ॥ [4]भूत्यै ६
स्वस्वत्रिकोणोच्चगृहमित्रर्क्षगैर्ग्रहैः । अभिषेको न नीचारिक्षेत्रगास्तमितैः
पुनः ॥ ७८ ॥ [5]ताराबले शशिबले शुद्धौ तिथिवारधिष्ण्ययोगानाम् । ८

---

1 स्थापना प्रतिष्ठा, आदिशब्दादन्यदपि स्थिरकर्म । तिर इति तिर्यक् । ऊर्ध्वं इति ऊर्ध्वस्थिते ध्रुवस्य परितः स्थितं शृंखलकं ह्यप्रदक्षिणकं भ्राम्यदहोरात्रे द्विस्तिर्यक् स्यात् द्विश्चोर्ध्वम् । ततश्च—"तिर्यगूर्ध्वं स्थिते चक्रे तत्प्रान्तगततारके । समसूत्रे यदा स्यातां ध्रुवलग्नं भवेत्तदा ॥ १ ॥" तत्समयश्चातिसूक्ष्मग्राहिण्या स्वदृशा ध्रुवभ्रमयंत्रेण वा निर्णेयः । स्थूरवृत्त्या त्वेवं पूर्वाचार्यैर्निर्णीतोऽस्ति । तथाहि—"उदए महाधणिट्ठाण उड्ढं अणुराहकित्ति ध्रुअ तिरिओ" त्ति । परमुदयमानत्वं भस्य तथा स्पष्टं दृग्गोचरीकर्तुं न पार्यते, तेन शिरःस्थनक्षत्रापेक्षया ध्रुवलग्नस्वरूपं कथ्यते, तथाहि—अश्लेषायां श्रवणे च मस्तकादुत्तरति सति ध्रुवस्तिरश्चीनः स्यात् । भरण्यां विशाखायां च मस्तकादुत्तरन्त्यां ध्रुव ऊर्ध्वः स्यादिति तथा—"स्यादूर्ध्वो मृगकर्के तु समस्तिर्यक् तुलाजयोः । यथा तथा तु शेषेषु लग्नेषु स्याद्ध्रुवं ध्रुवः ॥ १ ॥" तद्वेला च तादात्विकोदयलग्ननवांशमात्रीत्येके । तस्यापि मध्यमत्रिभागमात्रीति त्वन्ये । रात्रिजमेव तिर्यगूर्ध्वत्वं ध्रुवलग्नमुच्यते, न तु दिनजं, रविकरलुप्तत्वात् । प्रायाणीति प्रायशब्दाद्यात्रादिग्रहणम् । यदुक्तं—"पृष्ठतो वा रविं कृत्वा गच्छेद्दक्षिणगं तथा । उत्तानपादपुत्रस्य शेखरे चोर्ध्वसंस्थिते ॥ १ ॥" अत्रोत्तानपादपुत्रो ध्रुवः । हर्षप्रकाशेऽपि ध्रुवलग्नमूचे, तथाहि—"जइ पुण तुरिअं कज्जं हविज्ज लग्गं न लब्भए सुद्धं । ता छायाधुवलग्गं गहिअव्वं सयलकज्जेसु ॥ १ ॥"
2 एवमभिषेकभानि त्रयोदश ॥ 3 जन्मनि यत्रेन्दुस्तद्राशीशो जन्मेशः । अभिषेकसमये यस्य ग्रहस्य दशाऽस्ति स दशेशः । जन्मलग्नपतिर्लग्नेशः । वैपुल्यं बहुदिनोदितत्वेन विशालबिम्बत्वं सत्किरणत्वं च ॥ 4 स्वस्वेति पदं त्रिकोणादिचतुष्केऽपि योज्यम् । एतैरीदृशैरेवाभिषेकः श्रेष्ठः । यतः—"सुहृत्त्रिकोणस्वगृहोच्चसंस्थाः, श्रियं च कीर्तिं च दिशन्ति खेटाः । अस्तंगताः शत्रुभनीचगा वा, भयाय शोकाय भवन्ति राज्ञाम् ॥१॥" ग्रहैरिति सामान्योक्तेऽपि विशिष्य गुर्विन्दुशुक्रैर्जन्मदशालग्नेशदिनवारैश्च । यल्लः—"विशेषाज्जन्मलग्नेशदशेशदिनभर्तृषु । यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन सौस्थ्यमेषां प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥" 5 तारेन्द्वोर्द्वयोरपि बलं राज्याभिषेकेऽवश्यं ग्राह्यम्, तेन शुक्लकृष्णपक्षापेक्षयोभयोर्बलमिति न व्याख्येयम् । तिथेः शुद्धिर्दग्धरिक्तादित्यागात् । वारशुद्धिः सौम्यवारैः ।

त्रिपडायस्थैः पापैः सौम्यैस्त्र्यायत्रिकोणकेन्द्रगतैः ॥ ७९ ॥ जन्मर्क्षादुपचयभे स्थिरेऽथ शीर्षोदयेऽथवा भवने । सौम्यैर्विलोकितयुते न तु पापैर्भूपमभिषिञ्चेत् ॥ ८० ॥ यमार्कयोस्त्र्यायगयोर्गुरौ तु, सुखाम्बरस्थे नृपतिस्थिरश्रीः । यद्वा त्रिकोणो९-५दयगे सुरेज्ये, शुक्रे नभःस्थे क्षितिजे रिपुस्थे ॥ ८१ ॥ अभिषिक्तो वलीयोभिर्ग्रहैः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥ क्रूर' पापैः शुभैः सौम्यो मिश्रैः साधारणो भवेत् ॥ ८२ ॥ चन्द्रे सौम्येऽपि वाऽन्यस्मिन् रिपुरन्ध्रस्थिते ग्रहैः । क्रूरैर्विलोकिते मृत्युरभिषिक्तस्य निश्चितः ॥८३॥ रोगी तनुस्थैरधनो धनान्त्यगैर्दुःखी च पापैर्नृपतिस्त्रिकोणगैः५-९ । पदच्युतोऽस्ताम्बुगतैर्मृतिस्थितैरल्पायुराकाशगतैस्त्वकर्मकृत् ॥ ८४ ॥ इति वक्तव्यता येय भूपालस्याभिषेचने । आचार्यस्याभिषेकेऽपि सा

धिष्ण्यशुद्धि क्रूराक्रान्तादित्यागात् । योगशुद्धिदुष्टयोगोपयोगवर्जनात् । त्र्यायेति उपलक्षणत्वाद्धनभवनेऽपि सौम्यग्रहैरेव सहिते । सामर्थ्याच्चेदमपि लभ्यते । अष्टमद्वादशगृहे शून्ये एव भव्ये, तत्रस्थानां शुभानामशुभाना च ग्रहाणामनिष्टदत्वात् ॥

1 अभिषिच्यमानस्य पुंसो जन्मराशित उपचयभे लग्नस्थे सति, यद्वा स्थिरे लग्ने, अथवा शीर्षोदयिनि । न तु पापैरिति क्रूरग्रहैरदृष्टेऽयुते चेत्यर्थः ॥ 2 यम शनि ॥ 3 यदि केन्द्रत्रिकोणगा बलिनो ग्रहा सर्वे क्रूरास्तदा नृप क्रूर स्यात् । सर्वे शुभाश्चेत्तदा सौम्य । यदि मिश्रा, कोऽर्थः ? केचित् क्रूरा केचिच्च सौम्या इति तदा साधारणो नातिक्रूरो नातिसौम्यश्च । अपि च "विधुगुरुशुक्रैः सार्कैः" इति य श्लोक उपनयाधिकारे प्रोक्त सोऽत्रापि योज्य ॥ 4 विलोकिते इति पुष्टदृष्ट्या ॥ 5 अकर्मकृदिति अकिञ्चित्करो निरुद्यम इत्यर्थ ॥ 6 अपिशब्दादन्यत्रापि पदस्थापने । तदेव राज्याभिषेकसूरिपदादौ कुण्डलिकेय सिद्धा ।

	उत्तमा	मध्यमा
रवि	३–११	१–२–४–५–६–७–८–९–१०–१२
चन्द्र	१–२–३–४–५–७–९–१०–११	६–८–१२
मगल	३–६–११	१–२–४–५–६–७–८–९–१०–१२
बुध	१–२–३–४–५–७–९–१०–११	६–८–१२
गुरु	१–२–३–४–५–७–९–१०–११	६–८–१२
शुक्र	१–२–३–४–५–७–९–१०–११	६–८–१२
शनि	३–११	१–२–४–५–६–७–८–९–१०–१२
राहु	३–६–११	१–२–४–५–६–७–८–९–१०–१२

तथाहि—विशेषस्तु—"राजयोगा खयोगाश्च चन्द्रयोगास्तथायुष । सर्वेऽप्यत्र विकल्प्या

सर्वाप्यनुवर्तते ॥ ८५ ॥ ॥ इत्येकादशं मिश्रद्वारम् ॥ ११ ॥

अथ सकलग्रन्थार्थं समर्थयति—

इत्युक्तखेटबलशालिनि दोषमुक्ते, लग्ने शुभैश्च शकुनैः शशिनः प्रवाहे । ३
कार्याणि भूमिजलतत्त्वगतौ कृतानि, निर्दंभमाभ्युदयिकीं प्रथयन्ति
लक्ष्मीम् ॥ ८६ ॥ ॥ इति प्रशस्तिः ॥ ५

स्युर्वाखुलग्नगुणाश्च ये ॥ १ ॥” इति दैवज्ञवल्लभे । अस्यार्थः-राजयोगाः प्रागुक्ताः । खयोगा नाभसंयोगाः । चन्द्रस्यान्यग्रहैः संयोगाः चन्द्रयोगाः । आयुषो योगा इति कोऽर्थः ? येऽरिष्टयोगा उक्तास्तेषां भञ्जका ये योगास्ते आयुषो हितत्वादायुषो योगा इत्युच्यन्ते । एषां सर्वेषां स्वरूपं जातकाज्ज्ञेयम् । अत्रेति अभिषेकलग्ने विकल्प्या विचार्याः । वाखुलग्नगुणाः प्रागुक्ताः । अपि च सर्वग्रहबलालङ्कृतलग्नालाभे सर्वेष्वपि कार्येष्वेवं ज्ञेयम्—“पञ्चभिः शस्यते लग्नं ग्रहैर्बलसमन्वितैः । चतुर्भिरपि चेत्केन्द्रे त्रिकोणे वा गुरुर्भृगुः ॥ १ ॥” अत्र पञ्चभिरित्युक्तेऽप्ययं विशेषो ज्ञेयः-गुर्वर्केन्दुमध्यादेकस्यापि बलाभावेऽन्यैः पञ्चभिः सबलैरपि लग्नं नाद्रियते इति रत्नमालाभाष्ये । केऽप्याहुः—“त्रयः सौम्यग्रहा यत्र लग्ने स्युर्बलवत्तराः । बलवत्तदपि ज्ञेयं शेषैर्हीनबलैरपि ॥ १ ॥”

1 खेऽटन्तीत्यचि तत्पुरुषे कृतीति सप्तम्यलुपि खेटा ग्रहाः तेषां बलम्, अनेन तिथ्यादिबलमपि लक्ष्यते । दोषमुक्ते इति बृहद्दोषरहिते इति भावः । सर्वथा निर्दोषस्य लग्नस्याखल्पदिनैरप्यलाभात्, अतः स्वल्पदोषं महागुणं च लग्नमादाय कार्याणि कार्याणि, न तु सर्वथा निर्दोषलग्नापेक्षया बहुतरविलम्बः कार्यः, धनयौवनजीवितानां स्थैर्याभावादित्याशयः । उक्तं च—“यस्मादशेषगुणसंपदहोभिरल्पैर्होराविदाऽपि गणकेन न लभ्यतेऽत्र । तस्मादनल्पगुणसंयुतमल्पदोषं, लग्नं नियोज्यमखिलेष्वपि मङ्गलेषु ॥ १ ॥ स्वल्पो नानर्थकृद्दोषो लग्ने बहुगुणे भवेत् । तोयबिन्दुरिव क्षिप्तः समिद्धे कृष्णवर्त्मनि ॥ २ ॥” शकुनैरिति शकुना जांघिकादयः । प्रधानं च शकुनिकाः । यदुक्तं व्यवहारप्रकाशे—“नक्षत्रस्य मुहूर्तस्य तिथेश्च करणस्य च । चतुर्णामपि चैतेषां शकुनो दंडनायकः ॥ १ ॥” अत्राङ्गस्फुरणमनःप्रसत्त्यादिनिमित्तमपि लक्ष्यम् । एभिः शकुनादिभिः शुभैर्लग्नशुद्धौ निर्णीतायां तल्लग्नादरणे कार्यकर्तुर्जयः स्यात् । लल्लोऽप्याह—“अपि सर्वगुणोपेतं न ग्राह्यं शकुनं विना । लग्नं यस्मान्निमित्तानां शकुनो दंडनायकः ॥ १ ॥” शशिनः प्रवाहे इति अध्यात्मशास्त्रे किल वामदक्षिणनासे चन्द्रसूर्यसंज्ञे । ततश्च—“सार्धं घटीद्वयं नाडिरेकैकार्कोदयाद्वहेत् । अरघट्टघटीभ्रान्तिन्यायान्नाड्योः पुनः पुनः ॥ १ ॥ शतानि तत्र जायन्ते निःश्वासोच्छ्वासयोर्नव । खखषट्ककुकैः २१६०० संख्याऽहोरात्रे सकले पुनः ॥ २ ॥ षट्त्रिंशद्गुरुवर्णानां या वेला भणने भवेत् । सा वेला मरुतो नाड्या नाड्यां संचरतो लगेत् ॥ ३ ॥” तत्र वामनासायां प्रविशत्पवनापूर्णायां सर्वं शुभकार्यं कार्यम् । यदुक्तं—“लाभे दानेऽध्ययने गुरुदेवाभ्यर्चने विषविनाशे ।

पुरमन्दिरप्रवेशे गमागमादौ शुभा वामा ॥ १ ॥" तथा—"पूजाद्रव्यार्जनोद्वाहे दुर्गाद्रिसरिदाक्रमे । गमागमे जीविते च गृहक्षेत्रादिसंग्रहे ॥ १ ॥ क्रये विक्रयणे दृष्टौ सेवायां विद्विषो जये । विद्यापट्टाभिषेकादौ शुभेऽर्थे च शुभ शशी ॥ २ ॥". भूमिजलतत्त्वगताविति । उक्तं हि—"वायोर्वह्नेरपां पृथ्व्या व्योम्नस्तत्त्व वहेत् क्रमात् । वहन्त्योरुभयोर्नाड्योर्ज्ञातव्योऽय क्रमः सदा ॥ १ ॥" एषां प्रवाहा एवम्—"ऊर्ध्वं वह्निरधस्तोय तिरश्चीन समीरण । पृथ्वीमध्यपुटे व्योम सर्वग वहते पुन ॥ १ ॥" प्रमाण तु—"पृथ्व्या पलानि पञ्चाशत् ५० चत्वारिंशत् ४० तथाऽम्भस । अग्नेस्त्रिंशत् ३० तथा वायोर्विंशति २० र्नभसो दश १० ॥ १ ॥" एव सार्धशत १५० पलान्येकैकनाडीप्रमाणम् । एव च वामनाड्यामपि यदा पृथ्वीजलतत्त्वे स्यातां तदा शुभकार्यं कार्यं न तु वह्निवायुव्योमतत्त्वेषु । यतः—"तत्त्वाभ्यां भूजलाभ्यां स्याच्छान्ते कार्ये फलोन्नति । दीप्तास्थिरादिके कृत्ये तेजोवाय्वम्बरे शुभम् ॥ १ ॥ पृथ्व्यप्तेजोमरुद्व्योमतत्त्वानां चिह्नमुच्यते । आद्ये स्थैर्यं स्वचित्तस्य शैत्यकामक्षयौ परे ॥ २ ॥ तृतीये कोपसन्तापौ तुर्ये चञ्चलता पुन । पञ्चमे शून्यतैव स्यादथवा धर्मवासना ॥ ३ ॥" तथा—"श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्याङ्गुल्यौ नासापुटद्वये । सृक्वणो प्रान्त्यकोपान्त्याङ्गुली शेषे दृगन्तयो ॥१॥ न्यस्यान्तस्तु पृथिव्यादितत्त्वज्ञान भवेत् क्रमात् । पीत १ श्वेता २ऽरुण ३ श्यामै ४ र्बिन्दुभिर्निरुपाधि खम् ५ ॥ २ ॥ पीत कार्यस्य ससिद्धिं बिन्दु श्वेत सुख पुनः । भय सन्ध्यारुणो ब्रूते हानिं भृङ्गसमद्युति ॥ ३ ॥ जीवितव्ये जये लाभे सस्योत्पत्तौ च कर्षणे । पुत्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ॥ ४ ॥ पृथ्व्यप्तत्त्वे शुभे स्यातां वह्निवातौ च नो शुभौ । अर्थसिद्धि स्थिरोर्व्यां तु शीघ्रमम्भसि निर्दिशेत् ॥ ५ ॥ अपि च—"षोडशाङ्गुलिका पृथ्वी १ जल तु द्वादशाङ्गुलम् २ । तेजश्चाष्टाङ्गुल ३ वायुश्चतुरङ्गुलको मत ४ ॥ १ ॥ नैकमप्यङ्गुल व्योम ५ वहतीति विनिर्णय ।" अत्र षोडशाङ्गुलिकेति यदा वायुर्वहन् षोडशाङ्गुलमाकाश व्याप्नोति तदा पृथ्वीतत्त्वमित्यादि ज्ञेयम् । यद्वा वाक्यमिदमन्यथा व्याख्यायते, तथाहि–दोषमुक्ते लग्ने भूमिजलतत्त्वगताविति सम्बन्धनीयम् । भावश्चायम्–शुद्धलग्नेऽपि यदा भूजलतत्त्वे स्यातां तदा शुभ कार्यं कार्यं, न त्वग्निवायुव्योमतत्त्वेषु । यदुक्तम्—"पृथ्वी राज्य १ जल वित्त २ वह्निर्हानिं ३ समीरण । उद्वेग ४ गगन दत्ते पञ्चतां ५ सर्वलग्नत ॥ १ ॥" तदुत्पादप्रकारश्चायम्—"त्रिंशांश पञ्चधा हन्याद्दशा १० ष्ट ८ षड् ६ युगा ४ श्वि २ भि । भू १ जला २ ग्न्य ३ऽनिल ४व्योम्ना ५ समर्क्षे जायते मितिः ॥ १ ॥ द्व २ ब्ध्य ४ ङ्ग ६ वसु ८ दशभि १० स्तद्वत्रिंशांशकाद्दति । खा १ निला २ ग्नि ३ जले ४ लाना ५ मोजराशौ मिति स्मृता ॥ २ ॥"
अनयोरर्थ –लग्नानां पलरूपाणां त्रिंशांश त्रिंशो भाग । यथा मेषलग्नस्य पञ्चविंशत्यधिकद्विशती २२५ पलमानस्य त्रिंशांश पलसप्तकत्रिंशदक्षररूप ७–३० । इम पञ्चवाराव्यस्य विषमराशौ दशाष्टादिभिर्गुणयेत् क्रमाद्व्योमादितत्त्वानां मानमेति । समराशौ तु दशाष्टादिभिर्गुणयेत् क्रमात् पृथ्व्यादितत्त्वानां मान स्यात् । यद्वा यस्य लग्नस्य यत्पलमान तस्य पञ्चदशभिर्भागे यल्लभ्यते तत्क्रमादेकद्वित्रिचतुष्पञ्चभिर्गुणितमोजराशौ व्योमादित-

त्त्वानां मानं स्यात् । समराशौ तु पञ्चचतुस्त्रिद्व्येकैर्गुणितक्रमात् पृथ्व्यादितत्त्वानां मानं स्यात् । एवं च यज्जायते तस्य स्थापनाव्यक्तिरेवम्—

१ मेषमान पल २२५	२ वृषमान पल २५६	३ मिथुन मान पल ३०५
त्रिंशोऽंशः पल ७ अक्षर ३०	त्रिंशोऽंशः पल ८ अक्षर ३२	त्रिंशोऽंशः प. १० अक्षर १०
व्योमतत्त्वं पल १५	पृथ्वीतत्त्वंघटी१पल२५अ२०	व्योम प. २० अ. २०
पवनतत्त्वं पल ३०	अपतत्त्वं घ. १ प. ८ अ. १६	पवन प. ४० अ. ४०
तेजस्तत्त्वं पल ४५	तेजस्तत्त्वं प. ५१ अ. १२	तेज घटी १ प. १
जलतत्त्वं घटी १	वायु प. ३४ अ. ८	अप् घटी १ प. २१ अ. २०
पृथ्वीतत्त्वं घटी १ पल १५	व्योम प. १७ अ. ४	पृथ्वी घटी १ प. ४१ अ. ४०
४ कर्कमान पल ३४१	५ सिंहमान पल ३४२	६ कन्या मान पल ३३१
त्रिंशोऽंशः पल ११ अक्षर २२	त्रिंशोऽंशः पल ११ अक्षर २४	त्रिंशोऽंशः पल ११ अ. २
पृथ्वी घटी १ प. ५३ अ. ४०	गगन पल २२ अ. ४८	पृथ्वी घटी १ प. ५० अ. २०
अप् घटी १ प. ३० अ. ५६	पवन पल ४५ अ. ३६	अप् घटी १ प. २८ अ. १६
तेज घटी १ प. ८ अ. १२	तेज घटी १ प. ८ अ. २४	तेज घटी १ प. ६ अ. १२
पवन पल ४५ अ. २८	अप् घटी १ प. ३१ अ. १२	पवन पल ४४ अ. ८
गगन पल २२ अ. ४४	पृथ्वी घटी १ प. ५४	गगन पल २२ अ. ४
७ तुला मान पल ३३१	८ वृश्चिक मान पल ३४२	९ धनुर्मान पल ३४१
त्रिंशोऽंशः पल ११ अक्षर २	त्रिंशोऽंशः पल ११ प. २४	त्रिंशोऽंशः पल ११ अ. २२
गगन पल २२ अ. ४	पृथ्वी घटी १ प. ५४	गगन पल २२ अ. ४४
पवन पल ४४ अ. ८	अप् घटी १ प. ३१ अ. १२	पवन पल ४५ अ. २८
तेज घटी १ प. ६ अ. १२	तेज घटी १ प. ८ अ. २४	तेज घटी १ प. ८ अ. १२
अप् घटी १ प. २८ अ. १६	पवन पल ४५ अ. ३६	अप् घटी १ प. ३० अ. ५६
पृथ्वी घटी १ प. ५० अ. २०	गगन पल २२ अ. ४८	पृथ्वी घटी १ प. ५३ अ. ४०
१० मकर मानं पल ३०५	११ कुंभ मान पल २५६	१२ मीन मान पल २२५
त्रिंशोऽंशः पल १० अक्षर १०	त्रिंशोऽंशः पल ८ अ. ३२	त्रिंशोऽंशः पल ७ अ. ३०
पृथ्वी घटी १ प. ४१ अ. ४०	गगन पल १७ अ. ४	पृथ्वी घटी १ प. १५
अप् घटी १ प. २१ अ. २०	पवन पल ३४ अ. ८	अप् घटी १
तेज घटी १ प. १	तेज पल ५१ अ. १२	तेज पल ४५
पवन पल ४० अ. ४०	अप् घटी १ प. ८ अ. १६	पवन पल ३०
गगन पल २० अ. २०	पृथ्वी घटी १ प. २५ अ. २०	गगन पल १५

एवं लग्ने लग्ने पञ्च तत्त्वानि क्रमोत्क्रमेण स्युः । विशेषस्तु भूजलतत्त्वाङ्कितान्यपि पलानि यदि षड्वर्गशुद्धानि पञ्चवर्गशुद्धानि वा स्युस्तदाऽत्यन्तं शुभानि । तानि चेत्थम्,

यथा–मेषलग्ने सप्तमस्य तुलांशस्याद्येष्वष्टादश १८ पलेषु लग्नाशुद्धे पञ्चवर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च । तथा मेषलग्ने नवमे धनुरंशेऽन्त्येष्वष्टादश १८ पलेषु पञ्चवर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च १ । वृषलग्ने तृतीये मीनांशे आद्येषु सप्त ७ पलेषु षड्वर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च । तथा वृषलग्ने पञ्चमस्य वृषांशस्याद्येषु चतुर्दश १४ पलेषु षड्वर्गशुद्धिर्जलतत्त्व च २ । मिथुनलग्ने षष्ठस्य मीनांशस्याद्येष्वष्ट ८ पलेषु षड्वर्गशुद्धिर्जलतत्त्व च । पञ्चवर्गशुद्धिस्तु संपूर्णेऽपि नवांशेऽस्ति द्वादशांशाशुद्धे ३ । कर्कलग्ने आद्ये कर्कांशे आद्येष्वष्टाविंशति २८ पलेषु षड्वर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च । तथा कर्कलग्ने तृतीये कन्यांशे सपूर्णे षड्वर्गशुद्धि॰ पृथ्वीतत्त्व च ४ । सिंहलग्ने षष्ठे कन्यांशे दशपलेभ्योऽन्त्यष्टाविंशति २८ पलेषु लग्नाशुद्धे पञ्चवर्गशुद्धिर्जलतत्त्व च ५ । कन्यालग्ने तृतीये मीनांशे नवपलेभ्योऽग्रतु सप्तविंशति २७ पलेषु षड्वर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च ६ । तुलालग्नेऽष्टमे वृषांशे आद्येष्वष्टादश १८ पलेषु षड्वर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च । तथा तुलालग्ने नवमे मिथुनांशेऽन्त्येषु सप्तविंशति २७ पलेषु षड्वर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च ७ । वृश्चिकलग्ने तुर्ये तुलांशे आद्येष्वष्टाविंशति २८ पलेषु लग्नाशुद्धे पञ्चवर्गशुद्धिर्जलतत्त्व च ८ । धनुर्लग्ने षष्ठे कन्यांशे सपूर्णेऽपि पञ्चवर्गशुद्धिर्द्रेष्काणाशुद्धेर्जलतत्त्व च । तथा धनुर्लग्ने सप्तमे तुलांशेऽन्त्येषु नव ९ पलेषु द्वादशांशाशुद्धे पञ्चवर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च । तथा धनुर्लग्ने नवमे धनुरंशे आद्येषु नव ९ पलेषु द्वादशांशाशुद्धे पञ्चवर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च ९ । मकरलग्ने पञ्चमे वृषांशे आद्येषु षोडश १६ पलेषु लग्नाशुद्धे पञ्चवर्गशुद्धिर्जलतत्त्व च १० । कुम्भलग्ने षष्ठस्य वृषांशस्यान्त्येषु विंशति २० पलेषु लग्नाशुद्धे पञ्चवर्गशुद्धिर्जलतत्त्व च । तथा कुम्भलग्नेऽष्टमस्य वृषांशस्यान्त्यानि चतुर्दश १४ पलानि नवमस्य च मिथुनांशस्याद्यानि सप्त ७ त्येकविंशति २१ पलेषु लग्नाशुद्धे पञ्चवर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च ११ । मीनलग्ने आद्ये कर्कांशे आद्येष्वष्टादश १८ पलेषु षड्वर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व च । तथा मीनलग्ने तृतीये कन्यांशे सपूर्णे पञ्चविंशति २५ पलरूपे षड्वर्गशुद्धि पृथ्वीतत्त्व चेति १२ । कृतानीति । अत्र वृद्धा प्राहु –दीक्षा-प्रतिष्ठा-तीर्थयात्रा-पदारोपादिकार्येषु यत्र कार्ये यन्नक्षत्र यो वारो या तिथिश्चाधिकृतानि तानि शुद्धानि सम्यग्विलोक्य रवियोगसिद्धियोगादियुता पूर्वं दिनशुद्धिस्ततो लग्नशुद्धिर्नवांशशुद्धिश्च विलोकये । सर्वथापि शुद्धलग्नालाभे कार्यस्यावश्यकर्तव्यत्वे च शुभदिनशुद्धौ छायालग्ने ध्रुवलग्ने विजयमुहूर्त्ते शुभचतुर्घटिके वा कार्यं कार्यमिति सकलग्रन्थरहस्यम् । प्रथयन्तीति एव कृतानि कार्याणि सर्वाङ्गीणमभ्युदय प्रथयन्ति ॥

इति श्रीज्योतिर्वित्प्रभुश्रीहेमहंसगणिकृत-सुधीशृङ्गारवार्तिकाद्युद्धृतटिप्पनिका-
यन्त्रादियुतारम्भसिद्धि समाप्ता उद्धृतेय न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्द-
सूरिशिष्य-चारित्रनिधिश्रीमच्चारित्रविजयशिष्य-शासनप्रभावकश्रीमदमी-
विजयचरणोपजीविना, कर्मसिद्धान्तनिष्णातश्रीमद्विजय-
प्रेमसूरीश्वराज्ञावर्तिनोपाध्यायक्षमाविजयेन ।

आश्विनशुक्ल प्रतिपदा वीरसंवत् २४६३

विश्वहितबोधिदायकश्रीअमीविजयगुरुभ्यो नमः

ज्योतिर्विद्भूषणश्रीनरचन्द्राचार्यविरचितः

श्रीनारचन्द्रः ।



श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीअर्हन्तं जिनं नत्वा नरचन्द्रेण धीमता । सारमुद्ध्रियते किंचित् ज्योतिषः क्षीरनीरधेः ॥ १ ॥ तिथिवारधिष्ण्ययोगा राशिः शशितारकाबलं भद्रा। कुलिकोपकुलिककण्टकार्धप्रहराः कालवेला च ॥२॥ स्थविरशुभाशुभरव्युपकुमारराजादियोगगण्डान्ताः । पञ्चकचन्द्रावस्थास्त्रिपुष्करं यमलकरणानि ॥ ३ ॥ इति सामान्यदिनशुद्धिः ॥ प्रस्थानक्रमदिग्धिष्ण्यशूलकीलाश्च योगिनी राहुः । हंसरविपाशकालावत्सशुक्रगतिरिति गमने ॥४॥ स्नानाभिधानविद्याक्षौरांबरपात्रनष्टरुग्विगमाः । पैतृकगेहारम्भप्रकीर्णकान्यत्र वक्ष्यन्ते ॥ ५ ॥ इति द्वाराणि ॥ नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च नामतः क्रमशः । तिथयः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्याद्याः स्वनामफलाः ॥ ६ ॥ अमावास्याष्टमी षष्ठी द्वादशी शुभकर्मसु । त्र्यहस्पृगवमे रिक्ता दग्धाः क्रूराश्च वर्जयेत् ॥ ७ ॥ वारत्रयं स्पृशन्ती तु त्रिदिनस्पृक् तिथिर्भवेत् । वारे तिथित्रयस्पर्शिन्यवमं मध्यमा तिथिः ॥ ८ ॥ चापझषे २ वृषकुम्भे ४ कर्काजे ६ मृगतुले १२ मिथुनकन्ये। ८ हरिवृश्चिके १० ऽर्कंदग्धा द्विचतुःषड्द्वादशाष्टदशमदिनाः ॥ ९ ॥ मेषादिकानां क्रमशश्चतस्रः पूर्णाश्चतुर्णामपि पञ्चमी स्यात् । परा परेषां परतस्तथैव सक्रूरराशेरशुभा तिथिः स्यात् ॥ १० ॥ तिथिः ॥ आदित्यसोममङ्गलबुधगुरुशुक्राः शनिश्चर इति । वाराः सौम्याः शशिबुधगुरवः शुक्रश्च तथा परे क्रूराः ॥ ११ ॥ सार्द्धघटीद्वयमाद्या दिनवारस्याथ षष्ठषष्ठस्य । होराः स्युः पूर्णफलाः पादोनफलस्तु दिनवारः ॥ १२ ॥ वारः ॥ अश्विनी १ भरणी २ कृत्तिका ३ रोहिणी ४ मृगशिर ५ आर्द्रा ६ पुनर्वसु ७ पुष्य ८ अश्लेषा ९ मघा १० पूर्वाफाल्गुनि ११ उत्तराफाल्गुनि १२ हस्त १३ चित्रा १४ स्वाति १५ विशाखा १६ अनुराधा १७ ज्येष्ठा १८ मूल १९ पूर्वाषाढा २० उत्तराषाढा २१ अभिजित् २२ श्रवण २३ धनिष्ठा २४ शतभिषक् २५ पूर्वभद्रपद २६ उत्तरभद्रपद २७ रेवति २८ इति नक्षत्रनामानि ॥ त्रि ३ त्रि ३ पट् ६ पञ्चक ५ त्र्ये ३ क १ चतु ४ त्रि ३ रस ६ पञ्चकाः ५ । द्वि २ द्विः २ पञ्च ५ तथैकं १ क १ चतुरं ४ वुधय ४ स्त्रयः ३ ॥ १३ ॥ एकादश ११ चतुर्वेद ४ त्रि ३ त्रि ३ वेदाः ४ शतं १०० द्विकम् २ । द्वि २ द्वात्रिंश ३२ द्विमासास्तारास्तत्संख्यां वर्जयेत्तिथिम् ॥ १४ ॥ अश्व १ यम २ दहन ३ कमलज ४ शशि ५ शूलभृद ६ ऽदिति ७ जीव ८ फणि ९ पितरः १० । योन्य ११ यमा १२ दिनकृ १३ त्वाष्ट्र १४

पवन १५ शक्राग्नि १६ मित्राश्च १७ ॥ १५ ॥ शक्रो १८ निर्ऋति १९ स्तोयं २० विश्वो २१ ब्रह्मा २२ हरि २३ र्वसु । २४ वरुण २५ । अजपादो २६ ऽहिर्बुध्न २७ पूषा २८ चेतीश्वरा भानाम् ॥ १६ ॥ श्रवणघटिकाचतुष्टयमाद्य चरमौ हि रौत्तरापाढा अभिजिद्योगो वेधकार्गलत्तोपयोगादौ ॥ १७ ॥ चर चल स्मृत स्वाति पुनर्वसुः श्रुतित्रयम् । क्रूरमुग्र मघा पूर्वात्रितय भरणी तथा ॥ १८ ॥ ध्रुव स्थिर विनिर्दिष्ट रोहिणी चोत्तरात्रयम् । तीक्ष्ण दारुणमश्लेषा ज्येष्ठार्द्रामूलमष्टकम् ॥ १९ ॥ लघु क्षिप्र स्मृत पुष्यो हस्तोऽश्विन्यभिजित्तथा । मृदु मैत्र स्मृतं चित्राऽनुराधा रेवती मृग ॥ २० ॥ मिश्र साधारण प्रोक्त विशाखा कृत्तिका तथा । नक्षत्रेष्वेषु कर्माणि नामतुल्यानि कारयेत् ॥ २१ ॥ प्रस्थान चरलघुभि शान्तिर्ध्रुवमृदुभिरप्रभर्युद्धम् । तीक्ष्णव्याधिविच्छेदो मिश्रैर्मिश्रक्रिया कार्या ॥ २२ ॥ इति धिष्ण्यम् ॥ विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्य शोभनस्तथा । अतिगण्ड सुकर्मा च धृति शूल तथैव च ॥२३॥ गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा । वज्र सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान् परिघ शिव ॥ २४ ॥ सिद्धि साध्य शुभ शुक्लो ब्रह्मा चैन्द्रोऽथ वैधृति । परिघार्द्धं व्यतीपातवैधृती सकलौ त्यजेत् ॥ २५ ॥ विष्कम्भे घटिका पञ्च शूले सप्त प्रकीर्तिता । षट् गण्डे चातिगण्डे च नव व्याघातवज्रयो ॥ २६ ॥ इति योगा ॥ मेषवृषमिथुनकर्कसिंहकन्यातुलवृश्चिकधनु मकरकुम्भमीन ॥ अश्विनी-भरणीकृत्तिकापादे मेष । कृत्तिकाणा त्रय पादा रोहिणीमृगशिरोर्द्धं वृष ॥ मृगशिरोर्द्धं आर्द्रापुनर्वसुपादत्रय मिथुन ॥ पुनर्वसुपादमेक पुष्य अश्लेषान्त कर्क ॥ मघापूर्वाफाल्गुनीउत्तरापादे सिंह ॥ उत्तराफाल्गुनीपादत्रय हस्तचित्रार्द्धं कन्या ॥ चित्रार्द्धं स्वातिविशाखापादत्रय तुला ॥ विशाखापादमेकं अनुराधाज्येष्ठान्त वृश्चिक ॥ मूल पूर्वाषाढाउत्तराषाढापादे धनु ॥ उत्तराणां त्रय पादा श्रवण-धनिष्ठार्द्धं मकर ॥ धनिष्ठार्द्धं शतभिषक्पूर्वभद्रपदपादत्रय कुम्भ ॥ पूर्वभद्र-पदपादमेक उत्तरारेवत्यन्त मीन ॥ चूचेचोलाऽश्विनी, लिलुलेलो भरणी, अइउए कृत्तिका, ओववावु रोहिणी, वेवोकाकि मृगशिर, कुघङछ आर्द्रा, केकोहहि पुनर्वसु, हुहेहोडा पुष्य, डिडुडेडो अश्लेषा, ममिमुमे मघा, मोटटिटु पूर्वाफाल्गुनी, टेटोपपि उत्तराफाल्गुनी, पुषणठ हस्त, पेपोररि चित्रा, रुरेरोता स्वाति, तितुतेतो विशाखा, ननिनुनेऽनुराधा, नोययियु ज्येष्ठा, येयोभभि मूलम्, भुधफढ पूर्वाषाढा, भेभोजजि उत्तराषाढा, जुजेजोखाऽभिजित्, खिखुखेखो श्रवण, गगिगुगे धनिष्ठा, गोससिसु शतभिषक्, सेसोददि पूर्वभद्रपद, दुशझथ उत्तराभद्रपद, देदोचचि रेवति ॥ चुचेचोललिलुलेलोअ मेष, इउएओववविवुवेवो वृष, ककिकुघङछकेकोह मिथुन, हिहुहेहोडडिडुडेडो कर्क, ममिमुमेमोटटिटुटे सिंह, टोपपिपुषणठपेपो कन्या, ररिरुरेरोततितुते तुला, तोननिनुनेनोययियु वृश्चिकः, येयोभभिभुधफढभे धनु, भोजजिखुजेजोखखिखुखेखोगगि मकर, गुगेगोससिसुसेसोद कुभ, दिदुशझथदेदो-

चचि मीनः । इति राशिः ॥ जन्मत्रिषष्ठसप्तमदशमैकादशगतः सदा शुभदः । शुक्ले द्विपञ्चनवमस्थितोपि निजराशितश्चन्द्रः ॥ चन्द्रः ॥ यत्र चन्द्रयुते जन्म यस्य तत्तस्य जन्मभम् । ततश्च दशमं कर्म्म स्यादाधानं ततोऽपि यत् ॥ २८ ॥ त्रिरेभ्यो नव ताराः स्युस्त्यजेत्पञ्चत्रिसप्तमीः । शुभाः शेषाः कृशे चन्द्रे ग्राह्यमासां बलं बुधैः ॥ २९ ॥ जन्मर्क्षं गणयेदादौ चन्द्रर्क्षं तु यावतः । नवभिस्तु हरेद्भागं शेषास्तारा विनिर्द्दिशेत् ॥ ३० ॥ आधानजन्मसप्तत्रिपञ्चम्यो न गमे शुभाः । एतासु तूदिते रोगे चिरक्लेशोऽथवा मृतिः ॥ ३१ ॥ इति ताराबलम् ॥ कृष्णे च त्रिदशा रात्रौ दिवा सप्तचतुर्दशी । एकैकतिथिवृद्ध्या तु शुक्ले विष्टिः प्रकीर्तिता ॥ ३२ ॥ मनु १४ वसु ८ मुनि ७ तिथि १५ युग ४ दश १० शिव ११ गुण ३ सङ्ख्यासु तिथिषु पूर्वादौ । तद्वत्प्रहरेष्वष्टसु पृष्टे शुभदा पुरोऽशुभा विष्टिः ॥ ३३ ॥ विष्टेर्मुखे कलाः पञ्च कंठे द्वे हृदये दश । नाभौ पञ्च कटौ पञ्च पुच्छे तिस्रः कलाः स्मृताः ॥३४॥ विष्टिरङ्गेषु षट्स्वेषु करोत्येवं मुखादिषु । कार्यहानिं मृतिं नैस्व्यं बुद्धिहानिं कलिं जयम् ॥३५॥ रात्रिभद्रा यदाह्नि स्यादहर्भद्रा यदा निशि । न तत्र भद्रादोषः स्यात्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥ ३६ ॥ भद्रा ॥ मन्व १४ र्क १२ दिग् १० वसु ८ ऋतु ६ वेद ४ पक्षै २ रर्कान्मुहूर्तैः कुलिका भवन्ति । दिवा निरेकैरथ यामिनीषु ते गर्हिताः कर्मसु शोभनेषु ॥ ३७ ॥ कुलिकोपकुलिककण्टकनामानः शौरिजीवभौमान्ताः । दोषाः स्युः प्रतिवारं वर्ज्याः प्रहरार्द्धमिह विबुधैः ॥ ३८ ॥ कुलिकोपकुलिककण्टकाः ॥ सदार्द्धप्रहरास्त्याज्या वारेष्वर्कादिषु क्रमात् । चतुःसप्तद्विपञ्चाष्टत्रिषष्ठाः शुभकर्मसु ॥३९॥ अर्द्धप्रहराः ॥ आद्या बुधे सूर्यसुते द्वितीया सोमे तृतीया च गुरौ चतुर्थी । षष्ठी कुजे सप्तमिका च शुक्रे सूर्येऽष्टमी कालकला विवर्ज्या ॥ ४० ॥ कालवेला ॥ त्रयोदश्यष्टमी रिक्ता स्थविरे स्याद्गुरुः शनिः । कृत्तिकादिव्यन्तराणि रोगोच्छेदादिकं शुभम् ॥ ४१ ॥ स्थविरयोगः ॥ हस्तोत्तरात्रयं मूलधनिष्ठे रेवतीद्वयम् । पुष्यः प्रतिपदष्टम्यौ नवमी च शुभा रवौ ॥ ४२ ॥ द्वितीया नवमी पुष्यः श्रवणं रोहिणी मृगः । अनुराधा शुभाय स्याद्दिने कुमुदिनीपतेः ॥ ४३ ॥ रेवती मूलमश्लेषा उत्तरभद्राऽश्विनी मृगः । त्रयोदश्यष्टमी षष्ठी तृतीयाऽभिमता कुजे ॥ ४४ ॥ श्रवणं रोहिणी पुष्योऽनुराधा मृगकृत्तिके । द्वितीया द्वादशी सप्तम्यपि सिद्धिप्रदा बुधे ॥ ४५ ॥ पुनर्वसुविशाखाद्या रेवत्या द्वितयं करः । पूर्वफाल्गुनिका पूर्णैकादशी च गुरौ शुभा ॥ ४६ ॥ पुनर्वसुः करश्चोत्तराषाढा रेवतीद्वयम् । शुभा त्रयोदशी नन्दानुराधा पूर्वभा भृगौ ॥ ४७ ॥ पूर्वाफाल्गुनीरोहिण्यौ स्वातिः शतभिषक् मघा । श्रवणं चाष्टमी रिक्ता तिथिः स्यात्सिद्धये शनौ ॥ ४८ ॥ शुभयोगाः ॥ आदित्यहस्ते गुरुपुष्ययोगे बुधानुराधा शनिरोहिणी च । सोमेन सौम्यं भृगुरेवती च भौमाश्विनी

१ आरम्भसिद्धौ तु नाभौ ४ कट्यां ६ घटिकाः प्रोक्ताः ।

घाऽमृतसिद्धियोगः ॥४९॥ भरणी भास्करे हेया विशाखात्रितयं मघा । षष्ठ्येकादशी सप्तमी द्वादशी च चतुर्दशी ॥ ५० ॥ आषाढाद्वितयं चित्रा विशाखा न शुभा भवेत् । सप्तम्येकादशी सोमे द्वादशी च त्रयोदशी ॥ ५१ ॥ वर्जयेदुत्तराषाढा धनिष्ठात्रितयं कुजे । आर्द्रां प्रतिपदं क्लिष्टैकादशीं दशमीं तथा ॥ ५२ ॥ न शुभाय बुधे मूलधनिष्ठे रेवतीत्रयम् । तिथयः सचतुर्दश्यः प्रतिपन्नवमी जया ॥ ५३ ॥ कृत्तिकोत्तरफाल्गुन्यो रोहिणीत्रयमष्टमी । षष्ठी शतभिषग्भद्रा चतुर्थी चाशुभा गुरौ ॥ ५४ ॥ पुष्यादित्रितयं ज्येष्ठारोहिणी शुक्रवासरे । द्वितीया सप्तमी रिक्ता तृतीया नेष्यते बुधैः ॥ ५५ ॥ रेवतीमुत्तराषाढामुत्तराफाल्गुनीत्रयम् । सप्तमीं षष्ठिकां पूर्णां शनिवारे विवर्जयेत् ॥ ५६ ॥ हस्तमूले-मघारोहिण्यनुराधोत्तरात्रयम् । वज्रपातः क्रमात्सप्त पञ्चतुर्द्वित्रिके तिथौ ॥ ५७ ॥ चतुर्थषष्ठनवमे दशमे च त्रयोदशे । विंशे दिनेशभाद्धिष्ण्ये रवियोगाः शुभा मताः ॥ ५८ ॥ अश्विनी मृगशीर्षं च आश्लेषा हस्त एव च । अनुराधोत्तराषाढा शतभिषक् च रवेः क्रमात् ॥ ५९ ॥ एतन्नक्षत्रतो वर्तमानवारर्क्षसङ्ख्यया । आनन्दाद्युपयोगाः स्युः स्वस्वनामसदृक्फलाः ॥ ६० ॥ आनन्दः कालदण्डश्च प्राजापत्यः शुभस्तथा । सौम्यो ध्वाङ्क्षो ध्वजश्चैव श्रीवत्सो वज्रमुद्गरौ ॥ ६१ ॥ छत्रं मैत्रो मनोज्ञश्च कम्पो लुम्पक एव च । प्रवासो मरणं व्याधिः सिद्धिः शूलामृतौ तथा ॥ ६२ ॥ मुशलो गजमातङ्गौ क्षयः क्षिप्रः स्थिरस्तथा । वर्द्धमानश्चेति नाम्ना स्युरष्टाविंशति क्रमात् ॥ ६३ ॥ **उपयोगाः** ॥ नन्दायां पञ्चम्यां शुभो दशम्यां कुजज्ञशशिभृगुभिः । व्यन्तरिताश्विन्यादिभिरुडुभिर्योगः कुमाराख्यः ॥ ६४ ॥ **कुमारयोगः** ॥ पूर्णिमा तृतीया भद्रा भृगुभौमार्कसोमजाः । राजयोगः शुभाय स्यात् भरण्याद्यैर्द्विकान्तरैः ॥ ६५ ॥ **राजयोगः** ॥ गण्डान्तस्त्रिविधस्त्याज्यो नक्षत्रतिथिलग्नगः । नवपञ्चचतुर्थान्ते द्व्येकार्द्धघटिकामितः ॥ ६६ ॥ धनिष्ठापञ्चके वर्ज्या तृणकाष्ठादिसङ्ग्रहः । शय्या दक्षिणदिग्यात्रा मृतकार्यगृहोद्यमाः ॥ ६७ ॥ **पञ्चकम्** ॥ प्रवासो नष्टमरणे जयो हास्यं रतिस्तथा । क्रीडा निद्राथ भुक्तिश्च जरा कम्पोऽथ सुस्थिता ॥ ६८ ॥ राशिभोगद्वादशांशविभागा द्वादशाप्यमूः । भुङ्क्तेऽवस्था शशी तासां स्वनामसदृशं फलम् ॥ ६९ ॥ **चन्द्रावस्थाः** ॥ रविभौममन्दवारे भद्रातिथिषु त्रिपादके धिष्ण्ये । योगस्त्रिपुष्कराख्यो द्विपादके यमलनामा स्यात् ॥ ७० ॥ पञ्चके पञ्चगुणितं त्रिगुणं च त्रिपुष्करे । यमले द्विगुणं सर्वं हानिवृद्ध्यादिकं मतम् ॥ ७१ ॥ **त्रिपुष्करयमलौ** ॥ कृष्णचतुर्दश्यर्द्धात् ध्रुवाणि शकुनि चतुष्पदं नागम् । किंस्तुघ्नमपि प्रतिपत् तिथ्यर्द्धादथ बवादीनि ॥ ७२ ॥ बवबालवकौलवतैतिलाख्यगरवणिजविष्टिसंज्ञानि । सप्त चराणि पुनः पुनरिह तिथ्यर्द्धप्रमाणानि ॥ ७३ ॥ शकुनिप्रमुखचतुर्णामीशाः कलिवृषभसर्प्पपवनाख्याः । सप्तानां त्विन्द्राब्जे मित्रार्यमभूश्रियः सयमाः ॥ ७४ ॥ विष्टिं विना बवाद्येषु करणेषु दशस्वपि । चतुर्वर्णाश्रिताः सर्वाः करणीया शुभा क्रियाः ॥ ७५ ॥ **करणानि** ॥ इति सामान्यदिनशुद्धिः ॥

१ आरम्भसिद्धौ तु जीवारशनिवारेष्वित्युक्तम् ।

प्रस्थानमूर्द्धमुदितं दशकाद्धनुषामर्वाक्धनुः शतकपञ्चकतः शुभाय । तत्रैव मण्डलिकभूपतिशेषलोकैः स्थेयं च सप्तदशपञ्चदिनाः क्रमेण ॥ ७६ ॥ बुधेन्दुशुक्रजीवानां दिने प्रस्थानमुत्तमम् । पूर्णिमायाममावास्यां चतुर्दश्यां च नेष्यते ॥ ७७ ॥ अश्विनी पुष्यरेवत्योर्मृगे मूलं पुनर्वसुः । हस्तज्येष्ठानुराधाः स्युर्यात्रायै तारकाबले ॥७८॥ रोहिणी त्रीणि पूर्वाणि स्वातिश्चित्रा च वारुणी । श्रवणस्तथा धनिष्ठा च प्रस्थाने मध्यमाः स्मृताः ॥ ७९ ॥ विशाखा चोत्तरास्तिस्रस्तथार्द्रा भरणी मघा । अश्लेषा कृत्तिकाश्चैव मृत्यवेऽन्ये तु मध्यमाः ॥ ८० ॥ ध्रुवैर्मिश्रैर्न पूर्वाह्णे क्रूरैर्मध्यंदिने न भैः । अपराह्णे न च क्षिप्रैः प्रदोषे मृदुभिर्न च ॥ ८१ ॥ निशीथकाले नो तीक्ष्णैर्निशान्ते च चरैर्न हि । दिने शुभे दिवा यात्रा यात्रा निशि तु भे शुभे ॥ ८२ ॥ प्राच्यादिदिक्चतुष्केषु क्रमाच्छुभोऽश्व्यादिसप्तकचतुष्कः । प्रागुत्तरयोः प्रत्यग्याम्योर्मध्ये मिथोऽन्यथा परिघः ॥ ८३ ॥ सर्वदिग्गमने हस्तः श्रवणं रेवतीद्वयम् । मृगः पुष्यश्च सिद्ध्यै स्युः कालेषु निखिलेष्वपि ॥ ८३ ॥ न गुरौ दक्षिणां गच्छेन्न पूर्वां शनिसोमयोः । शुक्रार्कयोः प्रतीचीं न चोत्तरां बुधभौमयोः । मङ्गले मारुते शूलमीशाने बुधमन्दयोः । नैर्ऋते शुक्रसूर्याभ्यामाग्नेये गुरुसोमयोः ॥ ८५ ॥ श्रीखण्डं दधि मृत्सर्पिः पिष्टतैलखलाः क्रमात् । वारेऽर्कादौ सदा विन्द्याद्दिक्शूलाऽशुभभे दिने ॥ ८७ ॥ **दिक्शूलम्** ॥ पूर्वस्यामाषाढा, श्रवणधनिष्ठाविशाखिका याम्याम् । पुष्यो मूलमपाच्यां हस्त उदीच्यां च धिष्ण्यशूलानि ॥ ८८ ॥ **इति नक्षत्रशूलानि** ॥ ज्येष्ठा भद्रपदा पूर्वा रोहिण्युत्तरफाल्गुनी । पूर्वादिषु क्रमात्कीला गतस्यैतेषु नागतिः ॥ ८९ ॥ **कीला** ॥ पूर्वोत्तराग्निनैर्ऋतयमवरुणसमीरशङ्करककुप्सु । प्रतिपदमादौ कृत्वा नवमीं च भवन्ति योगिन्यः ॥ ९० ॥ **योगिनीचक्रम्** । राहुः प्राच्यां ततो वायौ दक्षिणेशानपश्चिमे । आग्नेयोत्तरनैर्ऋत्यां प्रहरार्द्धं च तिष्ठति ॥ ९१ ॥ **राहुः** ॥ जयाय दक्षिणो राहुर्योगिनी वामतस्तथा । पृष्ठतो द्वयमप्येतच्चन्द्रमाः सन्मुखः पुनः ॥९२॥ प्राणप्रवेशे वहनाडिपादं कृत्वा पुरो दक्षिणमर्कबिम्बम् । गच्छेच्छुभायाऽरिवधे तु सूर्यं पृष्ठे रिपुं शून्यगतं च कुर्यात् ॥ ९३ ॥ शशिप्रवाहे गमनादि शस्तं सूर्यप्रवाहे नहि किञ्चनापि । प्रद्धुर्ज्जयः स्याद्वहमानभागे रिक्ते च भागे विफलं समस्तम् ॥ ९४ ॥ **हंसः** ॥ यामयुग्मेषु रात्र्यन्तयामात्पूर्वादिगो रविः । यात्रास्मिन् दक्षिणे वामे प्रवेशः पृष्ठगे द्वयम् ॥ ९५ ॥ **रविचारः** ॥ प्रतिदिनमेकैकस्यां दिशि पाशः संमुखोऽस्य कालः स्यात् । प्राच्यां शुक्लप्रतिपद्मारभ्य ततः क्रमान्मासम् ॥९६॥ **पाशकालौ** ॥ कन्यात्रये स्थितेऽर्के प्राच्यां धनुषत्रये तु याम्याम् । मीनत्रये परस्यां मिथुनत्रये च कौबेर्याम् ॥ ९७ ॥ वत्सोऽभ्युदेति यस्मिन्न सन्मुखे शस्यते प्रवासविधिः । चैत्यादीनां द्वारं नार्चादीनां प्रवेशश्च ॥९८॥ अग्रतो हरते आयुः पृष्ठतो हरते धनम् । वामदक्षिणतो वत्सः सदा सर्वसुखप्रदः ॥ ९९ ॥ **वत्सः** ॥ उदयति दिशि यस्यां याति यत्र भ्रमाद्वा विचरति च भचक्रे येषु दिग्द्वारभेषु । त्रिविधमिह सितस्य प्रोच्यते सन्मुखत्वं मुनिभिरुदय एव त्यज्यते तत्र यत्नात् ॥ १०० ॥ **शुक्रगतिः** । न स्नानं रोगमुक्त्यर्थं कार्यं शुक्रेन्दुवासरे ।

मघाश्लेषाध्रुवस्वातिपुनर्वसुषु पौष्णभे ॥ १०१ ॥ अश्वेभाजफणिद्वयश्वनृपभुक् मेषौतु कामूषकश्चाखुर्गौ क्रमशस्ततोऽपि महिषी व्याघ्र पुन सैरिभी । व्याघ्रैणैर्मृगमण्डले कपिरथो वभ्रूद्वय वानर सिंहोऽश्वो मृगराट् पशुश्च करटी योनिस्तु भानामियम् ॥ १०२॥ गोव्याघ्र गजसिंहमश्वमहिष श्वैण च वभ्रूरग वैर वानरमेषक च सुमहत्तद्वद्विडालोन्दुरम् । लोकाना व्यवहारतोऽन्यदपि च ज्ञात्वा प्रयत्नादिद दम्पत्योर्नृपभृत्ययोरपि सदा वर्ज्यं गुरुक्षुल्लयो ॥१०३॥ सकचटतपयशवर्गेष्वष्टसु गरुडो बिडालसिंहाख्यौ । कुक्करसर्पौ मूषकहिरणौ मेषोऽधिपा क्रमश ॥ १०४ ॥ पूर्वैर्वर्गैर चिन्त्य नृपभृत्याह्वाद्याक्षरवर्गाङ्कस्य । क्रमोत्क्रमगतस्य अष्टाभिरपहृत्यैोद्धरिताङ्कार्धं विशोपका स्युः ॥ १०५ ॥ ते चोत्तराङ्कविसुना लभ्या प्राच्यादथैकवर्गषु । पूर्वोत्तराक्षराङ्कस्थाप्य स्याच्छेष आद्यविधि ॥८६॥ हस्तस्वात्यनुराधाश्रवणपुनर्वसुमृगाश्विनीपुष्या । रेवत्यपि देवगण पूर्वोत्तरयो त्रये भरण्यार्द्रा ॥ १०६ ॥ रोहिण्यपि मर्त्यगणो ज्येष्ठामूल द्वय धनिष्ठाया । अश्लेषाकृत्तिकाचित्राविशाखामघा पलादगण ॥ १०७ ॥ स्वकुले परमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषी । देवराक्षसयोर्वैर मरण मर्त्यरक्षसो ॥१०८॥ मकरवृषमीनकन्यावृश्चिककर्काष्टमे रिपुत्व स्यात् । अजमिथुनधन्विहरिघटतुलाष्टमे मित्रतावश्यम् ॥ १०९ ॥ शत्रुषडष्टके मृत्यु कलहो नवपञ्चमे । द्विद्वादशे तु दारिद्र्य शेषेषु प्रीतिरुत्तमा ॥ ११० ॥ त्रिपञ्चसप्तमी तारा चान्योन्य गुरुशिष्ययो । वर्जनीया शुभाय स्यादेकनाडिगत शुभम् ॥ १११ ॥ नामकरणम् ॥ विद्यारम्भे गुरु श्रेष्ठो मध्यमौ भृगुभास्करौ । मरण मन्दभौमाभ्या न विद्या बुधसोमयो ॥ ११२ ॥ विद्यारम्भोऽश्विनीमूलपूर्वासु मृगपञ्चके । हस्ते शतभिषक्स्वातिचित्रासु श्रवणद्वये ॥ ११३॥ विद्यारम्भ ॥ अर्काङ्किभौमपदतुर्यनवाष्टान्त्यतिथिद्वये । नेष्ट क्षौर निशाविद्यायात्रार्द्रा न च पर्वसु ॥ ११४ ॥ हस्तत्रये मृगज्येष्ठे पौष्णादित्यश्रुतिद्वये । क्षुरकर्म शुभ प्रोक्त कार्यौरसुवये तु सर्वदा ॥ ११५॥ क्षौरम् ॥ हस्तादिपञ्चकध्रुवरेवत्यश्विनीपुनर्वसुधनिष्ठा । पुष्यज्ञशुक्रगुरुषु शुभदा वस्त्रस्य परिधाने ॥ ११६ ॥ वस्त्रपरिधानम् ॥ मृग पुष्योऽश्विनीचित्राऽनुराधा रेवती कर । शशी बृहस्पति पात्रव्यापारे शुभदायका ॥ ११७ ॥ पात्रभोग. ॥ रोहिण्यादिचतुष्केषु प्रतिभ चाभिधा इमा । अन्धककेकराख्य च चिप्पटाख्य च दिव्यदृक् ॥११८॥ न्यस्त नष्ट हृत द्रव्य प्रागन्धैर्यमत परै । लभ्यते चिप्पटैर्वार्ता दिव्यार्ये सापि नाप्यते ॥ ११९ ॥ तथास्यन्धैर्दिश पूर्वां केकरैर्दक्षिणा पुन । पश्चिमा चिप्पटैर्धिष्ण्यैर्दिव्यचक्षुर्भिरुत्तराम् ॥ १२० ॥ दत्त प्रयुक्त विन्यस्त निक्षिप्त नष्टमप्यथ । धन न लभ्यते क्वापि मिश्रोग्रध्रुवदारुणै ॥१२१॥ नष्टम् । न जीवत्यहिना दष्ट सुपर्णेनापि रक्षित । मघाश्लेषाविशाखार्द्रामूलेषु मरणीद्वये ॥ १२२॥ स्वातिपूर्वात्रयाश्लेषाज्येष्ठार्द्रारोगिणो मृति । रेवत्यामनुराधाया कष्टात् नीरोगता भवेत् ॥ १२३ ॥ मासात् मृगोत्तराषाढे मघासु दिनविंशति । विशाखाभरणीहस्तधनिष्ठासु च पक्षत ॥ १२४ ॥ एकादशाहाच्चित्रायां श्रुतौ शतभिषज्यपि । अश्विनी कृत्तिकामूले नैरुज्य नवभिर्दिनै ॥ १२५ ॥ पुष्योत्तराभद्रपदा-

फाल्गुनीरोहिणीषु च । पुनर्वस्वोश्च सप्ताहात्तारा चेदानुकूल्यभाक् ॥ १२६ ॥ चरेषु मृदुषु क्षिप्रवर्गे मूले च भेषजम् । रोगनाशि वयःस्थायि देहबृंहणमिष्यते ॥ १२७ ॥ **नीरोगता** ॥ प्रेतक्रिया न कर्तव्या यमले च त्रिपुष्करे । आर्द्रामूलानुराधासु मिश्र-क्रूरध्रुवेषु च ॥ १२८ ॥ पूर्वात्रयाश्विनीमूलकृत्तिकासु श्रुतिद्वये । हस्तचित्रामघापुष्या-नुराधारेवतीमृगे ॥ १२९ ॥ मृते साधौ भवेदेकपुत्रको द्वौ पुनर्ध्रुवे । पुनर्वस्वोर्वि-शाखायामपि नान्येषु किञ्चन ॥ १३० ॥ **प्रेतक्रिया** ॥ ध्रुवमृदुपुष्यधनिष्ठास्वातिकरे वारुणे च सूत्रविधिः । पौष्णयब्राह्मययुगश्रुतिपुष्यत्र्युत्तरे शिलान्यासः ॥१३१॥ पुष्ये मृदुध्रुवर्क्षेषु धनिष्ठाद्वितयानिले । शुक्रे चन्द्रे गुरौ गेहप्रवेशोऽभ्युदिते शुभः ॥१३२॥ **गेहारम्भः** ॥ मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वारे भौमशनिं विना । आघाटनतपोनन्द्यालोचनादिषु भं शुभम् ॥ १३३ ॥ अलिसिंहे धनुर्वक्रः शूलाभः कन्यका तुले । दक्षिणाभ्युन्नतो मीनमेषे कुम्भे वृषे समः ॥ १३४ ॥ मिथुने मकरे चोत्तरोन्नतोऽथ हलोपमः । धनुःकर्के रवौ श्लाघ्यो नवेन्दुरशुभोऽन्यथा ॥ १३५ ॥ विड्वरं स्यात्समे चन्द्रे सुभिक्षं चोत्तरोन्नते । अतिराजभयं शूले दुर्भिक्षं दक्षिणोन्नते ॥ १३६ ॥ **चन्द्रोदयः** ॥ निजराशेर्ग्रहणदिने त्रिषट्दशैकादशः शुभो राहुः । अपरे राहुं प्राहुर्जन्मस्थविवर्जितं शशिवत् ॥ १३७ ॥ **इति ग्रहणराहुफलम्** ॥

राशिप्रभेद १ संज्ञा २ ग्रहभेदा ३ गोचरा ४ ऽष्टवर्गौ च ५। संवत्सरः ६ मास ७ दिन ८ क्षशुद्धयः ९ क्रान्तिसाम्यं च १० ॥ १ ॥ बलं ११ मानं च लग्नस्य १२ षड्वर्गो १३ दयशोधनम् १४ । प्रतिष्ठायां १५ व्रते चापि ग्रहाः १६ तद्दोपतद्गुणाः ॥२॥ ध्रुव १७ छायाविलग्ने च १८ द्वाराण्यष्टादश क्रमात् । अथैतानि प्रवक्ष्यन्ते लग्नशुद्धि-विधित्सया ॥ ३ ॥ कुम्भः कुम्भशिरास्तुला धृततुलो धन्व्यश्वपश्चार्द्धको बिभ्रच्चापममी नरा नृमिथुनं वीणागदाभृत्करम् । मीनो मीनयुगं विपर्ययमुखं सस्याग्नियुक्कन्यका नौस्थासौ हरिणाननस्तु मकरो नामानुरूपाः परे ॥४॥ पुं १ स्त्री २ क्रूरा १ क्रूरा २ श्चर १ स्थिर २ द्विस्वभावसंज्ञाश्च ३ । अजवृषमिथुनकुलीराः पञ्चमनवमैः सहैन्द्राद्याः ॥ ५ ॥ मेषाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपाबला ज्ञेयाः । पृष्ठोदया विमिथुनास्त एव मीनो ह्युभयलग्नम् ॥ ६ ॥ अज १ वृष २ मृगा ३ ऽङ्गना ४ कर्क ५ मीन ६ वणिजां ७ शकेष्विनाद्युच्चाः। दश १० शिख्य ३ ऽष्टाविंशति २८ तिथीं १५ द्रिय ५ त्रिघन २७ विंशेषु ॥ २० ॥ ७ ॥ उच्चान्नीचं सप्तममर्कादीनां त्रिकोणसंज्ञानि । सिंह १ वृषा २ ऽज ३ प्रमदा ४ कार्मुकभृ ५ त्तौलि ६ कुम्भधराः ॥ ७ ॥ ८ ॥ **राशिप्रभेदः** ॥ १ ॥ तनु १ धन २ सहज ३ सुहृत् ४ सुत ५ रिपु ६ जाया ७ मृत्यु ८ धर्म ९ कर्मा १० ऽऽयाः ११ । व्यय १२ इति लग्नाद्भावाश्चतुरस्रेऽष्टमचतुर्थे च ॥ ९ ॥ पातालहि-बुकसुखवेश्मबन्धुसंज्ञं तथाम्बु च चतुर्थम् । नवपञ्चमं त्रिकोणं नवमर्क्षं त्रित्रिकोणं च ॥ १० ॥ सप्तमकं जामित्रं द्यूनं द्युनमस्तमष्टमं छिद्रम् । धीः पञ्चमं तृतीयं दुश्चिक्यं विक्रमं चापि ॥ ११ ॥ मध्यं मेपूरणमम्बरं च दशमं तथान्तिमं रिष्पम् । एकादशं तु

कथयन्ति सूरयः सर्वतोभद्रम् ॥१२॥ केन्द्रं चतुष्टयं कण्टकं च लग्ना १ स्त ७ दश १० चतुर्थानाम् ४। संज्ञा परतः पणफर २।५।८।११ मापोक्लिम ३।६।९।१२। मस्त यपरतः ॥ १३ ॥ त्रिषष्टेकादशदशमान्युपचयभवनाऽन्यतोऽन्यथाऽन्यानि। वर्गोत्तमा नवांशाश्चरादिषु ३ प्रथम १ मध्या ५ ऽन्त्या ९ ॥ १४ ॥ प्राच्यादीशा रवि १ सित २ कुज ३ राहु ४ यमे ५ न्दु ६ सौम्य ७ वाक्पतयः । क्षीणेन्द्वर्कयमारा पापास्तैः संयुतः सौम्यः ॥ १५ ॥ सप्तमगृहगो ज्ञेयो विधुन्तुदाक्रान्तवेश्मनः केतुः । क्लीवस्त्रीपुरुषाणां बुधशौरी शशिसितौ परे च नराः ॥ १६ ॥ बलवान्मित्रस्वगृहोच्चनवांशेष्वीक्षितः शुभैश्चापि। चन्द्रसितौ स्त्रीक्षेत्रे पुरुषक्षेत्रोपगाः शेषाः ॥१७॥ संज्ञा ॥ २ ॥ प्राच्यादौ जीवबुधौ १ सूर्यारौ २ भास्करिः ३ शशाङ्कसितौ ४ । उदगयने शशिसूर्यौ वक्रेऽन्ये स्निग्धविपुलाश्च ॥ १८ ॥ ग्रहयुद्धे चोत्तरगाश्चन्द्रेण समागताश्चरविवर्ज्यम् । चेष्टाबलिनो ज्ञेयाः कालबलं वक्ष्यते त्वधुना ॥ १९ ॥ अहनि सितार्कसुरेज्या द्युनिशं ज्ञो नक्तमिन्दुकुजशौराः । स्वदिनादिषु शुभशुभाः बहुलेतरपक्षयोर्बलिनः ॥ २० ॥ मन्दारसौम्यवाक्पतिसितचन्द्रार्का यथोत्तरं बलिनः । नैसर्गिकबलमेतद्बलसाम्ये स्यादधिकचिन्ता ॥ २१ ॥ दशमतृतीये ५ नवपञ्चमे १० चतुर्थाष्टमे १५ कलत्रं च २० । पश्यन्ति पादवृद्ध्या मतेन पूर्णं निजाश्रयो १ पान्त्ये ११ ॥ २२ ॥ पूर्णं पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः । चतुरस्रे भूमिसुतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रं च ॥ २३ ॥ शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवेः । तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः ४ समाः शीतगोः । जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ३ ॥ २४ ॥ सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे ३ त्वऽन्यथा, सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी । शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः शौरस्य चान्ये ३ ऽरयस्तत्काले च दश १० ऽऽय ११ बन्धु ४ सहज ३ स्वा २ न्तेषु १२ मित्रं स्थिताः ॥ २५ ॥ मित्र १ मुदासीनो २ ऽरि ३ र्व्याख्याता ये निसर्गभावेन । तेऽधिसुहृ १ न्मित्र २ समा ३ स्तत्कालमुपस्थिताश्चिन्त्याः ॥२६॥ ग्रहभेदाः ३। स्थापयितुः शिष्यस्य च गोचरशुद्धौ गुरोस्तु चन्द्रबले। स्थापनदीक्षे कार्ये जन्मेन्दुगृहात्तु सा ग्राह्या ॥ २७ ॥ सूर्यः षट्त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चन्द्रमा जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ । सौम्यः षड्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्त्ये शुभाः ११ । शुक्रः सप्तमषड्दशर्क्षरहितः शार्दूलवित्रासकृत् ॥ २८ ॥ धन २ सुत ५ धर्मेषु ९ रविर्मध्यशुभदः शशी तु सितपक्षे । ग्राह्यं ताराबलमपि शशिनि क्षीणे च विबले च ॥ २९ ॥ गोचरशुद्धिः ४ ॥ रविशशिजीवैः सबलैः शुभदः स्याद्गोचरोऽथ तदभावे । ग्राह्याऽष्टवर्गशुद्धिर्जन्मविलग्नग्रहेभ्यस्तु ॥ ३० ॥ केन्द्रायाष्टद्विनवस्थर्के स्यादार्किभौमयोश्च १।४।७।१०।११।८।२।९। शुभः । षट्सप्तान्त्येषु सितात् ६।७।१२। षडायधीधर्मगो जीवात् ६।११।५।९ ॥ ३१ ॥ उपचयगोऽर्कश्चन्द्रा ३।६।१०।११। दुपचयनवमान्त्यधीयुतः सौम्यात् ३।६।१०।११।९।१२।५। लग्नादुपचयबन्ध्वव्यये ३।६।१०।

११।४।१२ स्थितः शोभनः प्रोक्तः ॥ ३२ ॥ रवेरष्टवर्गरेखाः ४८ ॥ शश्युपचयेषु लग्ना ३।६।१०।११। स्वाद्यमुनिः स्वात् ३।६।१०।११।१।७ कुजात्सस्वनवधीस्थः ३।६।१०।११।२।९।५।सूर्यात्साष्टस्मरग ३।६।१०।११।८।७ त्रिषडायसुतेषु सूर्यसुतात् । ३।६।११।५॥३३॥ ज्ञात्केन्द्रत्रिसुतायाष्टगो१।४।७।१०।३।५।११।८ गुरोर्व्ययायमृत्युकेन्द्रेषु१२।११।८।१।४।७।१०। त्रिचतुःसुतनवदशसप्तमायगश्चन्द्रमाः शुक्रात् ३।४।५।९।१०।७।११॥ ३४ ॥ सोमाष्टकवर्गरेखाः ४९ ॥ भौमः स्वादायस्वाष्टकेन्द्रग ११।२।८।१।४।७।१०। स्वायषट्सुतेषु बुधात् ३।११।६।५। जीवाद्दशायशत्रुव्यये १०।११।६।१२ ष्विनादुपचयसुतेषु ३।६।१०।११।५ ॥ ३५ ॥ उदयादुपचयतनुषु ३।६।१०।११।१ त्रिषडायेष्विन्दुतः सदशमेषु ३।६।११।१०। भृगुतोऽन्त्यषडष्टाये १२।६।८।११। ष्वऽसितात्केन्द्रायनववसुषु १।४।७।१०।११।९।८ ॥ ३६ ॥ भौमाष्टकवर्गरेखाः ४० ॥ सौम्योऽन्त्यरिपुनवायात्मजे १२।६।९।११।५। ष्विनात् स्वात्रितनुदशयुतेषु १२।६।९।११।५।३।१।१० चन्द्राद्द्विरिपुदशायाष्टसुखगतः २।६।१०।११।८।४। सादिषु विलग्नात् १।२।६।१०।११।८।४ ॥३७॥ प्रथमसुखायद्विनिधनधर्मेषु सितात् त्रिधीसमेतेषु १।४।११।२।८।९।३।५। सदशस्मरेषु शौरारयो १।४।११।२।८।९।३।५।१०।७। व्ययायाऽरिवसुषु गुरोः १२।११।६।८ ॥ ३८ ॥ बुधाष्टकवर्गरेखाः ५८ ॥ जीवो भौमाद्व्यायाऽष्टकेन्द्रगो २।११।८।१।४।७।१० ऽर्कात् सधर्मसहजेषु २।११।८।१।४।७।१०।९।३। स्वारसत्रिकेषु २।११।८।१।४।७।१०।३ शुक्रान्नवदशलाभस्वधीरिपुषु ९।१०।११।२।५।६ ॥ ३९ ॥ शशिनः स्मरत्रिकोणार्थलाभग ७।९।५।२।११। त्रिरिपुधीव्ययेषु यमात् ३।६।५।१२। नवदिक्सुखाद्यधीस्वायशत्रुषु ज्ञात् ९।१०।४।१।५।२।११।६।सकामगो लग्नात् ९।१०।४।१।५।२।११।६।७ ॥ ४० ॥ गुरोरष्टकवर्गरेखाः ५६ ॥ शुक्रो लग्नादासुतनवाष्टलाभेषु १।२।३।४।५।९।८।११। सव्ययश्चन्द्रात् १।२।३।४।५।९।८।११।१२। स्वात्सदिग १।२।३।४।५।९।८।११।१० ऽसितात्त्रिसुखात्मजाष्टदिग्धर्मलाभेषु ३।४।५।८।१०।९।११ ॥ ४१ ॥ वस्वन्त्यायेष्वऽर्का ८।१२।११ नवदिग्लाभाऽष्टधीस्थितो जीवात् ।९।१०।११।८।५। ज्ञात्रिसुतनवायारि ३।५।९।११।६ ष्वायसुतापोक्लिमेषु कुजात् ११।५।३।६।९।१२ ॥४२॥ शुक्राष्टवर्गरेखाः ५२ । स्वात्सारिस्त्रिसुता' यारिगः ३।५।११।६। कुजादन्त्यकर्मसहितेषु ३।५।११।६।१२।१० स्वायाष्टकेन्द्रगोऽर्कात् २।११।८।१।४।७।१०। शुक्रात् षष्ठान्त्यलाभेषु ।६।१२।११॥ ४३ ॥ त्रिषडायगः शशाङ्का ३।६।११। दुदयात्ससुखाद्यकर्मगो ३।६।११।४।१।१० ऽथ गुरोः । सुतषट्व्ययायगो ५।६।१२।११। ज्ञाद्व्ययायरिपुदिग्नवाष्टस्थः १२।११।६।१०।९।८ ॥ ४४ ॥ शन्यष्टकवर्गरेखाः ३९ ॥ स्थानेष्वेतेषु हिताः शेषेष्वहिता भवन्ति तेऽष्टानाम् । अशुभशुभविशेषफलं ग्रहाः प्रयच्छन्ति चारगताः ॥ ४५ ॥ अष्टकवर्गशुद्धिः ॥ ५ ॥

रविक्षेत्रगते जीवे जीवक्षेत्रगते रवौ । दीक्षामुपस्थापनं चापि प्रतिष्ठां च न कारयेत् ॥ ४५ ॥ वर्षशुद्धिः ॥ ६ ॥ हरिशयनेऽधिकमासे गुरुशुक्रास्ते न लग्नमन्वेष्यम् ।

लग्नेशांशाधिपयोर्नीचास्तमने च न शुभं स्यात् ॥ ४६ ॥ मासशुद्धिः ॥ ७ ॥ कुलिकार्द्धयामभद्रागण्डान्तोत्पातमुख्यदोषयुतम् । त्याज्यं सदा दिनं कुजवारोऽपि पुनः प्रतिष्ठायाम् ॥ ४७ ॥ त्र्येकद्वितीयपञ्चमदिनानि पक्षद्वयेऽपि शस्तानि । शुक्लेऽतिमत्रयोदशदशमान्यपि च प्रतिष्ठायाम् ॥ ४८ ॥ पक्षद्वितये च तुर्याष्टमषष्ठद्वादशान्त्यनवमदिनाः । त्याज्याश्चतुर्दशोऽपि च दीक्षायामुत्तमास्त्वन्ये ॥ ४९ ॥ पक्षं च पञ्चदिवसान् १५।५ भृगुजं प्रवृद्धक्षीणं बालकस्तु दश चापि पुरः १ प्रतीच्याम् २ । सर्वत्र सूरिरुदयेऽस्तमये च पक्षमन्यस्त्विमौ दिवससप्तकमेव वर्ज्यौ ॥ ५० ॥ ग्रहणस्य दिनं तदादिमं दिनमागामिदिनानि सप्त च । त्यज सङ्क्रमवासरं पुनः सह पूर्वेण च पश्चिमेन च ॥ ५१ ॥ दिनशुद्धिः ॥ ८ ॥ दीक्षायां स्थापनायां च शस्तं मूलं पुनर्वसु । स्वातिर्मैत्रं करं श्रोत्रं पौष्णं ग्राह्ययोत्तरात्रयम् ॥ ५२ ॥ प्रतिष्ठायां धनिष्ठा च पुष्यं सौम्यं मघापि च । दीक्षायां शस्यते सद्भिरश्विनी वारुणं तथा ॥ ५३ ॥ जन्मर्क्षे दशमे चैव षोडशेऽष्टादशे तथा । पञ्चविंशे त्रयोविंशे प्रतिष्ठां नैव कारयेत् ॥ ५४ ॥ ग्रहणस्थं ग्रहैर्भिन्नमुदितास्तमितग्रहम् । क्रूरमुक्ताग्रगाक्रान्तं नक्षत्रं परिवर्जयेत् ॥ ५५ ॥ वेधै १ कार्गललत्ता ३ पातो ४ पग्रह ५ युतं च भं त्याज्यम् । वेधैकार्गलदोषौ पादान्तरितौ न दोषकरौ ॥ ५६ ॥ सप्तोर्द्ध्वं सप्त तिर्यक् च रेखाः कार्यास्तदग्रतः । पूर्वादौ कृत्तिकादीनि सप्त सप्त चतुर्दिशम् ॥ ५७ ॥ एवमिष्टभरेखायां ग्रहो यदि तदा व्यधः । ग्रहराहुहते शुद्धिश्चन्द्रभुक्तयर्द्धवर्षयोः ॥ ५८ ॥ वेधः ॥ त्रयोदशतिरोरेखा एकोर्ध्वं मस्तके ततः । न्यस्ते योगोक्तनक्षत्रे भवेदेकार्गलस्तदा ॥ ५९ ॥ शूले मूर्ध्नि मृगो मघा च परिघे चित्रा तथा वैधृतौ, व्याघाते च पुनर्वसू निगदितौ पुष्यश्च वज्रे स्मृतः । गण्डे मूलमथाश्विनी प्रथमके मैत्रोऽतिगण्डे तथा सार्पिश्च व्यतिपात इन्दुतपनावेकार्गलस्थौ यदा ॥ ६० ॥ एकार्गलः ॥ सूर्यात् १२ ऽष्ट ८ त्रि ३ त्रिविंश २३ र्तु ६ पञ्चविंशा २५ ऽष्ट ८ सङ्ख्यभे । सूर्यादीनां क्रमाल्लत्तैकविंशे २१ तमसोऽग्रतः ॥ ६१ ॥ अग्रतो नवमे राहोः सप्तविंशे भृगोस्तु भे । केचिज्ज्योतिर्विदः प्राहुर्लत्तां तामपि वर्जयेत् ॥ ६२ ॥ लत्ता ॥ ३ ॥ सार्पिपितृदेवचित्रामैत्रश्रुतिपौष्णभानि सूर्यक्षात् । यरसङ्ख्यान्यश्विन्यास्तरसङ्ख्यर्क्षे भवेत्पातः ॥ ६३ ॥ पातः ॥ विद्युन्मुख १ शूला २ शनि ३ केतू ४ ल्का ५ वज्र ६ कम्प ७ निर्घाताः ८। ढ ५ ज ८ ढ १४ द १८ ध १९ फ २२ य २३ भ २४ सङ्ख्ये रविभुक्त उपग्रहा धिष्ण्ये ॥ ६४ ॥ उपग्रहाः ॥ नक्षत्रशुद्धिः ॥ ९ ॥ रवीन्दुभुक्तराशीनां योगे षट् द्वादशाऽथवा । यदि स्युः स्यात्तदा हेयः क्रान्तिसाम्यस्य सम्भवः ॥ ६५ ॥ क्रान्तिसाम्यम् ॥ १० ॥ द्विस्वभावं प्रतिष्ठासु स्थिरं वा लग्नमुत्तमम् । तदभावे चरं ग्राह्यमुद्दामगुणभूषितम् ॥ ६६ ॥ मिथुनधनुराद्यभागप्रमदांशाः स्युः शुभाः प्रतिष्ठायाम् । मीनतुलाधरकेसरिनवांशका मध्यमा ज्ञेयाः ॥ ६७ ॥ वृश्चिकमिथुनधनुर्धरकुम्भेषु शुभाय दीक्षणं भवति । पञ्चमके द्विनवांशे घृषाऽजयोर्नान्यराशीनाम् ॥ ६८ ॥ लग्नेन्द्वोरस्तगः क्रूरो दुरवस्थास्थित

शशी । वर्गोत्तमं विना चान्यो नवांशोऽपि न गृह्यते ॥ ६९ ॥ न जन्मराशौ नो जन्मराशिलग्नान्तिमाष्टमे । न लग्नांशाधिपे लग्ने षष्ठाष्टमगते विदुः ॥ ७० ॥ जन्मराशिविलग्नाभ्यां रन्ध्रेशौ रन्ध्रसंस्थितौ । त्याज्यौ क्रूरान्तरस्थौ च लग्नपीयूषरोचिषौ ॥ ७१ ॥ सति दर्शने यदि स्यादंशद्वादशकमध्यगः क्रूरः । इन्दोर्लग्नस्य तथा न शुभो राहुस्तु सप्तमगः ॥ ७२ ॥ त्रयः सौम्यग्रहा यत्र लग्ने स्युर्बलवत्तराः । बलवत्तदपि विज्ञेयं शेषैर्हीनबलैरपि ॥ ७३ ॥ लग्नबलम् ॥ ११ ॥ मेषस्तत्त्वयमैः २२५ रसेषुयमलैः राशिर्वृषाभः २५६ पलैः पञ्चव्योमहुताशनैश्च मिथुनः ३०५ कर्कः ३४१ कुवेदाग्निभिः । सिंहः ३४२ पाणिपयोधिपावकमितैः कन्या ३२१ कुलोकत्रिकैरेते व्युत्क्रमतस्तुलादय इह स्युर्गुर्जरे मण्डले ॥ ७४ ॥ यथा तुला ३२१ वृश्चिकः ३४२ धनुः ३४१ मकरः ३०५ कुम्भः २५६ मीनः २२५ ॥ सूर्योध्यासितराशेर्माने रविभुक्तनाडिकाभिहते । सङ्क्रान्तिभोगभुक्ते लब्धं यत्सूर्यभुक्तं तत् ॥ ७५ ॥ तस्मिन्नुदयत्रिंशे दत्ते शेषं रवेर्भवेद्भोग्यम् । इति दिनलग्ने कार्यं निशिलग्ने सप्तमस्यार्कात् ॥ ७६ ॥ वाञ्छितलग्नस्याप्यथ भुक्ते न्यस्येत तदुदयत्र्यंशम् । दत्तनवांशपलानां त्र्यंशं दद्यात्प्रवृत्तेश्च ॥ ७७ ॥ इत्थं संस्कृतमखिलं वाञ्छितलग्नस्य भुक्तमिनभोग्यम् । युतमान्तरोदयैरपि षष्टिहृतं नाडिकापलानि यत् ॥ ७८ ॥ एवमधिवासितांशे स्थापनदत्तान्तरांशपलमिलिते । षष्टिहृते घटिकाः स्युः पलानि शेषं प्रतिष्ठायाः ॥ ७९ ॥ इति लग्नमानम् ॥ १२ ॥ कुज १ शुक्र २ ज्ञं ३ ह्व ४ ऽर्के ५ ज्ञ ६ शुक्र ७ कुज ८ जीव ९ शौरि १० यम ११ गुरवः १२ ॥ मेशा नवांशकानामज १ मकर २ तुला ३ कुलीराद्याः ॥ ८० ॥ स्वगृहाद्द्वादशभागा द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चनवपानाम् । होरा विषमेऽर्केन्द्वोः समराशौ चन्द्रतीक्ष्णांश्वोः ॥ ८१ ॥ कुज १ यम २ जीव ३ ज्ञ ४ सिताः पंचेन्द्रिय ५ वसु ६ मुनी ७ न्द्रियां ८ शानाम् । विषमेषु समर्क्षेपूत्क्रमेण त्रिंशांशकाः कल्प्याः ॥ ८२ ॥ लिप्ताऽष्टादशनवषद्द्विसार्द्धशतषष्टिमानपरिगणिताः । गृह १ होरा २ द्रेष्काणा ३ नवभागा ४ द्वादशांश ५ त्रिंशांशाः ॥ ६ ॥ ८३ ॥ इत्यनेनानुमानेन नवांशस्यानुसारतः । कार्या षड्वर्गसंशुद्धिः स्थापनादीक्षयोः शुभाः ॥ ८४ ॥ यथा यथा शोभनवर्गलाभस्तथा तथा स्थापनमुत्तमं स्यात् । नवांशकस्तावदवश्यमत्र सौम्यग्रहस्यैव विलोकनीयः ॥ ८५ ॥ भृगोरुदयवारांशभवनेक्षणपञ्चके । चन्द्रांशोदयवारे च दर्शने च न दीक्षयेत् ॥ ८६ ॥ षड्वर्गसंशुद्धिः ॥ १३ ॥ अंशकजामित्रपतौ पश्यति लग्नास्तमस्तशुद्धिः स्यात् । अंशकपतिस्तु लग्नं यदि पश्यत्युदयशुद्धिः स्यात् ॥ ८७ ॥ प्रतिष्ठादीक्षयोर्ग्राह्या विशुद्धिरुदयास्तयोः । अथवोदयसंशुद्धिः केवलैव निरीक्ष्यते ॥ ८८ ॥ ॥ १४ ॥ सौरार्कक्षितिसूनवस्त्रिरिपुगा द्वित्रिस्थितश्चन्द्रमाः, एकद्विबुधः शस्तः प्रतिष्ठाविधौ । जीवः केन्द्रनवस्वधीषु भृगुजो व्योमत्रिकोणे । पातालोदययोः सराहुशिखिनः सर्वेऽप्युपान्त्ये शुभाः ॥ ८९ ॥ खेऽर्कः केन्द्रशशधरः सौम्यो नवास्तारिगः । षष्ठो देवगुरुः सितस्त्रिधनगो मध्याः प्रति- । अर्केन्दुक्षितिजाः सुते सहजगो, जीवो व्ययास्तारिगः शुक्रो व्योमसुते

निम्नध्यमफलं शौरिश्च मद्भिर्गतं ॥ ९० ॥ सर्वं परत्र वर्ज्या जन्मक्षरगः शिखी शशियुतश्च । शुभदक्षिशत्रुमस्थो परत्र मध्यो विधुतुदस्तद्वत् ॥ ९१ ॥ भौमेनार्केण वा युक्ते दृष्टे वाऽग्निभय भवेत् । पञ्चत्व शनिना युक्ते समृद्धिस्त्विन्दुजन्मना ॥ ९२ ॥ सिद्धार्चितत्व जायेत गुरुणा युतवीक्षिते । शुक्रयुक्तेक्षिते चन्द्रे प्रतिष्ठाया समृद्धय ॥ ९३ ॥ सूर्ये विपले गृहपो गृहिणी मृगलाञ्छने घन भृगुजे । वाचस्पतौ तु सौख्यं नियमाद्याशं समुपयाति ॥ ९४ ॥ उदयनमस्तलहिबुकेष्वन्नमयेऽथ त्रिकोणसंज्ञे च । सूर्यशनैश्चरवक्रा प्रासादविनाशन प्रकुर्वन्ति ॥ ९५ ॥ क्रूरग्रहसमयुक्ते दृष्टे वा शशिनि सूर्यलुप्तकरे । मृत्यु करोति कर्तुं कृता प्रतिष्ठाऽयने याम्ये ॥ ९६ ॥ अङ्गारक शनिश्चैव राहुभास्करकेतवः । मृगुपुत्रसमायुक्ता सप्तमस्थाखिलापहा ॥ ९७ ॥ स्थाप्यस्थापककर्तॄणा मघ प्राणवियोजका । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमस्थान् विवर्जयेत् ॥ ९८ ॥ बलीयसि सुहृद्दृष्टे केन्द्रस्थे रविनन्दने । त्रिकोणगे च नेष्यन्ते शुभारम्भा मनीषिभि ॥ ९९ ॥ निधनव्ययधर्मस्थ केन्द्रगो वा धरासुत । अपि सौख्यसहस्राणि विनाशयति बुद्धिमान् ॥ १०० ॥ गुणशतमपि दोष कश्चिदेकोऽपि वृन्द स्थगयति यदि नान्यस्तद्विरोधी गुणोऽस्ति । घटमिव परिपूर्णं पञ्चगव्यस्य पूत मलिनयति सुराया बिन्दुरेकोऽपि सर्वम् ॥१०१॥ बलवति सूर्यस्य सुते बलहीनेऽङ्गारके बुधे चैव । मेषवृषस्थे सूर्ये क्षपाकरे चार्हती स्थाप्या ॥१०२॥ न तिथिर्न च नक्षत्र न वारो न च चन्द्रमा । लग्नमेक प्रशसन्ति त्रिषडेकादशे रवौ ॥१०३॥ हिबुकोदयनवमाम्बरपञ्चमगृहग सितोऽथवा जीव । लघु हन्ति लग्नदोषास्तटद्रुममिव निम्नगावेग ॥ १०४ ॥ त्रिषडेकादशसस्था क्षितिसुतरविचन्द्रसूर्यसुतशिखिन । सान्निध्य देवानां निवेशकाले प्रकुर्वन्ति ॥१०५॥ बुधभार्गवजीवानामेकोऽपि हि केन्द्रमाश्रितो बलवान् । यद्यक्रूरसहाय सद्योऽरिष्टस्य नाशाय ॥१०६॥ लग्न दोषशतेन दूषितमसौ चन्द्रात्मजो लग्नग केन्द्रे वा विमलीकरोति सुचिर यद्यर्कबिम्बाच्च्युत । शुक्रस्तद्द्विगुण सुनिर्मलवपुर्लग्नस्थितो नाशयेद्दोषाणामथ लक्षमप्यपहरेल्लग्नस्थितो वाक्पति ॥ १०७ ॥ ये लग्नदोषा कुनवांशदोषा पापै कृता दृष्टिनिपातदोषा । लग्ने गुरुस्तान् विमलीकरोति फल यथाम्भ कतकद्रुमस्य ॥ १०८ ॥ अनिष्टस्थानसस्थोऽपि लग्नात्क्रूरो न दोषकृत् । बुधभार्गवजीवैस्तु दृष्ट केन्द्रत्रिकोणगै ॥ १०९ ॥ सुतहिबुकवियद्विलग्नधर्मेष्वमरगुरुर्यदि दानवार्चितो वा । यदशुभमुपयाति तच्छुभत्व शुभमपि वृद्धिमुपैति तत्प्रभावात् ॥ ११० ॥ कार्यमात्यन्तिक चेत्स्यात् तदा बहुगुणान्वितम् । स्वल्पदोष समाश्रित्य लग्न तत्सर्वमाचरेत् ॥१११॥ प्रतिष्ठाग्रहबलग्रहदोषगुणाः ॥१५॥ षट्द्वयेकादश पञ्चमो दिनकरस्त्र्यायषष्ठ शशी लग्नात्सौम्यकुजौ शुभावुपचये केन्द्रत्रिकोणे गुरु । शुक्र षट् त्रिनवान्त्यगोऽष्टमसुतद्वयेकादशो मन्दगो लग्नाशादिगुरुश्च चण्डमहसा शौरेश्च दीक्षाविधौ ॥ ११२ ॥ रविस्तृतीयो दशम. शशाङ्को जीवेन्दुजावन्तिमनाशवर्ज्यौ । केन्द्राष्टवर्ज्यौ भृगुजस्त्रिशत्रुसस्थ शनि प्रव्रजने मतोऽन्यै. ॥ ११३ ॥

शुक्राङ्गारकमन्दानां नाभीष्टः सप्तमः शशी । तमःकेतू तु दीक्षायां प्रतिष्ठावच्छुभाऽ-
शुभौ ॥ ११४ ॥ कलह १ भय २ जीवनाशन ३ धनहानि ४ विपत्ति ५ नृपतिभीति ६
करः । प्रव्रज्यायां नेष्टो भौमादियुतः क्षपानाथः ॥ ११५ ॥ दीक्षाग्रहबलम् ॥१६॥ ३
ध्रुवचक्रे स्थिते तिर्यक् प्रतिष्ठादीक्षणादिकम् । ऊर्ध्वस्थिते ध्वजारोपखातप्रमुख-
माचरेत् ॥ ११६ ॥ इति ध्रुवलग्नम् ॥ १७ ॥ शनौ शुक्रे च सोमे च सार्द्धान्यष्ट-
पदानि च । ज्ञेऽष्टौ कुजे नव गुरौ सप्तैकादश भास्करे ॥ ११७ ॥ पदानि सिद्धछायाः ६
स्युस्तासु कार्याणि साधयेत् । तिथिवारर्क्षशीतांशुविष्ट्यादि न विलोकयेत् ॥ ११८ ॥
छायालग्नम् ॥ १८ ॥ इत्येवं खेचरेन्द्रप्रबलबलयुते दोषमुक्ते च लग्ने, शास्त्रोद्देशानु-
सारि स्फुटशकुनबलेऽत्युज्ज्वले जागरूके । पीयूषांशुप्रवाहे क्षितिसलिलगते कार्य- ९
माचर्यते यैस्तेषामक्षीणलक्ष्मीपरिचयरुचिरा वासराः संभवन्ति ॥ ११९ ॥ इति
प्रतिष्ठादीक्षाकुण्डलिका ॥ देवानन्दमुनीश्वरपदपङ्कजसेवनैकषट्चरणः । ज्योतिः-
शास्त्रमकार्षीन्नरचन्द्राख्यः सुधीप्रवरः ॥ १२० ॥

इत्याचार्यनरचन्द्रविरचितो नारचन्द्रः समाप्तः ॥ १२